साम-वेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

—:०:—

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ
और १८ पुराणों के भाष्यकार



प्रकाशक

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली ।

(उत्तर प्रदेश)

पंचम संस्करण] १९६९ [मूल्य ६ रु० ७५ पैसे ।

प्रकाशक :
डा० चिमन लाल गौतम,
संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उत्तर प्रदेश)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

संशोधित संस्करण
१९६९ ई०

*

मुद्रक :
हिन्द प्रिन्टर्स, बड़ा बाजार,
बरेली।

*

मूल्य,
छै: रुपया पच्चत्तर पैसे

भूमिका

वेद विश्व का सर्वोच्च और अनादि ज्ञान है। जिस शब्दात्मक वेद को हम सुनते और पढ़ते है, वह यद्यपि भौतिक और देश-काल की सीमा मे आबद्ध है, पर उसका सूक्ष्म या अभौतिक रूप, जिसको परावाक् कहा जाता है, अनादि और अनन्त है। वह उसी अव्यक्त परब्रह्म का गुण है जिससे इस पचभौतिक विश्व का आविर्भाव होता है। जिस प्रकार विश्व का प्रत्येक स्थल पदार्थ ब्रह्म की तन्मात्राओ से प्रकट होता है, उसी प्रकार वहाँ का ज्ञान-भण्डार भी उसी अनन्त ज्ञान-स्रोत से आता है। इसी कारण वेदो को ईश्वरीय ज्ञान कहा गया है जिसकी वास्तविकता तत्वज्ञो की दृष्टि मे असंदिग्ध है।

धार्मिक श्रद्धा रखने वाले भारतवासी ही नही वरन् अन्य देशो के बुद्धिवादी विद्वान भी यह स्वीकार कर चुके हैं कि वेद ससार के सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ है और उनमे सृष्टि-विद्या के जिन मूल तत्वों का वर्णन किया गया है, वे पूर्णत: विज्ञान और तर्क सम्मत हैं। यह सत्य है कि उनका बहुत बड़ा भाग उपासना और कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखता है, तो भी स्थान-स्थान पर उनमे विश्व उत्पत्ति, स्थिति और अन्त होने, आत्मा और जीव, समाज-संगठन आदि के मूल सिद्धान्त स्पष्ट रूप में बडी मार्मिकता के साथ प्रतिपादित किये गये हैं और उनको लक्ष्य मे रखते हुये मानव-जीवन के उन कर्त्तव्यो का निरूपण किया गया है जिनके बिना उसकी सफलता असम्भव है। इनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि ये किसी जाति, सम्प्रदाय या देश के विचार से नही किये गये हैं, वरन मानव प्रकृति को ध्यान मे रखकर मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ उनकी योजना निर्मित हुई है। इसी से 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्' की सार्थकता सिद्ध होती है और इसी से कहा गया है कि वैदिक धर्म किसी एक जाति या देश के लिये नही है वरन् सार्वभौम है, मनुष्य मात्र अपनी परिस्थितियों के अनुसार उस पर चल सकते है और जीवन को सुखपूर्वक अतिवाहित करके अन्तिम लक्ष्य (बन्धन से मुक्ति को प्राप्त कर सकते है। इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर एक विद्वान ने कहा है कि "वेद-

विद्या का लक्ष्य मानव-जीवन और विश्व जीवन की व्याख्या करना है। सृष्टि-विद्या ही वेद-विद्या है। जिस प्रकार सृष्टि-विद्या अनन्त है, उसी प्रकार वेद विद्या भी अन्तहीन है। जिस भूत के कार्य को देखे उसी मे पूरा एक विश्व समाया हुआ है। अणुवीक्षण यन्त्र (खुर्दबीन) की शैली से प्रत्येक भूत का परिचय प्राप्त करना आधुनिक विज्ञान की पद्धति है, किन्तु प्रत्येक भूत के भीतर जो अक्षर-तत्व (प्राण तत्व) है उसका दर्शन करना ऋषियो की शैली थी।

इसी आधार पर अनेक विद्वान यह कहा करते है कि प्राचीन युग मे भारत ही जगतगुरु था और ससार के समस्त मतमतान्तरो का उद्भव वैदिक धर्म से ही हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिक खोज करने वालो ने भी सिद्ध किया है कि मिश्र, बैबीलोनिया, असीरिया आदि की सभ्यताये ही नही, सुदूरवर्ती मैक्सिको और दक्षिण अमरीका की 'माया' आदि प्राचीन सभ्यताओ के मूल मे भी भारतीय धर्म की प्रेरणा और सिद्धान्त दृष्टिगोचर होते है। वेदो मे मनुष्य के कल्याणार्थ जिस सरल जीवन, सदाचार सात्विक आहार, ब्रह्मचर्य, शान्तिमय व्यवहार और उदारतापूर्ण भावनाओ का उपदेश दिया गया है वे ही चीन, मिश्र, यूनान आदि के विद्वानो के लेखो मे दिखाई देती है। वैदिक ऋषियो ने तो इन सिद्धान्तो को अपने जीवन मे ओत-प्रोत कर लिया था और अपने अनुयाइयो को भी तद्नुकूल आचरण का उपदेश दिया था। इसके फलस्वरूप भारतीय समाज मे चार आश्रमो—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास की स्थापना करके मानव-जीवन को चार भागो मे बाँट दिया गया था। इनके द्वारा मनुष्य को सयम और त्याग की पूर्ण शिक्षा मिल जाती थी और वह आजीवन तदनुसार आचरण भी करता था। इस कारण उन लोगो का समस्त जीवन धर्ममय था और धर्म की रक्षा करते हुये वे सच्चे सुख और शान्ति का उपभोग करते थे। इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुये एक अर्वाचीन विद्वान का निम्न कथन विचारणीय है।

"वैदिक साहित्य के अवलोकन से, वेदानुकूल अन्य समस्त लौकिक वाङ्मय के अनुशीलन से और आर्यो के रहन-सहन, रीति रिवाज, तिथि-त्योहार, सस्कार और समस्त व्यवहारो पर एक गम्भीर दृष्टि डालने से यही तात्पर्य निष्पन्न होता है कि मनुष्य अपना प्रधान लक्ष्य मोक्ष को बनाकर ऐसा व्यवहार करे जिससे स्वयं दीर्घ जीवन प्राप्त कर सके और उसके कारण किसी भी प्राणी की आयु और भोगो मे किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। प्रत्युत वर्णाश्रम द्वारा समाज मे ऐसा सङ्गठन हो कि सरलता से सबकी रक्षा होती रहे और शिक्षा तथा दीक्षा से समस्त प्राणी समुदाय मोक्षाभिमुखी बने रहे। आर्यों की शिक्षा और सस्कृति के किसी अङ्ग की आलोचना का जाय तो उसकी अन्तर्भावना से इसी उद्देश्य की पूर्ति की आवाज सुनाई पडेगी। आर्यों के किसी प्राचीन राजा, रानी, ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र आदि के जीवन चरित्र को बारीकी से पढा जाय तो उससे यही ध्वनि निकलेगी। आशय यही है कि आर्यों की शिक्षा तथा सभ्यता उपर्युक्त उद्देश्य मे ओत-प्रोत है। यही कारण है कि आर्यों की शिक्षा और सभ्यता अत्यन्त प्राचीन होने पर भी, और अनेक प्रकार के सकटो ओर विपत्तियो का सामना करने पर भी आज जीवित हे। ससार मे और भी अनेक सभ्यताओ का जन्म हुआ और विस्तार हुआ पर आज कही उनका नामोनिशान भी बाकी नही है। किन्तु आर्यो के आहार-विहार, वेषभूषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, यज्ञ-याग, दान-पुण्य, व्रत-उपवास, धर्म-कर्म, दया-प्रेम, दर्शन-विज्ञान, योग-समाधि, कर्म-फल, बंधमोक्ष, ब्रह्मचर्य, पतिव्रत, गोभक्ति आदि क्रिमकीट पर्यन्त समस्त प्राणियो के साथ सहानुभूति आदि जितने आदिमकालीन मतव्य ओर कर्तव्य हैं, आज भी ज्यो के त्यो पाये जाते हैं। इससे यह सहज ही अनुमान हो सकता है कि आर्यों की सभ्यता में अपनी रक्षा कर लेने की पूर्ण योग्यता है और उसको चिरंजीवी रखने की पूर्ण शक्ति है।

वैदिक धर्म की शिक्षाओ में सीधे-सादे जीवन, जंगलों में आश्रम बनाकर रहने, कम से कम और यथा सभव बिना सिले वस्त्र पहिनने, फल, दूध या मोटा अन्न खाने, पर्णकुटीर या घास फूस और मिट्टी के साधारण घरो में रहने का जो वर्णन पाया जाता है, उससे कितने ही व्यक्ति उसे जङ्गली या अर्ध सभ्य समाज का उदाहरण समझते है। ऐसी ही बातो के आधार पर आरम्भ मे कितने यौरोपियन लेखको ने वेदो को गडरियो के गीत' बतलाकर उनकी हँसी उडाने की चेष्टा की थी। पर जब वहाँ के उच्चकोटि के विद्वानो ने वेदों के ज्ञान-सरोवर मे अवगाहन किया और उनमे सृष्टि-रचना, मानव मन के कार्य तथा आचार व्यवहार के ऊँचे से ऊँचे नियमो का समावेश देखा तो उनकी आँखे खुल गई। उन्होने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया कि वेदो की सभ्यता ससार की अन्य समस्त सभ्यताओ की जननी है और तुलनात्मक दृष्टि से सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ है। जिस मैक्समूलर साहब ने अपनी आयु के ४५ वर्ष लगाकर वेदो का अंग्रेजी भाषान्तर किया था, उन्होने बडे स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि "विद्यमान ग्रन्थो मे वेद सबसे अधिक प्राचीन है। यह यूनान की होमर की कविताओ से भी अधिक प्राचीन है क्योंकि इनमे मानव मस्तिष्क की प्रथम उपज मिलती है।" योरोप के सुप्रसिद्ध दार्शनिक मेटरलिक ने कहा है 'वेद ही एक मात्र ज्ञान के भण्डार है जिनकी तुलना हो ही नही सकती। वेदो मे गूढ रूप से अर्थात बीजरूप मे ससार की समस्त विद्याओ का आदेश सन्निहित है। केवल सूक्ष्मदर्शी की अन्तदृष्टि ही वेदो मे भरे सूक्ष्म ज्ञान को प्रकट कर सकती है। यह तथ्य निस्सन्देह आश्चर्योत्पादक है कि हमारे आज ऐतिहासिक काल के पूर्वजो ने, जिनके विषय मे यह कल्पना की जाती है कि वे अज्ञान की भयकर अवस्था मे थे, कहाँ से और कैसे असाधारण और अन्तर्ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जो आज भी हमारे लिए असम्भव सिद्ध हो रहा है।"

भारत के श्रेष्ठ विद्वान तथा पूर्वी और पश्चिमी दर्शनशास्त्र के प्रकाड पण्डित श्री राधाकृष्णन वहाँ के समस्त विदेशी आलोचको के मतो का सग्रह और समन्वय करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि यदि हम हिन्दू धर्म के सबसे बड़े विरोधियो की आलोचनाओं का ही अध्ययन करे

तो उनमे भी यही ध्वनि निकलती है कि वेदो का ज्ञान सत्य के ऊपर आधारित है जो मानव-जीवन को बहुत उच्च बताने की सामर्थ्य रखता है। वे लिखते हैं कि ऋग्वेद के आचार सम्बन्धी ज्ञान के ऊपर विचार करते समय हमको 'ऋत' शब्द का बडा महत्व जान पडता है। भारतीय विचार धारा मे कर्म सिद्धान्त की जो विशेषता दीख पडती है, उसका आधार यही 'ऋत' है। कर्म के सिद्धान्त की व्यापकता समस्त ससार मे पाई जाती है। मनुष्य तथा देवता सभी इसके बन्धन मे देखे जाते हैं। यदि ससार मे कोइ नियम है तो वह अवश्य ही अपना कार्य करेगा। यदि कर्म का फल किसी कारण इस जगत मे नही मिला तो वह अन्यत्र अपना फल लाये विना नही रह सकता। जहाँ नियम 'ऋत' है वहाँ अन्याय तथा उच्छृङ्खलता केवल सामयिक बात ही मानी जा सकती है। दुष्टो के व्यवहार की सफलता एकान्तिक (निश्चित) नही हो सकती। भले आदमी का जलपोत यदि टूट जाय तो उसमे घबराने या निराशा की कोई बात नही है।.... इस प्रकार 'ऋत' हमे सदाचार का एक मापदण्ड प्रदान करता है, यही प्रत्येक वस्तु का सामान्य सार है। यह सत्य है—सब वस्तुओ की एक मात्र सचाई है। अव्यवस्था एव उच्छृङ्खलता असत्य है, अनृत है अथवा 'ऋत' का प्रतिद्वन्दी है। ऋत के मार्ग पर कहा गया है। ऋत पर चलने वाले सदाचारी लोगो के आचरण को 'व्रतानि' कहते है। वेदों में बरुण को 'ऋत व्रत' कहा गया है। वह अपने सदा-चार रूप दिनचर्या में अटल और अचल है।"

इस प्रकार वेदो में ऋत अथवा सत्य को ही मनुष्य के सदाचार अथवा धर्म की एक मात्र कसौटी माना गया है। उनमे कहा गया है कि "मनुष्यो को अपना जीवन देवताओ की आँखो के नीचे होकर गुजरना चाहिये।" उनमे देवताओं के प्रति ही नही अन्य मनुष्यों के प्रति भी हमारे कर्तव्यों का विवेचन किया गया है और कहा गया है कि जो मित्र और देवता को न देता हुआ स्वयं ही खाता है, वह मूर्ख पुरुष साक्षात् पाप का भक्षण करता है। "जो दान देता है, उसका मान घटता नही।

जो दुखी और याचक को न देकर अपने आप ही उसका उपभोग करता है उसे शान्ति देने वाला कोई नही होता। "हे ईश्वर ! हम अपने पडोसी के प्रति अन्याय न करें, न अपने मित्र को हानि पहुँचावें। अपने प्रति प्रेम करने वालो के प्रति हमसे कोई दुर्व्यवहार न हो।" इस प्रकार वेदो मे हर जगह ऐसे मूलभूत सिद्धान्तों की शिक्षा दी गई है जो देश और काल से अतीत होकर मनुष्य मात्र पर लागू होते हैं और जिनको त्याग कर मनुष्य कदापि सुखी जीवन व्यतीत नही कर सकता। यही कारण है कि वेदों के उपदेशको को सत्य पर स्थित ईश्वरीय आदेश माना जाता है।

भारत के दूसरे महाविद्वान् श्री अरविन्द घोष ने, जो भारतीय धर्म और दर्शन के अतिरिक्त विदेशो के ज्ञान और विज्ञान के भी बहुत बड़े ज्ञाता थे, वेदों को आध्यात्मिक ज्ञान का सबसे बडा स्रोत बतलाया था। उन्होने लिखा है—'वेद संसार के सर्वोत्तम और गम्भीरतम धर्मों के आदि स्रोत हैं, साथ ही वे कुछ सूक्ष्मतम पराभौतिक दर्शनो के भी मूल आधार है। वास्तव मे 'वेद' इस सबसे ऊँचे आध्यात्मिक सत्य का नाम है जहाँ तक मनुष्य का मन गति कर सकता है। पूर्णता प्राप्त करने के इच्छुक आर्य पुरुष के हाथ मे वेद-मन्त्र एक शस्त्र का काम देता है। वेद असभ्य, जगली और आदिम कर्त्ताओ की बनाई वस्तु नही है, वरन् एक उत्कृष्ट कला—चेतनायुक्त कला के सजीव निःश्वास हैं। वेद का प्रतीकवाद इस तथ्य पर आधारित है कि मनुष्य का जीवन यज्ञ रूप है—एक यात्रा है—एक युद्ध क्षेत्र है। इस तरह समझा हुआ वह वेद 'जगली लोगो' के गीतो का सग्रह नही रह जाता, वरन् वह मानव जाति की उच्च अभीप्सा से सम्पन्न गीतो का पाठ बन जाता है। वेद मे और जो कुछ प्राचीन विज्ञान, लुप्त विद्या, पुरानी मनोवैज्ञानिक परम्परा आदि हो, उनको खोजना अभी शेष ही है............।

... ''महात्मा गौतमबुद्ध के सम्बन्ध मे एक बडी गलत धारणा यह ली हुई है कि वे यज्ञ, वेद और वेदज्ञो के विरोधी थे। बौद्धो के प्रमुख

धर्मग्रन्थ मे महात्मा बुद्ध ने स्वय कहा है कि 'वेदो के द्वारा धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वानो की डॉवाडोल स्थिति कभी नही रहती।
यज्ञ के पुण्य की कामना करने वाला व्यक्ति उसी ब्राह्मण को भोजन कराये जो वेदज्ञ, ध्यान परायण, उत्तम सम्मत्ति वाला और दूसरो को शरण देने वाला हो। वेदज्ञ विद्वान् इस ससार मे जन्म या मृत्यु मे अनासक्त रहकर तृष्णा का त्याग करके, पापरहित रहकर जन्म और वृद्धावस्था से छूट जाता है, ऐसा मेरा विचार है।"

प० सत्यव्रत सामश्रमी बङ्गाल के प्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान हुये है। उनका कथन है कि—ये चारो वेद आर्यों के ईश्वर और धर्म विषयक, व्यवहारिक, वैज्ञानिक, कर्त्तव्य शास्त्र तथा समाज शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान क खजाने है। हमारे देश ने वैदिककाल मे असाधारण उन्नति की थी। उन दिनो भूगर्भ विद्या, गणित और ज्योतिष शास्त्र, रसायन शास्त्र आदि को आधिदैविक विद्या कहा जाता था और शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान तथा ईश्वर और धर्मविज्ञान को अध्यात्म-विद्या कहते थे। यद्यपि इन वैज्ञानिक विषयो के ग्रन्थ अब लुप्त हो चुके है किन्तु फिर भी वैदिक ग्रन्थो मे विज्ञान सम्बन्धी काफी सकेत उपलब्ध होते है। वेदो के कुछ भागो मे ऐसा लगता है कि उस समय कुछ वैज्ञानिक अनुसधान इतनी पूर्णता तक पहुँच चुके थे जहाँ तक अमेरिका और योरोप के वैज्ञानिक अभी तक नही पहुँच सके है।

इस प्रकार देशी, विदेशी सभी उच्च कोटि के विद्वानो ने वेदो की महानता एक स्वर से स्वीकार की है और उनको ससार के समस्त ग्रन्थो मे सबसे प्राचीन और प्रमुख बतलाया है। हम भारतीय धर्मानुयायी तो उनको साक्षात् ईश्वरीय वाणी मानते है। जो मनुष्य के लिये प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक समय मे कल्याणकारी है। जब तक हमारे देशवासी इस ईश्वरीय विधान के अनुसार आचरण करते रहे, अपने कर्त्तव्य पालन पर दृढ़ बने रहे तब तक यहाँ ऐसे जगतवन्द्य चक्रवर्ती सम्राटो तथा आचार्यों का आविर्भाव होता रहा। जिनकी सत्ता को सबने स्वीकार किया और जिनकी अवज्ञा करने का किसी ने साहस नहीं किया। पर

उस युग के साम्राज्यो की नीव धर्म पर ही स्थापित होती थी, और चक्रवर्ती विजययात्रा का मूल उद्देश्य भी धर्म स्थापना होता था ।'शतपथ' ब्राह्मण मे लिखा है कि "राष्ट्र ही अश्वमेध है । इसलिये राष्ट्र की कामना करने वालो को अश्वमेघ अवश्य करना चाहिये क्योकि अश्वमेघ करने वाला समस्त पृथ्वी को जीत लता है ।" उस युग मे चक्रवर्ती नरेश के लिये इस अश्वमेध का करना अनिवार्य था । पर इसका उद्देश्य मध्यकाल के सम्राटो के समान अन्य देशो मे लूटमार करना, वहाँ के निवासियो को मनाना या वहाँ पर अपना व्यापार फलाना आदि न होकर समस्त मानव जाति को एक सभ्यता, एक सस्कृति, एक धर्म; एक भाषा के सूत्र मे आबद्ध करना होता था जिससे वह सहयोग पूर्वक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हा सके । इस सम्बन्ध मे एक लेखक ने कहा है कि "अश्वमेघ करने का कारण सब मनुष्यो का एक समान सुख-दु ख मे सम्मिलित करना, दुष्ट राजाओ और यज्ञ विरोधी म्लेच्छो से प्रजा और याज्ञिको के दुःख दूर करना, पृथ्वी का उर्वरा बनाना और सब प्राणियो का सुख पहुँचाना ही था । यज्ञ का अभिप्राय सार्वजनिक सुखो की वृद्धि से है । सार्वजनिक सुख तब तक नही हो सकता जब तक समस्त मानव समुदाय समान सुख-दुख का भागी न हो जाय, अनेक प्रकार की जातीयताओ की भावना नष्ट न हो जाय और साम्यभाव न आ जाय । हम देखते है कि वेदो मे सैकडो मन्त्र साम्यभाव के उपस्थित है । वेद ससार में साम्यभाव फैलाते हैं। इसलिये पृथ्वी मे वसे हुये समस्त मनुष्यो को समान लाभ पहुँचाने की स्वाभाविक प्रेरणा से ही अश्वमेघ किया जाता था ।"

इस प्रकार के सर्वहितकारी और मनुष्य मात्र के लिये कल्याणकारी विधान मानव निर्मित नही हो सकते । इस उन्नतिशील कहे जाने वाले जमाने मे भी हम देखते है कि जितने विधान, नियम, कानून बनाये जाते हैं, उनमे किसी विशेष वर्ग या समुदाय के स्वार्थों की रक्षा का ध्यान रहता है । उनका उद्देश्य अपने से भिन्न समुदाय वालो का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से शोषण ही होता है । पर वेदो मे कही पर किसी विशेष

वर्ग, जाति या समुदाय के हित को दृष्टि मे रखकर नियम नही बनाये हैं, वरन् उनमे जगह-जगह मानव मात्र के कल्याण की भावना ही प्रदर्शित की गई है। इस विषय का विशेष रूप से विवेचन करते हुए और वेदो का ईश्वर कृत होने की पुष्टि करते हुए एक विद्वान लेखक ने कहा है—

"वेद मनुष्य कृत नही, ईश्वर प्रेरित है। वेदो का ज्ञान मनुष्य की रचना शक्ति के बाहर है। उसके धारण करने को ईश्वर समर्थ है। वेद सब विद्याओ के बीज की पुस्तक है। जैसे भौतिक जगत के सब पदार्थों का बीज प्रकृति की कुक्षि में निहित है, कोई भी मनुष्य उस मौलिक प्रकृति की रचना नही कर सकता, उस प्रकार प्रचलित ज्ञान की पुस्तको का इतना बडा भण्डार जिस मौलिक वेद संहिता के मन्त्रो के बीज से उदय हुआ है, उन बीजो की रचना मानव लेखको और पण्डितो की शक्ति से बाहर की बात है। उगे हुए वृक्षो की लकडी से काष्ठ की भांति भांति की उपयोगी सामग्री मनुष्य बना सकता है। बढ़ई की कुशलता तथा उसकी कारीगरी इसी मे चरितार्थ होती है, यह सत्य है, किन्तु काष्ठ वस्तुओं की मौलिक सामग्री और प्रारम्भिक उपादान की रचना वह नही कर सकता। यह तो उदारतमा माता प्रकृति की ही देन है। इसी प्रकार मनुष्य पत्थर और विशेष प्रकार की मिट्टी से चूना, सीमेंट आदि बना लेता है पर उस पत्थर और मृतिका की रचना उसकी शक्ति से बाहर है, जो चूने और सीमेंट का उपादान या मौलिक सामग्री है। भौतिक जगत के कारणात्मक भाग का निर्णय मनुष्य नही करता, उसके कार्यात्मक भाग की रचना ही वह कर सकता है। प्राप्त मौलिक सामग्री का अपने उपयोग के लिए वह आवश्यकीय रूप देने की क्षमता रखता है, किन्तु उसके भौतिक रूप के उपादान की शक्ति उसमे नही है। यही बात चित्, जगत् के सम्बन्ध में भी है। ज्ञान का विश्व भी इस जड विश्व के समानान्तर शाश्वत रूप मे पाया जाता है। अचित की चादर मे लिपटा हुआ चित् शाश्वत है। इन दोनो मे परस्पर अटूट सम्बन्ध है।

विधाता ने जिस प्रकार प्रथक-प्रथक देहधारियो के लिए खान पान सामग्री का मौलिक आधार प्रदान किया है वन, पर्वत, सरिता

सर, उपवन, आग, पानी, मिट्टी, हवा, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, ग्रह, नक्षत्र, फल, फूल, औषधि, वनस्पति आदि की रचना की है उसी प्रकार उसके प्रविभक्त चित् के पथ प्रदर्शन के लिए विविध वस्तुओ का स्वरूप भी बता दिया है। जन्म लेते ही बालक सब कुछ नही जानता, वह माता, पिता, गुरुजन तथा बाह्य परिस्थितियों से सीख कर अपन ज्ञान का भडार भरता है। इसी प्रकार नूतन ऋषियो ने पुरातन ऋषियो से ज्ञान प्राप्त किया, जैसे शिष्य गुरु से सीखता है। उन पूर्व ऋषियो ने आदि ज्योति, परम पुरुष, परब्रह्मदेव से ज्ञान की पहली झाँकी पाई थी। इसीलिए महर्षि पतञ्जलि ने कहा है "पूर्वेषामपि गुरः कालेनानच्छेदात्"—'परमात्मा पूर्व ऋषियो का भी गुरु है।' जीवन निर्वाह की भौतिक सामग्री देने वाला परमात्मा ज्ञान का भी मौलिक बीज मानव कल्याणार्थ देता है। वही जड और चेतन जगत की मौलिक सामग्री के आदि बीज का जनक है।"

जब हम वेद ज्ञान को ईश्वर प्रेरित स्वीकार करते है तो फिर इसमे कुछ भी सन्देह नही रह जाता कि उनमे जो सिद्धान्त बतलाये गये है, मनुष्यो को जिन कर्तव्य-कर्मों के पालन करने का उपदेश दिया गया है, वे किसी एक समाज या जाति के लिये नही हो सकते, वरन् उनमे जो तत्व पाया जाता है, वह सार्वभौम है। यद्यपि वेदो के जो प्राचीन भाष्य इस समय सम्पूर्ण या खण्डित अवस्था मे प्राप्त होते है, वे मुख्यत. कर्म-काण्डपरक ही है। उनमे जिन यज्ञ, अग्निहोत्र आदि का विधान बताया गया है, उनका प्रचलन हिन्दुओ के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म या मजहब मे नही है, पर इस आधार पर वेदो के मूल स्वरूप का निर्णय नही किया जा सकता। यज्ञ, हवन के साथ-साथ वेदो ने मनुष्यो के मूलभूत कर्तव्यो-दान, दया, परोपकार क्षमा, उदारता, कृतज्ञता, न्याय परायणता, पवित्रता, शम, दम आदि पर जोर दिया है। वास्तव में परमात्मा मनुष्य के हृदय को देखता है और जिसकी जैसी हार्दिक भावना होती है, उसे वैसा ही फल प्रदान करता है। जो बडे से बड़े और बहुधनसाध्य यज्ञ आदि अपने वैभव और प्रतिष्ठा को दिखलाने अथवा दूसरों को नीचा

दिखाने की भावना से करते है, उनके यज्ञ एक गरीब आदमी के उस थोडे से अन्नदान से भी हीन हैं जो किसी भूखे पर तरस खाकर भगवान के नाम पर अपनी रोटी मे से एक भाग दे देता है। इसलिये वेदो मे धार्मिक कर्मकाडो का वर्णन होने पर भी उनको सर्वोपरि नही माना गया है। इनमे सबसे प्रथम गुण मनुष्यता का होना और अपने सम्पर्क मे आने वाले लोगो के साथ तदनुकूल व्यवहार करना ही माना गया है। जो व्यक्ति इस ससार को भगवान की अभिव्यक्ति—कृति समझकर सब प्राणियो को आत्मवत मानता है और उनके सुख-दु ख मे समान रूप से भाग लेता है, वही वेद की दृष्टि मे सच्चा मनुष्य है और वही शुभ गति का अधिकारी होता है, फिर वह चाहे जिस देश का, चाहे जिस समाज का और चाहे जिस समुदाय का क्यो न हो।

हम जानते है कि वेदमन्त्र के इन मूलभूत सिद्धान्तो-वेद मन्त्रो के आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थों का स्पष्ट ज्ञान पाठको को प्रस्तुत भावानुवाद से नही प्राप्त हो सकता। जैसा ऊपर लिख चुके है, इस समय जो प्राचीन वेदभाषा उपलब्ध है और विशेषत. सायणाचार्य का भाष्य, जो एकमात्र, अखण्डित अवस्था मे प्राप्त हो सका है, कर्मकाड-परक ही है। हमे भी उन्ही के आधार पर वेद-मन्त्रो का आशय लिखना पडा है और वह भी अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे। अधिक विस्तार करने का साधन हमारे पास न था। यदि हम वेद-मन्त्रो की विस्तृत व्याख्या करते और कर्मकाड परक अर्थों के साथ उनके आध्यात्मिक आशय का भी विवेचन करते तो ग्रन्थ का आकार इससे चौगुना या पाचगुना हो जाता जिसका प्रकाशन वर्तमान परिस्थितियो मे सम्भव नही था। पर वेद मे मन्त्रों का आशय क्या है और ईश्वरीय शक्ति के अंशस्वरूप विविध देवताओ की स्तुतियो मे धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो का किस प्रकार समावेश किया है, इसके उदाहरण स्वरूप थोडे से मन्त्रो की विस्तृत व्याख्या हम आगे दे रहे हैं, जिसमें उनका महत्व पाठको की समझ में आ जायगा। भविष्य मे यदि उपयुक्त साधन प्राप्त हो सकेगे तो इसी शैली पर प्रस्तुत वेद-भाष्य धार्मिक जनता के सम्मुख उपस्थित किया जायगा।

वैदिक स्वर प्रक्रिया

वेदो मे वर्णित विविध प्रकार के ज्ञान और उनकी विशेषताओ पर विचार करने से पूर्व हम वैदिक स्वर-प्रक्रिया के सम्बन्ध मे कुछ शब्द कह देना आवश्यक समझते है क्योकि अनेक सज्जन वेदो के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी न रखने के कारण वैदिक स्वर चिन्हो को एक अदभुत चीज समझते है और ऐसी कल्पना करते हैं कि इन स्वर–चिन्हो के बिना वेद लिखे या पढे ही नही जा सकते हैं। वेद की सहिताओ मे मत्राक्षरो मे खडी तथा आडी रेखायें लगाकर उनके उच्च, मध्यम या मन्द स्वर उच्चारण करने के सकेत किये गये है। इनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के नाम से अभिहित किया गया है। ये स्वर बहुत प्राचीन समय से प्रचलित हैं और महामुनि पातजलि ने अपने महाभाष्य मे इनके मुख्य-मुख्य नियमो का समावेश किया है। उनके वक्तव्य तथा स्वर सम्बन्धो अन्य ज्ञातव्य बातो का परिचय हम 'ऋग्वेद' की भूमिका मे विस्तृत रूप से दे चुके है, जिससे पाठक वैदिक-स्वरो के सम्बन्ध मे आवश्यकीय जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध मे अनेक विद्वानो द्वारा प्रकट किये गये विभिन्न विचारो पर मनन करने पर हम को दो मुख्य बाते प्रतीत होती हैं। एक तो यह कि प्राचीन काल मे जब बडे यज्ञ किये जाते थे तो वहाँ के वातावरण को संगीतमय बनाने के निमित्त वेद मन्त्रो का मधुर-ध्वनि से गायन किया जाता था। 'सामवेद' के ही अनेक सूक्तो मे इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये बृहत् साम के गायन का उल्लेख है। इस सगीत मे अनेक गायक (स्तोता) सम्मिलित रूप से भाग ले सके और उनके उच्चारण मे एकलयता और एकतानता बनी रहे, इसके लिये स्वर के उतार-चढाव सम्बन्धी नियमो का निश्चित होना आवश्यक था। दूसरी बात यह भी कही जाती है कि वैदिक शब्द अनेकार्थवादी है। कितने ही शब्दो के तो दस बीस अर्थ मिलते हैं। स्वर-चिन्हो से यह विदित हो सकता है कि अमुक स्थान पर

अमुक शब्द का कौनसा अर्थ ग्रहण किया जाय । इस दृष्टि से भी अनेक विद्वान स्वर-चिन्हो का ज्ञान होना अनिवार्य मानते है ।

पर जिस प्रकार सस्कृत के व्याकरण को विभिन्न काल वैयाकरण विद्वानो ने अपनी-अपनी शैली पर विकसित करके इतना अधिक विकसित करके इतना अधिक बिस्तृत, जटिल और कठिनता से बोधगम्य बना दिया है कि उसके विषय मे छोटे-बडे विद्वानो मे प्राय मतभेद और विवाद हुआ करता है और घोर परिश्रम करने पर भी अतिम निर्णय अधिकाश मे विवादास्पद ही बना रहता है, उसी प्रकार वैदिक स्वरो के सम्बन्ध में भी प्राचीन और नवीन सभी तरह के विद्वानो मे इतनी अधिक मत-भिन्नता और शैली-भेद पाया जाता है कि इस सम्बन्ध मे एकवाक्यता होना लगभग असम्भव जान पडता है । अभी इस सम्बन्ध मे एक पुस्तक "वैदिक-स्वर मीमांसा" जिसके लेखक गुरुकुल की शिक्षा प्राप्त संस्कृत के एक बडे विद्वान हैं, उन्होने पुराने और नये सभी स्वर-शास्त्र के ज्ञाताओ के मतो की जो आलोचना की है, उसे पढने से ऐसा जान पडता है कि प्राचीन काल में भी इस विषय के जो बिद्वान हुये हैं, उन्होने भी स्वर के निर्णय मे अनेक स्थानो पर बडी-बडी भूलें की है । सायणाचार्य के सम्बन्ध में तो लेखक ने जो मत व्यक्त किया है, उसे यदि यथार्थ माना जाय तो सायण का स्वर-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही न्यून और त्रुटिपूर्ण मानना पड़ेगा । पाठकों की जानकारी के लिये हम उनकी सायण सम्बन्धी सम्मति को यहाँ ज्यो का त्यों उद्धृत करते है—

"सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद-भाष्य के आरम्भ मे यथासम्भव प्रति-मन्त्र स्वर-क्रिया का निर्देश किया है । यद्यपि उसे ऊपर से देखने पर सायण का स्वर-शास्त्रज्ञ होना प्रतीत होता है, पर उसके वेद-भाषा के गहरे अनुशीलन और उसके पूर्ववर्ती भट्ट-भास्कर द्वारा निर्दिष्ट स्वर-प्रक्रिया के साथ तुलना करने पर प्रतीत होता है कि सायण का स्वर-शास्त्र विषयक ज्ञान अति स्वल्प है । वह प्राय: भट्ट-भास्कर की स्वर-

प्रक्रिया की प्रतिलिपि करता है और वह भी आखे मूद कर । ..
इतना ही नही सायण जहाँ-जहाँ स्वतन्त्र रूप से स्वर-प्रक्रिया लिखता है, वहाँ वह प्रायः ५० प्रतिशत भल करता है । उसकी प्रति सूक्त व्याख्या मे ४-५ भूलो का उपलब्ध होना माधारण सी बात है ।"

आगे चलकर लेखक ने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में आये 'दोषा वस्त:' शब्द का उदाहरण देकर बतलाया है कि स्वर— सम्बन्धी भूल के कारण उस शब्द का अर्थ ('अग्नि के स्थान पर साय प्रात:) सायण ने ही नही वरन् वैंकटमाधव तथा भट्टभास्कर जैसे प्रमुख स्वर,शास्त्रज्ञो ने भी गलत लिख दिया है । उनका कथन है कि—

"सायण निस्सन्देह अच्छा विद्वान था, पर स्वर-वैदिक प्रक्रिया मे वह निरा बालक है । ऋग्वेद भाष्य मे उसने जो रवर-प्रक्रिया दर्शाई है उसमे पदे-पदे भूले है । स्वर-प्रक्रिया मे वह प्रायः तैत्तिरीय सहिता के भाष्यकार भट्ट-भास्कर का अनुकरण करता है । 'दोषावस्त.' का जो अर्थ और स्वर सायण ने लिखा है वह उसने भट्ट-भास्कर के 'तैत्तिरीय सहिता भाषा' से लिखा है ।"

"भट्ट-भास्कर का अर्थ है 'तैत्तिरीय सहिता' १।५।६।२ मे उपलब्ध होता है वहाँ भट्ट-भास्कर लिखता है कि "दोषावस्त—रात्रि और दिन मे, साय प्रातः ।" श्री निवास ज्वा ने भी 'स्वर सिद्धान्त चन्द्रिका' मे ९।२।२७ की व्याख्या मे भट्ट भास्कर का ही अनुकरण किया है । डा० लक्ष्मण स्वरूप द्व रा सम्पादित वेंकट के 'लघु भाष्य, मे भी इस पद का अर्थ 'साय प्रातश्च' ही किया गया है ।"

"सायण से भी अधिक आश्चर्य हमें वैकट-माधव पर है । वैकटमाधव ऋग्वेदज्ञो मे मूर्धा-भिषिक्त है । वैंकट स्वर-शास्त्र का असाधारण ज्ञाता है । यह उसकी स्वरनुक्रमणी और ऋग्वेद के वृहद् भाष्य से स्पष्ट है । वैकट की स्वर नियात आदि विषयक अनुक्रमणियाँ उसके लघु भाष्य के ही अंश है । इससे हमे सन्देह होता है कि कही उसके 'लघु भाष्य' का पाठ भ्रष्ठ न हो गया हो ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन से प्राचीन और प्रसिद्ध विद्वानो ने स्वर-शास्त्र मे इतनी भिन्नता उत्पन्न कर दी है कि साधारण पाठक तो क्या अधिकाश विद्वान भी सहज मे यह निर्णय नहीं कर सकते कि इनमे कौनसा अर्थ शुद्ध और निभ्रान्त है। 'वैदिक-स्वर-मीमाँसा' के लेखक ने अपनी पुस्तक मे प्राचीन स्वर-विद्वानो की भूले ही नही बतलाई है वरन् वर्तमान समय मे भी जिन दो-चार विद्वानो ने स्वर-प्रक्रिया के सम्बन्ध मे कलम उठाई है, उनके मतो का खण्डन करके उनकी भूले प्रकट की है वे लिखते है कि—

'वैदिक स्वराङ्कन का परिचय देने का प्रयत्न अनेक विद्वानो ने किया है। उनमे श्री प० पद्मनारायण आचार्य, श्री पं० धारेश्वर शास्त्री, श्री प० सातबलेकर जी और श्री प० विश्वबन्धु जी शास्त्री प्रमुख हैं। इन महानुभावो ने स्वराङ्कन, परिचय की जो पद्धति अपनाई है, वह भारतीय शास्त्रानुकूल नही है। कतिपय अशो मे शास्त्र-विरुद्ध है। श्री प० पद्मनारायण आचार्य और श्री प० विश्वबन्धु शास्त्री का परिचय प्रकार योरोपीय पद्धति पर आश्रित है। शास्त्रीय पद्धति के परित्याग से अथवा योरोपीय पद्धति का आश्रय ग्रहण करने मे साधारण से साधारण विषय न केवल क्लिष्ट और सन्देह-युक्त हो जाता है अपितु उसके आधार पर वेद का सूक्ष्मार्थ भी नष्ट हो जाता है।"

इस परिस्थिति में हमारे सामने स्वभावत. यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वर-सम्बन्धी निर्णय मे किस आधार को गहण किया जाय? अभी तक जो वेद सहिताये प्रकाशित हुई हैं, उनका आधार अधिकाश मे सायण-भाष्य है। आधुनिक युग मे वेदो का सर्व प्रथम अन्वेषण करने वाले मैक्स-मूलर साहब को बीस वर्ष तक अथक परिश्रम तथा अपार धनराशि व्यय करने पर भी केवल सायणाचार्य का भाष्य ही सर्वाङ्गपूर्ण स्थिति मे प्राप्त हो सका था उसी के आधार पर उन्होंने सैकड़ो भारतीय पण्डितों की सहायता से लुप्त प्राय: वेदो को संसार के सम्मुख मुद्रित ग्रन्थ के रूप में प्रकट किया था। इसके पश्चात् अधिकाश वेद-प्रकाशको

ने मैक्समूलर साहब के संस्करण से ही सहायता लेकर अपना काम चलाया है। इधर जो सूचनायें प्राप्त हुइ है, उनसे विदित हुआ है कि आधुनिक खोज करने वालो ने वेदों का एकाध और भाष्य उपलब्ध किया है और उसे प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई है पर जिस सायण भाष्य का आधार लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओ मे अब तक वेदो का प्रकाशन किया गया है, उसे 'वैदिकस्वर-मीमासा' के लेखक ने 'स्वरशास्त्र' की दृष्टि से 'निरा बालक' बतलाया है और उनके कथनानुसार जहाँ सायण ने स्वतन्त्र रूप से स्वर निर्णय किया है, उसमें लगभग आधी अशुद्धियाँ हैं। लेखक महोदय के कथन से प्रतीत होता है कि ये स्वर-सम्बन्धी अशुद्धियाँ हैं और भिन्नतायें आर्य समाज द्वारा अजमेर से प्रकाशित वेदों मे भी पाई जातो है जिनमें से अथर्ववेद का सशोधन उन्होने स्वयम् छटे संस्करण मे किया है। इन सब बातो पर विचार करके यदि हम यह कहे कि इस समय स्वर-चिन्हो की दृष्टि से वेदों का पूर्णतः शुद्ध संस्करण मिल सकना असम्भव है तो इसे अत्युक्ति नही समझनी चाहिये।

वैदिक-स्वरों के उचारण में कठिनाई

जैसा हमने ऊपर बतलाया है वैदिक मन्त्रों का सस्वर-उच्चारण यज्ञों मे अति प्राचीन काल मे प्रचलित था। अनेक विद्वानो का मत है कि उस समय स्वरो की सख्या आजकल की भाँति तीन ही न थी वरन् १८ थी। उस समय के कुशल स्तोतागण (मन्त्रों का पाठ करने वाले) उन सब का शुद्ध उच्चारण कर लेते थे। पर समय बीतने पर जैसे जैसे मनुष्यो के आहार-विहार मे अन्तर पड़ता गया और वे फल, दूध आदि प्राकृतिक भोजन के स्थान पर अग्नि द्वारा पकाई गई भाति-भाँति की स्वादिष्ट और कृत्रिम भोज्य-सामग्रियो—व्यञ्जनो का उपयोग करने लगे वैसे-वैसे ही उनके कण्ठ-स्वर मे भी अन्तर पड़ने लगा और वैदिक स्वरो की समस्त सूक्ष्म ध्वनियो को शुद्ध रूप मे प्रकट कर सकना उनके लिय कठिन हो गया। तब स्वरो की संख्या घटा कर सात करदी गई अर्थात (१) उदात्त (२) उदात्ततर (३) अनुदात्त (४) अनुदात्ततर

(५) स्वरित (६) स्वरितोदात्त (७) एक श्रुति। कुछ समय पश्चात् जब इनमे भी अशुद्धि होने लगी तब स्वरो की सख्या तीन ही रह गई। फिर भी यज्ञ-सचालको ने जब यह अनुभव किया कि स्वर-प्रक्रिया के अनुसार शुद्ध रूप से वेद मन्त्रो का पाठ कर सकने वाले बहुत कम मिलते है तो उन्होने 'एक श्रुति' स्वर मे ही पाठ करने का विधान कर दिया। शाखायन, आश्वलायन और कात्यायन आदि श्रौत सूत्रो मे यज्ञ-कर्म मे मन्त्रो का एक श्रुति मे उच्चारण विहित माना है। इन शाखाओ के ग्रन्थो का रचना काल अब से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व समझा जाता है। इससे प्रकट होता है कि महा भारत समय से पूर्व ही वैदिक-स्वरो का यथार्थ रूप मे उच्चारण करने वाले ऋत्विज दुर्लभ होने लगे थे।

अन्य लोगो ने इस कठिनाई को दूर करने के लिये एक दूसरी विधि यह निकाली कि कण्ठ-स्वर को ऊँचा-नीचा करने के बजाय हाथ को ऊँचा नीचा, करके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरो का सकेत किया जाय। वर्तमान समय मे इस सम्बन्ध मे जिन विद्वानो ने खोज की है, उनका कहना है कि इस समय भारतबर्ष मे शायद ही दस-पाँच महाराष्ट्रीय ऋग्वेदी पण्डित वेद मन्त्रो के तीनो स्वरों का कण्ठ से उच्चारण करने मे समर्थ हो, अन्यथा सब लोग हाथ द्वारा सकेत करके ही काम चलाते है।

स्वर-चिन्हों मे पाया जाने वालाअन्तर

स्वरो को प्रकट करने के लिये अक्षरो के उपर नीचे जो खडी और आडी रेखाये लगाई जाती है, उनके स्वरूप के विषय मे भी कम मतभेद नही है। प्राचीन काल मे भी जो ग्रन्थ अब तक मिले है, उनमें विभिन्न शाखाओ के ग्रन्थो मे प्रयुक्त चिन्हो मे बहुत अन्तर है। ऋग्वेद आदि मे स्वरित के लिये अक्षर के उपर खड़ी रेखा लगाई जाती है, पर मैत्रायणी सहिता मे उसे उदात्त का चिन्ह मान कर लगाया गया है। इसी प्रकार अधिकाँश संहिताओ मे अनुदात्त के लिये अक्षर के नीचे जो आड़ी रेखा लगाई जाती है, शतपथ ब्रह्मण में उसे उदात्त के चिन्ह के रूप में प्रयुक्त

किया गया है। इन्ही सब भिन्नताओ को अनुभव करके 'वैदिक स्वर मीमांसा' के लेखक ने यह स्वीकार किया है कि—

"वैदिक वाङ् मय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध होतें है, उनमे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरो का अङ्कन (सकेत चिन्ह एक प्रकार का नही है। उनमे परस्पर अत्यन्त वैलक्षण्य है। एक ग्रन्थ मे स्वरित का चिन्ह है, वही दूसरे ग्रन्थ मे उदात्त का चिन्ह माना जाता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ मे जो अनुदात्त का चिन्ह है वह अन्य ग्रथ मे उदात्त का चिन्ह होता है। साम—संहिता का स्वराङ्कन-प्रकार सबसे बिलक्षण है। उसके पद पाठ का स्वराङ्कन सहिता के स्वराङ्कन से भी पूर्णतया मेल नही रखता। इसलिये वेद के विद्यार्थी को पदे-पदे सन्देह और कठिनाई उपस्थित होती है।"

हमारे इस सायणभाष्यानुयायी सरल हिन्दी भावार्थ सहित वेद-संस्करण का मुख्य उद्देश्य यही है कि जो वेद अभी तक जन साधारण के लिये एक अलभ्य और गूढ वस्तु बने हुए है और जिनके विषय मे वे प्रायः तरह-तरह की सम्भव असम्भव कल्पनाये करते रहते है उनको एक साधारण पाठक भी जान और समझ सके। हिन्दू—धर्म का मूल वेद को ही माना जाता है और हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यता की जड़े वैदिक साहित्य मे ही फैली हुई हैं। ऐसी अवस्था मे उससे सर्वथा अपरिचित रहना और उसके सम्बन्ध में दूसरो के मुख से ही उनकी व्यक्तिगत सम्मति सुनते रहना वाञ्छनीय नही हो सकता। इसीलिये इस सस्करण में हमने यथा सम्भव यही चेष्टा की है कि पाठक सहज मे ही वेद के सामान्य अर्थ को हृदयगम करके उनके वास्तविक आशय पर विचार कर सके। जैसा हम उपर दिखला चुके है, स्वरों के प्रयाग में अनेक कठिनाइया और हर तरह से भूल चूक की सम्भावना है ही, साथ ही वेद को स्वाध्याय की दृष्टि से पढ़ने वाले पाठक के लिये उनका कोई उपयोग नही है। उलटा समझ मे न आ सकने वाले चिन्हो के कारण वे एक उलझन-सी में पड़ जाते है। इससे पहले भागलपुर से प० राम-

गोविन्द वेदान्त शास्त्री द्वारा प्रकाशित 'ऋग्वेद' मे तथा अहमदाबाद से परमहस परिव्राजक श्री भगवदाचार्य द्वारा प्रकाशित 'सामवेद' मे इन्ही कारणो से स्वर-चिन्हो को छोड दिया है। श्री भगवदाचार्य ने तो अपने ग्रन्थ मे स्पष्ट कह दिया है कि "मै वेदो के अक्षरो को अनियन्त्रित मानता हूँ।" तभी "अनन्तावै वेदा:" की उक्ति सार्थक हो सकती है। मैं स्वरों के साथ नही चल सकता।" अन्य कितने विद्वानो को भी हमने ऐसी ही सम्मत्ति प्रकट करते देखा है। फिर भी हमारा तात्पर्य वदिक स्वर चिह्नो के महत्व को किसी प्रकार घटाना नही है। जो सज्जन किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये यज्ञायज्ञो मे सस्वर पाठ की व्यवस्था करना चाहे वे मूल-सहिता की पुस्तको का उपयोग कर सकते है और करते भी है। उस कार्य के लिये टीका या भाष्य सहित भारी ग्रन्थ असुविधाजनक होते है। इसलिये हमारा यह संस्करण मुख्यत: उस वेदानुयायी धार्मिक जनता के लिये ही समझना चाहिये जो इसके द्वारा वेदार्थं यत्किंचित ज्ञान प्राप्त करके हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तो की जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है।

—:※:—

सामवेद के उपदेश और शिक्षायें

सामवेद यद्यपि चारो वेदो मे आकार की दृष्टि से सबसे छोटा है और इसके १८७५ मन्त्रों मे से ६९ को छोडकर शेष सभी लगभग ऋगवेद के है। केवल १७ मन्त्र अथर्ववेद तथा यजुर्वेद के पाये जाते हैं। फिर भी इसकी प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। विशेषत: जब हम गीता मे भगवान कृष्ण को यह कहते हुये पाते है कि "वेदाना सामवेदोऽस्मि" तब तो अवश्य ही मन मे यह भाव उदित होता है कि सामवेद मे ऐसी कौन सी श्रेष्ठता और विशेषता है जिसके कारण भगवान ने इसको अपनी प्रमुख विभूति बतलाया। विचार करने से यही प्रतीत होता है कि यद्यपि ऋग्वेद सबसे वृहद कलेवर का है और अथर्ववेद तथा यजुर्वेद भी काफी बडे है, पर सामवेद छोटा होने पर भी सबका सार रूप है। जैसे चतुर माली उत्तमोत्तम पुष्पों को लेकर एक सुरम्य गुलदस्ता बना देता है, इसी प्रकार समस्त वेदो के चुने हुये अश सामवेद मे एकत्रित किये गये है। आदिम कालीन यज्ञो मे भगवान की जो सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण मधुर और संगीतमय स्तुतियां की गई थी, उन्ही को चुन कर सामवेद के रूप मे उपस्थित किया गया है। इसके अध्ययन से वैदिक ऋषियो की अत्युच्च आध्यात्मिक भावनाओ का दिग्दर्शन होता है और उन्होने मानव मात्र के लिये जो उपदेश और शिक्षाये दी है, उनका भी लाभ मिलता है। यो तो वेद का प्रत्येक मन्त्र ही ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार है और मनुष्य को मोक्ष मार्ग दिखलाने वाला है, पर सामवेद की भक्ति रस पूर्ण काव्यधारा मे अवगाहन करने से तुरन्त ही मनुष्य का अन्तरतम निर्मल, विशुद्ध, पवित्र और रससिक्त हो जाता है। जो पाठक इसके मन्त्रो और उनके गूढ आशय का ध्यानपूर्वक अध्ययन तथा मनन करेंगे, वे स्वय इस परमानन्द का अनुभव कर लेगे। आगे चलकर हम उदाहरण स्वरूप थोड़े से मन्त्रो का आशय और व्याख्या दे रहे है जिससे पाठको को वेद मन्त्रो की प्रतीकयुक्त शैली और उसके वास्तविक भाव को प्रकट करने की प्रणाली का कुछ अनुमान हो सकेगा। सामवेद के मन्त्र अमूल्य रत्नो

की खान हैं, उनमे जो जितना ही गहरा उतरेगा, जितना ही परिश्रम करेगा, उतने ही ज्ञान रूपी अमूल्य मणि माणिक वह प्राप्त कर सकेगा।

उदार बनो

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्रस्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धिनेदिष्ठं देवतातय आपि न क्षामहेवृधे ॥
(उ० १५-१-४)

"हे अग्ने ! अदानशीलो से हमको बचा और सघर्षों से हमारी रक्षा कर। हम यज्ञसिद्धि के लिये तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् जो परसत्वापहारी दुष्ट समस्त सामग्रियों को अपने लिये ही हडपना चाहता है उससे हमारी रक्षा करो और उसके प्रति संघर्ष मे हमारे सहायक बनो।"

इस मन्त्र मे ऋषि अदानशीलता, अनुदारता, सकीर्णता, स्वार्थपरता आदि की निन्दा करते हुये तेज स्वरूप परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि ऐसे व्यक्तियो तथा ऐसी भावनाओ से हमारी रक्षा करो क्योकि इस प्रकार केवल अपना ही स्वार्थ देखने वाला और दूसरो के स्वप्नों को दबाने की इच्छा वाला व्यक्ति ही ससार की दुर्दशा और अधःपतन का मुख्य कारण होता है। ऐसे ही लोगो के कारण समाज में अनुचित सग्रह की प्रवृत्ति की वृद्धि होती है जिसका परिणाम छीना-झपटी और घोर अशान्ति होती है। इसलिये धार्मिक पुरुषो को सदैव उदारता, दान-शीलता की प्रवृत्ति को अपनाना चाहिये। जब हम सबके प्रति इस प्रकार के सहानुभूतिपूर्ण और न्याययुक्त व्यवहार की भावना रखेंगे और तदनुसार आचरण करेगें तो परमात्मा भी सब प्रकार के सघर्षों से हमारी रक्षा करेगा। तभी जीवन की सच्ची प्रगति, उन्नति समृद्धि मे हम उसका आश्रय पाने के अधिकारी हो सकेंगे।

यही उपदेश अन्यत्र 'सोम' के उद्देश्य से कहे गये अन्य दो मन्त्रो में दिया गया है—

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत (उ० ६-२-३)

"हे सोम, अदानशीली (लोभी लालची व्यक्तियो) को दूर करो। सबके देखने (जानने) वाले तुम इस यज्ञ स्थान मे स्थित होओ अर्थात् संकीर्ण और स्वार्थी मनोवृत्ति के व्यक्ति कदापि परमात्मा की भक्ति रूपी यज्ञ में स्थान नही पा सकते। वे परमात्मा से सदैव दूर ही बने रहेगे।"

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्ण.।
गच्छान्निन्द्रस्य निष्कृतम् (उ० ६-५(१-७)

"हिसको और अदानशीलो का नाशक सोम इन्द्र स्थान की ओर जाकर धार रूप से गिरता है। अर्थात् इन्द्र रूपी परमात्मा का अध्ययन प्राप्त करने से पूर्व हिंसा (निर्दयता, कठोरता) तथा अदानशीलता (कृपणता, स्वार्थपरता) के भावो को त्याग देना अनिवार्य है। बिना ऐसा किये आत्मा का परमात्मा की तरफ प्रवाहित (अग्रसर) हो सकना सम्भव नही। ऐसा व्यक्ति यदि किसी कामना की पूर्ति के उद्देश्य से परमात्मा की—देवताओ की उपासना करता भी हैं, तो भी उसकी दृष्टि मुख्यतः सॉसारिक सम्पत्तियो पर ही लगी रहती है। इस सम्पत्ति का बन्धन उसे इस प्रकार जकड़े रहता है कि बाहर से ईश्वर की उपासना, भक्ति करते हुये भी वह अन्तर से कभी उनके निकट नही पहुँच पाता और संसार चक्र में फँसा हुआ कष्ट ही सहन करता रहता है।"

इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रख कर वेद ने बारम्बार मनुष्यो को दानशीलता, उदारता, परोपकार, दया आदि का उपदेश दिया है। ये गुण मनुष्य की आत्मा का विकास और उत्थान होने के लिये तो आवश्यक माने ही गये हैं, पर इनके बिना समाज की प्रगति भी नही हो सकती। जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने स्वामी पर ही दृष्टि रखेगा और दूसरे लोग चाहे मरें और चाहें जीवें, उनके सुख दुःख की तरफ से आँखें बन्द करके रहेगा, वहाँ कल्याण की आशा दुराशामात्र है क्योकि समाज की उन्नति का मुख्य आधार सहयोग और एकता की भावना होती है। पारस्परिक सहयोग तथा संगठन के द्वारा शक्तिशाली बन कर ही कोई मानव-समुदाय सांसारिक विषयो मे सफलता प्राप्त कर सकता है।

अन्यथा जहाँ स्वार्थ की प्रधानता होगी वहाँ फूट और वैमनस्य का साम्राज्य ही दृष्टिगोचर होगा और वह समाज निर्बल और निस्तेज हो कर सब प्रकार की आपत्तियो मे ही ग्रसित बना रहेगा। इसलिये अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान रूपो को इन वेद मन्त्रो के आदेशानुसार अदानशोलता (अनुदारता, कृपणता) के दोषो से बचकर अपने पडोसियो देशवासियो के प्रति सदैव उदारता की भावना रखना चाहिये और अपनी शक्ति और साधनो के अनुसार सदैव दूसरो की सहायता के लिये तत्पर रहना चाहिये।

कर्मण्यता की प्रशंसा

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम ।
तूर्णी रथः सदा नव (उ० १५—३—१)

"जो मनुष्यो का मार्गदर्शक होने से अग्रणि हैं, निरालस्य कर्मानुष्ठान में लगे मनुष्यो का हविवाहक होने से मन्थन द्वारा तत्काल ही प्रकट होते है, ऐसे अग्नि को तिरस्कृत नही करना चाहिये।"

इसी मन्त्र का आध्यात्मिक दृष्टि से प्रकट होने वाला आशय एक विद्वान ने इस प्रकार लिखा है—"मननशील प्रजाओ का अति शीघ्रगामी रथ के समान कर्मवासनाओ को साथ ही लेकर चलने वाला आत्मा रूप अग्नि सदैव स्थिर रहता है। यह देहान्त होने पर भी नष्ट नही होता। इसकी कर्ममय उपासना हमारे लिये कल्याणकारी हो।"

मानव-जीवन में कर्मण्यता का स्थान बहुत उच्च है। अनेक मनुष्य ऐसे भी देखने में आते है जो ज्ञान की बडी-बडी बाते करते हैं, आध्यात्मिकता का दावा करते है, लोक-परलोक के रहस्य के ज्ञाता बनते है, पर उनमे कर्तव्य कुछ भी देखने मे नही आता। वे आलस्यवश या अव्यवहारिकता के कारण अपनी कही हुई बातो को कार्य रूप मे कर दिखाने की शक्ति नही रखते। ऐसे लोगो पर से शीघ्र ही मनुष्यो की श्रद्धा हट जाती है और उनको बातूनी या 'परउपदेश कुशल बहुतेरे' की

उपाधि दे दी जाती है । इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन मे कर्मण्यता का पूरा ध्यान रख ।

कर्मण्यता के सम्बन्ध मे एक अन्य सूक्त मे इससे भी स्पष्ट शब्दो मे इस प्रकार कहा गया है—

उत नो गोषणिं धिय मश्वसां वाजसामुत ।
नृवत्कृणुह्यूतये ॥ (ऋ० १६—३—१)

"हे पूषा (सूर्य रूपी भगवान) पशु, अन्न, बल आदि देने वाली बुद्धि (ज्ञान-शक्ति) और कर्मों (क्रिया शक्ति) को हमारे रक्षणार्थ प्रेरित करो ।"

मानव जीवन की सफलता का मुख्य आधार ज्ञान और क्रिया रूपी दो शक्तियाँ ही मानी गई है । अगर इन दोनो मे से एक भी त्रुटिपूण है तो मनुष्य कभी अपने उद्देश्य और आदर्श मे कृतकार्य नही हो सकता । बिना क्रियाशीलता का ज्ञान अथवा ज्ञानशून्य क्रियाशीलता अधिकाँश मे निरर्थक ही रहते हैं । इसलिये उपासक को परमात्मा से सदैव यही प्रार्थना करनी चाहिये कि वह उसे ऐसा ज्ञान प्रदान करे जो उसकी ज्ञानेन्द्रियो और कर्मेन्द्रियो को उचित रूप से प्रेरणा देता रहे, उनको सन्मार्ग पर चलने का मार्ग दर्शन कराता रहे । साथ ही वह हमे ऐसी कर्मशीलता भी प्रदान करे जिससे धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुये गौ, अश्व, अन्न आदि सब प्रकार की साँसारिक भोग-सामग्री को भी प्राप्त कर सके । यह मनुष्य के सच्चे कल्याण का मार्ग हैं । यदि मनुष्य इस उद्देश्य के प्रतिकूल, बिना धर्म और आत्म-कल्याण का ध्यान रखे, आँखें बन्द करके स्वार्थ साधन मे प्रवृत्त हो जायगा, न्याय अन्याय, उचित-अनुचित- शुभ-अशुभ का विवेक न रख कर किसी प्रकार अधिकाधिक धन-सम्पत्ति को संग्रह करना ही जीवन का लक्ष्य बना लेगा तो उसे अन्त मे पतन के गर्त मे ही गिरना होगा । जैसा इस मन्त्र में बतलाया गया है स्थायी और सच्चा सुख सम्यक ज्ञान और श्रेष्ठ बुद्धि

द्वारा ही प्राप्त हो सकता है और इन्हीं के लिये हमको परमात्मा की सेवा मे हृदय से प्रार्थना करते रहना चाहिये ।

आत्म कल्याण की अभिलाषा

अग्नआ याहि वीतये गृणा नो हव्य दातये ।
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ (उ० १—२—१)

"हे अग्ने (प्रकाश रूप परमात्मा) तुम अज्ञान (दुर्गुण) आदि का भक्षण करने और ज्ञान का प्रकाश करने के लिये हमारे यज्ञ को प्राप्त हो । दिव्य गुणो के प्रदाता बनकर तुम मेरे हृदयासन पर बिराजो ।"

मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति और कल्याण के लिये उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तीनो प्रकार के विकास की आवश्यकता है । सब प्रकार के सांसारिक कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिये शरीर का स्वस्थ और सशक्त होना आवश्यक है । निर्बल शरीर वाला इस सघर्षपूर्ण ससार मे कभी टिक नही सकता । इसके साथ ही मन और बुद्धि का उचित शिक्षा द्वारा विकास करना भी परमावश्यक है क्योकि जब तक ये सच्चे रूप मे मार्ग दर्शन न करें तब तक शारीरिक शक्ति प्राय: गलत रास्ते पर चली जाती है और लाभ के स्थान पर हानि उठानी पडती है । अन्त मे शरीर और मन दोनो को आत्मा के आदेशो का ध्यान रखना भी अनिवार्य है क्योकि हमारा अन्तिम लक्ष्य आत्म-कल्याण ही है । यदि केवल भौतिक उन्नति पर ही दृष्टि रखी गई और छल, बल और कौशल से किसी भी प्रकार स्वार्थ की पूर्ति की गई तो उससे आत्मिक शान्ति नही मिलेगी और इसके बिना सब मिट्टी ही है । इसलिये वेद के आरम्भ मे सर्व प्रथम प्रकाश रूप परमात्मा से यही प्राथना की गई है कि वह हमारे अज्ञान और उससे उत्पन्न होने वाले दुर्गुणो का नाश करके हमको सच्चा व कल्याणकारी ज्ञान-मार्ग दिखलावें । इसके लिये उपासक को अपना हृदय पवित्र करके उसे सदैव परमात्मा के सम्मुख आसन के रूप मे रखना चाहिये, जिस पर बिराज-मान होकर वह उसे असत्य मार्ग पर जाने से रोके और सत्कर्मों की प्रेरणा करे ।

हम सुमार्गगामी बनें

आनो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ।। (ऋ० १—२५ (१))

"हे मित्र ! हे वरुण ! हमारी इन्द्रियो के घर रूप देह (और मन) को प्रकाशयुक्त ज्ञान रस से सीचो और उत्तम रस से हमारे पारलौकिक स्थानो (जीवन) को भी सिंचित करो ।"

मनुष्य संसार में जितने भी प्रकार के काम करता है, उसका मुख्य साधन उसका शरीर और इन्द्रियाँ ही होती है । इन्ही के द्वारा वह भले या बुरे शुभ या अशुभ कर्म करने मे समर्थ होता है । इसीलिये दशो इन्द्रियो को दश घोडो की उपमा दी गई है और कहा गया है कि इनको मन रूपी लगाम और सयम रूपी चाबुक से वश मे रखना चाहिये, अन्यथा इनका कुमार्गगामी होकर मनुष्य को विपत्तिग्रस्त कर देना बहुत सम्भव है । अनियन्त्रित इन्द्रियाँ प्राय: दुख का ही कारण सिद्ध होती हैं और उनके कारण अनगिनती व्यक्तियो का जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है इसलिये वेद मन्त्र मे परमात्मा से यही प्रार्थना की गई है कि वह हमारी इन्द्रियो को ज्ञान रस से सीचे, अर्थात् उनको ऐसा प्रेरणात्मक ज्ञान प्रदान करे कि वे कभी कुपथगामिनी न हो, सत्य और न्याययुक्त व्यवहार को त्याग कर कभी असत् व्यवहार मे संलग्न न हो जाये क्योकि ससार मे मनुष्य के समाने हर तरह के ऐसे प्रलोभन आते ही रहते हैं जिससे उसकी न्याय बुद्धि दब जाती है और वह उचित अनुचित का ख्याल छोड कर केवल अपने लाभ की ही बात सोचने लगता है । पर ऐसा करने से उसे न तो इस लोक मे सच्चा सुख मिलता है और न उसका परलोक ही बन सकता है । इसलिये लोक और परलोक के सुधारने के लिये मनुष्य को सदैव परमात्मा से यही प्रार्थना करते रहना चाहिये कि वह हमारी ज्ञान-शक्ति को ऐसी श्रेष्ठ प्रेरणा देता रहे कि उसके द्वारा हम सदैव मङ्गलजनक और कार्य ही करते रहें और विपथगामी होने से बचें ।

ज्ञान-दान का पवित्र कर्त्तव्य

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर काव्येन
स चिद्विवेद निहितं यदासाम पीच्यां गुह्य नाम गो नाम ॥
(ऊ० १—२—१० ३)

"बुद्धिमान अनुष्ठानकर्ता, परमज्ञानी साधक, ऋषि इन्द्रियो (अथवा वेद वाणी) मे स्थित जो परमानन्द रूपी दुग्ध है, इसे यत्न पूर्वक प्राप्त करता है। अर्थात् सत्य ज्ञान का दृष्टा, मनुष्यो मे अग्रणी, सबको प्रभावित करने वाला विद्वान वही हो सकता है जो इस अध्यात्म तत्व को स्वय जानता है और दूसरो को भी बतलाता है।

वेद अमूल्य शिक्षाओ और उपदेशो का भण्डार है। उसमे परमात्मा ने ससार के शाश्वत और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तो का ज्ञान मनुष्यो के कल्याणार्थ प्रकट किया गया है। जो उनको हृदयङ्गम करके तदनुकूल आचरण करेगा, उनका लोक और परलोक मे कल्याण होना सुनिश्चित है। यद्यपि संसार मे भी सच्चा सुख, शाँति, सन्तोष, उसी को मिल सकता है जो धर्माचरण करता है और सत्य तथा न्याय के मार्ग से विचलित नही होता पर फिर भी यह साँसारिक जीवन बहुत समय का है। इसके पश्चात् मनुष्यो को परलोक यात्रा करनी ही पडती है और वहाँ इस दुनियाँ की चालवाजियो तथा छल कपट से जरा भी काम नही चल सकता। वहाँ वही सुखी रह सकता है जिसने अपना जीवन परमात्मा और आत्मा के आदेशानुसार व्यतीत किया है। इसीलिये इस मन्त्र मे यह उपदेश दिया गया है कि ज्ञानी पुरुष को सदैव वेदानुकूल सत्य सिद्धान्तो का अनुशीलन और मनन करके उसके रहस्य को स्वयं समझना चाहिये और अन्य कम बुद्धि वाले लोगो को भी समझना चाहिये। इसी मे जीवन की सफलता तथा कृतकृत्यता है। ससार मे धर्म का मार्ग अति सरल तथा सुगम होते हुये भी माया जाल मे फँसे लोगों के लिये महा कठिन है। सच्चा ज्ञानी और धर्मात्मा वही है जो ऐसे लोगो को प्रेरणा देकर सुमार्ग पर लावे और उनको पतन के गर्त

मे गिरने से बचावे। इसलिये वेद ने इस मन्त्र मे यज्ञ-दान की महत्ता को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है और प्रत्येक सच्चे विद्वान-ऋषि के लिये उसे आवश्यकीय कर्त्तव्य बतलाया है।

परोपकार सर्वोपरि कर्त्तव्य है

वषट्ते विष्णु वास आकृणोमि
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूय
पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ (ऋ० १०-११-४।३)

"हे विष्णो (यज्ञ रूप सर्व व्यापी भगवान) मै तुम्हारे निमित्त हव्य देता हूँ (तुम्हारी भक्तिपूर्ण हृदय से स्तुति करता हूँ)। तुम उसे ग्रहण करके वृद्धि को प्राप्त हो (यज्ञ कर्म को बढाओ) और सब देवताओ सहित हमारे रक्षक रहो।"

परमात्मा की जो शक्ति इस प्रत्यक्ष विश्व मे व्याप्त होकर इसकी निरन्तर वृद्धि ओर पालन कर रही है, उसको वेद में विष्णु नाम से सम्बोधित किया गया है। बह सदैव समस्त प्राणियो का कल्वाण करती रहती है और उन्हे हानिकारक मार्ग से बचने की प्रेरणा देती रहती है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह इस ईश्वरीय आदेश का ध्यान रखे और उसका पालन करता हुआ विष्णु के यज्ञ-कर्म मे यथा शक्ति सहयोग करता रहै। इस मन्त्र मे जो वषट्कारयुक्त हव्य देने का उल्लेख है, उसका आशय केवल अग्नि मे आहुति देने का नही वरन् हृदय से ईश्वरीय आदेश के पालन करने का भी है। ईश्वर वास्तव मे उसी की स्तुति, बिनय को ग्रहण कर सकता है और उसी को अपनी कृपा दान दे सकता है, जो उसकी आज्ञा को ठीक प्रकार से समझ कर सृष्टि कार्य मे सहायता पहुँचाने के लिये परोपकार का कार्य करता रहता है। समस्त सृष्टि के सचालन और पालन का भार भगवान पर ही है और वह प्रत्यक्ष रूप मे इसे मनुष्यो द्वारा ही सम्पन्न करता है। इसलिये भगवान का सच्चा भक्त वही है जो इस कार्य मे सहायक सिद्ध हो। अन्यथा अपने

स्वार्थ साधन के निमित्त सृष्टि मे अव्यवस्था उत्पन्न करना (जैसा आज कल अधिकांश व्यक्ति कर रहे है) और फिर भगवान से अपने कल्याण और उन्नति की प्रार्थना करना कोरा ढोग है। इसलिये इस मन्त्र मे हृदय से हव्य देने पर बल दिया गया है। जो उपासक लौकिक यज्ञ करते हुये उसके मूल उद्देश्य का भी ध्यान रखते है, वे ही परमात्मा के कृपा पात्र होते है।

ज्ञान-विज्ञान का स्रोत

सोमः पवते जनिता मर्ता नां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेजनिता सूर्य्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

(ऋ० ५-६-१६) (१)

"बुद्धि का जनक, आकाश नियन्ता, पृथ्वी को विस्तार देने वाला, अग्नि और सूर्य का प्रकाशक, इन्द्र और विष्णु को भी प्रकट करने वाला सोम पात्रो मे जाता हैं। (अर्थात् जो सोम रूप परमात्मा समस्त ज्ञान का आधार, आकाश तथा पृथ्वी के समान विस्तार अग्नि और सूर्य के समान अज्ञानान्धकार का नाशक, इन्द्र तथा विष्णु के समान सबका पोषण करने वाला है, वह हमारी आत्मा को प्रकाशित करे।"

यह सोम रूप परमात्मा ही मति (ज्ञान) का मुख्य स्रोत है। जब तक उसकी कृपा न हो तब तक मनुष्य के ज्ञान चक्षु नही खुलते और जब तक मनुष्य अज्ञान में पडा है तब तक उसका कोई महत्व नही। अज्ञानी तो लकडी, पत्थर, मिट्टी आदि जड पदार्थों के समान है जिसका कोई भी चालाक आदमी अपने लाभ के लिये इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। पर जब मनुष्य के भीतर ज्ञान का उन्मेप होता है और वह लौकिक तथा पारलौकिक विषयो के रहस्य को जानने लगता है, तो वह जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक सांसारिक विषयो मे ही सफल काम नही होता बरन् आकाश और पृथ्वी की महान शक्तियो के ज्ञाता और उपयोग करने वाला भी बन जाता है। वह अग्नि, सूर्य, जल आदि की शक्तियों को वशीभूत करके मानव जीवन को सब प्रकार से समृद्ध और

सुखी बना सकता है , इसलिए वेदो ने जगह-जगह ज्ञान की महत्ता और प्रधानता को दर्शाया है और उसकी प्राप्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना की है । इसी भाव को इससे अगले मन्त्र मे भी प्रकट किया गया है—

ब्रह्मा देवानां पदवी: कवीना मृषिर्विप्राणां
महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृघ्रुणां स्वधितिर्वनानां सोम:
पवित्र मत्येति रेभन् ॥

"ऋत्विज श्रेष्ठ ब्रह्मा परम मति से पद-योजना करने वाले सोम को शब्द (ज्ञान प्रदायक भावना) के साथ छानते है ।"

अध्यात्मिक दृष्टि से अन्यत्र इसका यह अर्थ किया है—"वह सोम जो दिव्यता की इच्छुक इन्द्रियो का ज्ञानोपदेष्टा, क्रान्त-दर्शन की इच्छुक इन्द्रियो का लक्ष्य, कर्मशील इन्द्रियो का ज्ञान प्रेरक, अन्वेषक इन्द्रियो को बल देने वाला, आकाश पूर्ति के लिये उन्हे वेग देने वाला है, वह सोम अन्तर्नाद करता हुआ अन्त करण मे प्रविष्ट होता है ।"

जब मनुष्य परमात्मा की कृपा से ज्ञान की प्राप्ति मे सफल हो जाता है तो उसके प्रभाव से उसकी कायापलट हो जाती है । उसकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ शक्तिशाली, सतेज और वेगवती होकर जीवन क्षेत्र मे एक नई क्रान्ति उपस्थित करने लगती है, उसकी सूझ बूझ खोज करने की बुद्धि. विघ्न बाधाओ का सामना करने का साहस, कठिन परिस्थितियो मे निश्चल होकर डटे रहने की वीरता आदि अनेक महत्व-पूर्ण गुणो का उसमे विकास होने लगता है । अज्ञानावस्था मे तो वह प्रत्येक नई बात से डरता रहता था और चाहता था कि किसी प्रकार लकीर पर चलता हुआ अपनी प्राण रक्षा कर सकू । किसी प्रकार मेरा जीवन कठिनाइयो से बच कर कट जाय । पर ज्ञान की शक्ति अन्त करण मे प्रविष्ट हो जाती है । तब वह गीदड की तरह डरपोक को दुस्साहस सिह तुल्य बना देती है । तब वह निर्भय होकर ससार मे सर्वत्र विचरण करने लगता है और अपनी उन्नति, लाभ, सुख के साधनो का भली

प्रकार उपयोग करने लगता है। ऐसा मानव-जीवन ही सफल और सार्थक माना जाता है और वह ज्ञान की प्राप्ति से ही सम्भव होता है।

इसी प्रकरण का तीसरा मन्त्र इस प्रकार है.—

प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिर स्तोमान पवमानो मनीषा।
अन्तः पश्यन्न वृजनेमावराण्यः तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्॥
(उ० ५—६—१९) (३)

"प्रवाहित नदी जैसे शब्द समूह को प्रेरित करती है, उसके समान ही सोम मन के प्रिय, हितकारी शब्दो को प्रेरणा देता है। वह विजय के ज्ञान वाला पराक्रम को प्राप्त करता है।"

आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—"वह सोम मनोवृत्तियो मे पहुँच कर नदी मे उठती लहरो के समान वाणी से प्रवृत्त स्तुतियो के समूह को प्रेरित करता है, इन्द्रिय रूप गौओ मे बल वीर्य का सिंचन करने वाला वह अन्तर्दृष्टा एव ज्ञानवान क्षुद्र ज्ञानवृत्तियो को अपने वश मे रखता है, उन पर नियन्त्रण रखता है।"

ज्ञान का लक्षण और प्रभाव केवल यह नही है कि वह भौतिक सम्पत्तियो की प्राप्ति मे सफल बना दे, वरन् इससे भी बढकर उसकी प्रशसा इस बात मे है कि वह मानसिक दृष्टि से भी मनुष्य का नवीनीकरण कर दे। सच पूछा जाय तो मनुष्य की वाह्य सफलताएँ उनके मनोराज्य के विकास और आन्तरिक शक्तियो पर ही आधारित होती है। जो मनुष्य सांसारिक सफलताओ का उद्देश्य सामान्य भोग विलास की पूर्ति ही समझ लेता है और अनियन्त्रित इन्द्रियो के वशीभूत होकर उन्ही की विषय पूर्ति मे निमग्न हो जाता है, उसका जीवन नष्ट और निरर्थक ही समझना चाहिये। धन, वैभव प्राप्त करके श्रेष्ठ रीति से जीवन व्यतीत करना और बात है तथा धन के मद से मत्त होकर भोगो को ही सब कुछ समझ लेना तथा मानव-जीवन के परम लक्ष्य से विमुख रहना दूसरी बात है। इसलिये इस मन्त्र मे परमात्मा से ज्ञान की प्राप्ति और उसके द्वारा जीवन को सशक्त, सबल बनाने की प्रार्थना के साथ-

साथ यह भी विनय की गई है कि शक्ति वैभव और सम्पत्ति को पाकर हम अपने वास्तविक स्वरूप को न भूल जाये। मनुष्य की प्रशसा इसी मे है कि वह क्षुद्र मनोवृत्तियो को वश मे रख कर उत्कृष्ट वृत्तियो को विकसित करे और अपने जीवन को लौकिक तथा पारलौकिक दोनो दृष्टियो से ग्रहणीय बनावे।

सच्चा भक्तिभाव

अग्ने मृडमता असय्य आदेवयु जनम्।
इयेथ बर्हिरासइम् (पू० १-२-२)

"हे अग्नि स्वरूप परमात्मा ! तुम महान और गमनशील (सर्वत्र व्यापक) हो, हमें सुख प्रदान करो। तुम देवदर्शन की कामना वाले (ईश्वर की पूजा करने के अभिलाषी) यजमान के निकट कुशारूप आसन पर बैठने के लिये आगमन करते हो अर्थात् अपने उपासकों के हृदयासन पर विराजमान होते हो।"

इस विश्व ब्रह्माण्ड मे जो सर्वोपरि सत्ता और महानशक्ति सर्वत्र व्याप्त है, वह भगवान ही की है। वही इस समस्त सृष्टि का सचालन करती है, प्राणी मात्र को उत्पन्न और पालन करती है और वे ही अन्त मे उसे स्वकर्मानुसार भली या बुरी गति देती है। इसलिये ससार मे जन्म लेकर मनुष्य का सर्व प्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह भगवान की पूजा, उपासना करे और हृदय मे सदा उनका ध्यान बनाये रहे। बिना भगवान की भक्ति के मनुष्य का जीवन सर्वथा नीरस और निस्सार है। जिसने केवल खाने कमाने को ही जीवन का सार समझ लिया और कभी भगवान के लोकहितकारी रूप का ध्यान नही किया, उसमें और पशु—पेड पत्थर मे कुछ भी अन्तर नही है। इसलिये इस मन्त्र द्वारा वेद भगवान ने मनुष्य मात्र को उपदेश दिया है कि यदि वे अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते है तो प्रकाशस्वरूप भगवान् अपने हृदयदेश मे स्थापित करें जिससे वहाँ फ़ैला हुआ अन्धकार दूर होकर कल्याण मार्ग की ओर कदम उठ सकें। साथ ही यह भी बतलाया गया है कि भगवान

की प्राप्ति मनुष्य को केवल बाहरी भजन-पूजन या हवन आदि से नही हो सकती वरन् इन कार्यों के साथ उसके भीतर भगवान् का सच्चा भक्तिभाव भी होना चाहिये। बिना आन्तरिक उत्कट अभिलाषा के केवल दिखावे के लिये अथवा दूसरों की नकल करते हुये भगवान की स्तुति के गीत गा लेने से काम नही चल सकता। भगवान परम दयालु हैं और वे प्राप्त भी हो सकते है, पर उसके लिये भक्त होने की शर्त अवश्य है। वे अभक्त मनुष्य को अर्थात् ऐसे लोगो को जिनकी दृष्टि केवल सांसारिक स्वार्थ-साधन पर ही रहती है, प्राप्त नही हो सकते।

सद्गति का मार्ग

आ वो राजान मध्वरस्य रुद्र होतार सत्ययज रोदस्यो:।
अग्नि पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम ॥
(पू० १-७-८)

"हे ऋत्विजो! (उपासको)! यज्ञ के स्वामी, होता (कर्म फल होता), रुद्र रूप (पापियो को दण्ड देने वाले, हिरण्यवर्ण वाले (ज्योति स्वरूप), अग्नि रूप तेजस्वी ईश्वर की मरने से पहले ही हवि द्वारा (भक्ति युक्त) उपासना करो।"

ससार मे मृत्यु से बढकर सुनिश्चित चीज और कोई नही है। मनुष्य कैसा भी बलवान्, बुद्धिमान, शक्तिशाली, ज्ञानी ध्यानी क्यो न हो एक दिन उसे इस भौतिक जगत को त्याग कर जाना ही पड़ता है। इसलिये प्रत्येक सज्ञान मनुष्य का परमावश्यक कर्त्तव्य यह है कि वह इस लोक के कर्त्तव्यो को करते हुये परलोक का ध्यान भी सदैव रखे। उसे भली प्रकार समझ रखना चाहिये कि परमात्मा जहाँ परम दयालु, कल्याणकारी, हितैषी, भक्तो पर कृपा रखने वाले है, वहाँ दुष्कर्म, पाप, निर्दयता, अत्याचरण के लिये उतने ही कठोर और दण्ड देने वाले भी हैं। वे समस्त संसार के स्वामी है और उनका कर्त्तव्य एक शासक की तरह भले और बुरे कर्मों का न्यायानुसार फल प्रदान करना भी है। इस कार्य मे वे किसी के साथ रियायत नही कर सकते। इसीलिये इस

मन्त्र में कहा गया है कि मनुष्य का हित इसी मे है कि मृत्यु के पूर्व ही हवि द्वारा उनकी पूजा करता रहे अर्थात् उनके आदेशानुसार ससार की भलाई के कामो मे सहयोग करता रहे। जो व्यक्ति दूसरो का अनहित करने वाले पाप कर्मो से बच कर रहता है और अपनी शक्ति के अनुसार सबके साथ भलाई का व्यवहार करता है, वह भगवान् के दरवार मे अवश्य सद्गति का अधिकारी माना जायगा।

सत्य व्यवहार की महत्ता

अलर्षिराति वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदनम् ॥
(ऋ० १०-१०-१४।२)

"हे स्तोताओ! (उपासको) सत्यानुयाइयों को दान देने वाले इन्द्र (परमात्मा) का स्तवन करो। यह कल्याण रूप दान देने की प्रेरणा वाला उपासक (भक्त) की कामना को व्यर्थ नही जाने देता।"

धर्म के ज्ञाता ऋषि-मुनियो ने मनुष्य को सदाचार के निमित्त जिन बातो का उपदेश दिया है, उनमे सत्य की बड़ी महिमा है। आजकल हम बहुत से लोगो को यह कहते सुनते है कि सच्चाई का जमाना तो गया, अब तो वही आदमी लाभ मे रहता है जो हर तरह की चालबाजी, झूठ आदि से काम लेना जानता है।' वास्तव मे देखा जाय तो ऐसे लोग दया के पात्र है। वे बेचारे कुछ चाँदी के टुकडो के लिये अपनी अमूल्य आत्मा का हनन करते है और अन्त मे सासारिक लाभ की दृष्टि से भी घाटे मे ही रहते है। हमारे शास्त्रकारो ने तो हजारो वर्ष पहले उच्च स्वर से यह घोषणा कर दी थी—सत्यमेव जयते नानृतम्।' विजय सत्य की हो होती है, झूँठ कभी नही जीत सकता। क्या यह शास्त्र वाक्य आज गलत सिद्ध हो सकता है? नही, ऐसा कभी नही हो सकता। जो लोग झूँठ को लाभदायक बतलाते हैं, वे संकीर्ण बुद्धि वाले और अदूरदर्शी हैं। उनकी निगाह जमीन पर पडे दानो पर लगी रहती है। किन्तु उस पर लगे हुये जाल को वे लोग नही देखते। असत्य व्यव-

हार के द्वारा मनुष्य दो चार दिन के लिये दूसरो को धोखे मे डाल सकता है, थोडा सा लाभ उठा सकता है, पर शीघ्र ही उसका भेद खुल जाता है और वह दीन-दुनियाँ कही का नही रहता। इसी तथ्य को प्रकट करने के लिये इस वेद-मन्त्र मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ईश्वर सत्यानुयाईयो को ही अपना कृपापूर्ण दान देता है। जो लोग उसके आदेशानुसार सत्य के अनुगामी बने रहते है, वह उनकी समस्त उचित कामनाओ को पूर्ण करता है। वह परमात्मा न्यायकारी और सत्य प्रिय है। वह कभी असत्य व्यवहार को आश्रय नही दे सकता और न ऐसा व्यवहार करने वाला कभी उसका कृपा पात्र हो सकता है जो मनुष्य सत्य की महिमा को भूल कर असत्य का मार्ग ग्रहण करते है, अपने कार्यों और वचन मे वास्तविकता का भाव नही रखते, वे शीघ्र ही अन्य लोगो की निगाहो मे गिर जाते है चाहे वे कुछ भमय के लिये सम्पत्ति-शाली दिखाई दे, पर न तो कोई उनको सम्मान की दृष्टि से देखता है और न उनका वैभव स्थायी होता है। इसलिये परमात्मा के आदेशा-नुसार सदैव सत्य पर ही स्थिर रहना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

आत्मसुधार की आवश्यकता

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन भूय इन्नु ते दान देवस्य पृच्यते॥
(पू० ३-७-८)

"हे इन्द्र (परमात्मन) आप हिंसक कदापि नही हो (अर्थात् किसी को अकारण दण्डित नही करते)। आप हविदाता के पास ऋत्विज को प्रेरणा करते हो अर्थात् दानशील परोपकारी को उसके सत्कर्मों का सुफल देते हो)। हे मघवन (भगवान) आपका बहुत सा दान हमें प्राप्त होता है।"

आजकल अनेक लोगो की यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि वे कारण व अकारण, समय अथवा जमाने को दोष देते रहते हैं। वे कहते हैं—"क्या करे जमाना ही ऐसा बुरा आ गया है कि भले आदमियो की मिट्टी खराब है।" पर वास्तविकता यह होती है कि वे स्वय दूषित विचार रखते हैं, वैसे ही कार्य भी करते है और फिर अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये जमाने को दोषी बनाते हैं। उपर्युक्त वेद मन्त्र मे स्पष्ट कहा गया है कि परमात्मा कभी किसी को अकारण दण्ड नही देता, अर्थात् जो लोग कष्ट पाते हैं अथवा जिनको किसी प्रकार का दण्ड मिलता है, वह उनके दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही होता है। अन्यथा जो व्यक्ति हृदय से भगवत् भक्त होगा और अन्य प्राणियो को भी भगवान का बनाया समझ कर उनके साथ सद्व्यवहार करेगा, वह न कभी दुखी हो सकता है, न उसका कभी बुरे रूप में नाश हो सकता है। उसे भगवान अपने कृपा रूपी दान से सदैव सन्तुष्ट ही रखते हैं। इसलिये वेद के उपदेशानुसार मनुष्य को सदा परमात्मा के आदेशो को ध्यान मे रख कर श्रेष्ठ रीति से कर्त्तव्य पालन में आत्मोत्कर्ष का प्रयत्न करते रहना चाहिये। इसमें यह भी संकेत किया गया है कि कर्मों का प्रतिफल इस जन्म में नहीं तो अन्य जन्मो मे भी मनुष्य को प्राप्त होता रहता है। जो पुण्य कार्य हम करते हैं, वे कभी नष्ट नही होते वरन् उनका लाभ हमको वृद्धिमत—बढ़े हुये रूप मे किसी न किसी प्रकार मिल कर रहता है।

भगवान् की न्यायशीलता

सनोमि त्वम स्मदा अदेवं क चिदत्रिणाम्।
साह्वाँ इन्द्रो परिवाधो अप द्वयुम्॥

(ऋ० १९-४-२० ३)

"हे सोम रूपी परमात्मन् हमारे सम्बन्ध मे पुरानी (सनातन मित्रता का ध्यान रखो। हमारी वृद्धि रोकने वालो (दुष्टतापूर्ण तत्वों) को हमारे मार्ग से हटाओ। तुम शत्रुओ को सताप करने वाले हो। इससे समस्त बाधको को मिटा डालो (अर्थात् जो दुष्ट, झूठे, कपटी व्यक्ति अथवा शक्तियाँ कल्याणकारी कामो मे बाधक हो, उन्हे नष्ट कर दो।)"

जैसा भगवान कृष्ण ने गीता मे कहा है "परित्राणाय साधूनाम विनाशायाच दुष्कृताम्" के सिद्धान्तनुसार परमेश्वर जहाँ एक ओर सज्जन और साधु प्रकृति के लोगो का पालन और सरक्षण करता है, वहाँ दूसरी ओर दुष्ट और कुकर्मियो पर अपना दण्ड प्रहार भी करता रहता है, यदि वह ऐसा न करता और दुष्ट तथा जघन्य वृत्ति के लोगों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उनके दुष्कर्मों का कठोर दण्ड न देता रहता तो अब तक यह सृष्टि कभी की समाप्त हो गई होती। अन्यायी, अत्याचारी, निर्दयी, स्वार्थी व्यक्ति परमात्मा के अस्तित्व को भूल कर, अपनी क्षणिक शक्ति के मद से उन्मत्त होकर दूसरो के साथ दुर्व्यवहार करता है, उनके स्वत्व का अपहरण करता है, उनको पीडित करता है और सोचता है कि इस ससार मे पाशविक बल के सिवाय और कुछ नही है। इसलिये सबको मारना, पीटना, लूटना खसोटना सबसे अच्छा और लाभदायक कार्य है। पर देर, सवेर रात दिन ऐसा आता है कि उसे अपने कुकृत्यो का परिणाम भोगना पड़ता है और पश्चाताप की अग्नि मे जलना पड़ता है। पाठक इतिहास को उठा कर उसके पन्नों पर दृष्टि डालें तो उनसे स्पष्टतः विदित होगा कि ससार मे जितने भी बड़े-छोटे अन्यायी, अत्याचारी हुये है, उन सबका अन्तिम परिणाम कठिन और शोकपूर्ण ही हुआ है। इसके विपरीत साधू और सज्जन व्यक्ति कष्ट सह कर भी कल्याणकारी स्थिति को प्राप्त हुये हैं। यदि उनको परमात्मा के मार्ग मे दुष्टो से सघर्ष करते हुये भी प्राणोत्सर्ग करना पडा है तो भी वे अन्तिम समय तक पूर्ण शान्ति और भगवान

की कृपा का अनुभव करते रहे है और बाद मे ससार मे उनकी प्रशसा भी की जाती है। इसी आधार पर इस मन्त्र मे ऋषि ने भगवान और भक्त के सनातन सम्बन्ध का उल्लेख करते हुये यही प्रार्थना की है कि उपासकों और साधकों के मार्ग मे जो बाधायें आती है, और दुष्ट प्रकृति के लोग उनके सत्कार्यों मे जो विघ्न उपस्थित करते हैं, इनको परमेश्वर अपनी शक्ति से हटावें और यथोचित दण्ड दे। भगवान सदा सज्जनों की रक्षा करते रहते हैं, यह ध्रुव सत्य है।

——०——

।। ॐ ।।

पूर्वार्चिकः

प्रथम प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—भरद्वाज, मेधातिथि:, उशना:, सुदीतिपुरुमीढौ, वत्स:, वामदेवा । देवता—अग्नि । छन्दः—गायत्री ।)

अग्न आ याहि वीतये गृणानगो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।।१।।
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेणां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ।।२।।
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतम् ।।३।।
अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ।।४।।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
अग्ने रथ न वेद्यम् ॥५॥

त्व नो अग्ने महोभि पाहि विश्वस्या अराते ।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिर. ।
एभिर्वर्धास इन्दुभि ॥७

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।
अग्ने त्वा कामये गिरा ॥८

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत् ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥९

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे ।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥ (१।१)

हे अग्ने ! हमारी स्तुति से हवि ग्रहण करने के निमित्त आकर देवगण को हवि पहुँचाने के लिये, उनके आह्वान के निमित्त विराजिये ॥१॥ हे अग्ने ! तुम सर्व यज्ञों के सम्पन्नकर्ता हो। तुम देवगण को आह्वान करने वाले ऋत्विजों द्वारा स्तुति-पूर्वक गार्हपत्य यज्ञ के निमित्त प्रतिष्ठित किये जाते हो ॥२॥ हम, देवों के आह्वानकर्ता, सर्वज्ञाता, धनपति वर्तमान यज्ञ को सम्पन्न करने वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥३॥ उपासकों को धन-दान का इच्छुक, प्रदीप्त अग्नि हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हुआ दुष्टों और अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करें ॥४॥

हे अग्ने ! साधकों को धनदाता होने के कारण मित्र तुल्य प्रसन्नता प्रदान करने वाले पूज्य ! मेरी स्तुति से प्रसन्न होओ ॥५॥ हे अग्ने ! तुम हमें धनैश्वर्यवान् करते हुये शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ॥६॥ हे अग्ने ! मेरे द्वारा उत्तम प्रकार से उच्चारित स्तुतियों को आकर सुनो और सोम-रस द्वारा बढ़ो ॥७॥ हे अग्ने तुम्हें अपने कल्याणार्थ आकाश से आकर्षित करना चाहता हूँ ॥८॥ हे अग्ने ! अथर्वा ने मूर्धा के समान अखिल विश्व के धारणकर्ता, तुमको अरणियो से मन्थन कर प्रकट किया ॥९॥ हे अग्ने तुम हमारा महान् रक्षा के लिये सूर्यादि लोकों का सम्पन्न करो, क्योंकि तुम अत्यन्त प्रकाशित दिखाई देते हो ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि - आयुङ्क्ष्वाहि:, वामदेव, प्रयोग, मधुच्छन्दा:, शुन शेप:, मेधातिथि:, वत्स । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

नमस्ते अग्ने ओजसे गृणन्ति देव कृष्टय: ।
अमैरमित्रमर्दय ॥१

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृत: ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥३

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥४

जराबोध तद्वि विड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥५

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६

अश्वं न त्वा वारवन्त वन्दध्या अग्निं नमोभि ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७

और्वं भृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥८

अग्निमिन्धानो मनसा धिय सचेत मर्त्यः ।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥९

आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥ (१-२)

हे अग्ने! बल की कामना वाले पुरुष तुम्हारे लिये नमस्कार करते हैं, अतः मैं भी तुम्हें नमस्कार करता हूँ। अपने पराक्रम के द्वारा शत्रु का संहार करो ॥१॥ हे अग्ने! तुम यज्ञ के साधन रूप, हविवाहक और देवताओं के दूत रूप हो। मैं तुम्हें वाणी रूप स्तुति के द्वारा प्रसन्न और प्रवृद्ध करता हूँ ॥२॥ हे अग्ने! भगनियों के समान यजमान की स्तुतियाँ यश-गान करती हुई तुम्हारी सेवा में जाती हैं और तुम्हें वायु के योग से प्रदीप्त करती हैं ॥३॥ हे अग्ने! हम तुम्हारे उपासक दिन और रात्रि में नित्य प्रति ही अपनी श्रेष्ठ बुद्धिपूर्वक तुम्हारी सेवा में

उपस्थित होते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति द्वारा प्रबुद्ध होने वाले हो । सब यजमानों पर अनुग्रह करने के लिये और इस यज्ञ का सम्पन्न करने के लिये इस यज्ञ मण्डप में प्रविष्ट होओ । यह यजमान रुद्रात्मक अग्नि के निमित्त दर्शनीय स्तुति कर रहा है ॥५॥ हे अग्ने ! उस श्रेष्ठ यज्ञ की ओर देखकर सोम पीने के निमित्त तुम बारम्बार बुलाये जाते हो । अतः देवताओं के इस यज्ञ में आगमन करो ॥६॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञो के अधिपति रूप से प्रसिद्धिप्राप्त एवं पूंछ वाले अश्व के समान हो हम स्तुतियों द्वारा तुम्हें नमस्कार करने को उद्यत हैं ॥७॥ भृगु के समान ज्ञानी, कर्म करने वाले एवं वड़वानल रूप से समुद्र में वर्तमान श्रेष्ठ अग्नि को मैं आहूत करता हूँ ॥८॥ अग्नि को प्रदीप्त करने वाले पुरुष अपनी हार्दिक भावना और बुद्धपूर्वक, ऋत्विजों के सहयोग से अग्नि का चैतन्य करें ॥९॥ यह अग्नि जब स्वर्ग के ऊपर सूर्यरूप से प्रकाशित होते हैं, तब सभी प्राणी उन निरन्तर गमनशील और आश्रयरूप सूर्य के तेज का दर्शन करते हैं ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषिः—प्रयोगः, भरद्वाजः, वामदेव., वसिष्ठः, विरुपा., शुन.शेषः, गोपवनः, प्रस्कण्वः, मेधातिथि., सिन्धुद्वीप आम्बरीषः, त्रित आपत्यो वः, उशना । देवता—अग्नि. । छन्द.—गायत्री ।)

अग्नि वो वृधन्तमध्वराणा पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यसद् विश्व न्यात्रिणम् ।

अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥२

अग्ने मृड महां अस्यय आ देवयु जनम् ।

इयेथ बर्हिरासदम् ।३

अग्ने रक्षा णो अहसः प्रति स्म देव रोषतः ।

तपिष्ठैरजरो दह ॥४

अग्न युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।

अर वहन्त्याशवः ॥५

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्त धीमहे वयम् ।

सुवीरमग्न आहुत ॥६

अग्निर्मूर्द्धा दिव ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।

अपा रेतासि जिन्वति ॥७

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायवं नव्यासम् ।

अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥८

त त्वा गोपवनी गिरा जनिष्ठदग्ने अंगिरः ।

स पावक श्रुधी हवम् ॥९

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥१२
शनो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि सवन्तु नः । १३
कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४　　(१।३)

हे ऋत्विजा ! तुम अहिंमनीय याज्ञिकों के बन्धु, बलशाली और ज्वालाओं से प्रवृद्ध अग्निदेव की सेवा मे जाओ ॥१॥ यह अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से सब राक्षसों और विघ्नों को दूर करे। यह अग्नि हम उपासकों को सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करे ।२॥ हे अग्ने तुम महान् एवं गमनशील हो। हमे सुख प्रदान करो। तुम देवदर्शन की कामना वाले यजमान के निकट कुशा रूप आसन पर बैठने के लिये आगमन करते हो ॥३॥ हे अग्ने ! पाप से हमारी रक्षा करो। हे दिव्य तेज वाले अग्ने ! तुम अजर हो। हमारी हिंसा करने की इच्छा करने वाले शत्रुओं को अपने संतापक तेज से भस्म कर दो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम्हारे द्रुतगामी कुशल अश्व तुम्हारे रथ को भली प्रकार वहन करते हैं। उन अश्वों को यहां आगमन के निमित्त रथ मे योजित करो ॥५॥ हे अग्ने तुम धन के स्वामी, अनेक यजमानों द्वारा आहूत हुए एवं उपासना के पात्र हो। तुम तेजस्वी की स्तुति करने पर सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। हमने तुम्हें यहां प्रतिष्ठित किया है ॥६॥ स्वर्ग से महान् देवताओ मे श्रेष्ठ और

पृथ्वी के अधीश्वर यह अग्न जलों के सारूप जगम जीवों को जीवन देते हैं ।।७।। हे अग्ने ! हमारे इस हविरन्न और नवीन स्तुतिओं को देवताओं के समक्ष निवेदित करो ।।८।। हे अग्ने तुम्हें स्तुतिरूप वाणी से प्रवृद्ध करते है । तुम शोधक और सवत्र गमनशाल हो । हमारे इस आह्वान को श्रवण करो ।।९।। क्रान्त-दर्शी, अन्नों के स्वामी एव हविदाता यजमान को रत्नादि धन देने वाले अग्निदेव हावयो से व्याप्त करते है ।।१०।। सब प्राणियों के दर्शनार्थ सूर्य की रश्मियाँ वन-प्रसिद्ध एवं जातवेद, तेजस्वी सूर्यात्मक अग्नि को उन्नत करती है ।।११।। हे स्तोताओ ! इस यज्ञ में क्रान्तदर्शी, सत्य धर्म वाले, तेजस्वी और शत्रुओं का नाश करने वाले अग्नि की सेवा में स्तुति करें ।।१२।। हमारा कल्याण हो, दिव्य जल हमारे अभीष्ट पूरक यज्ञ के अंग रुप हो और हमारे पीने के योग्य हों । वे जल हमारे रोगों का शमन करने वाले हों, हमारे रोग उत्पन्न न हुये हों, उन्हें उत्पन्न होने से रोकें । यह जल हमारे ऊपर अमृत-गुण वाले होकर स्रवित हों ।।१३।। हे मर्त्य-रक्षक अग्ने ! तुम इस समय किसके कर्म को वहन कर रहे हो ? किस कर्म से तुम्हारी स्तुतियाँ गौओं को प्राप्त कराने वाली होंगी ? ।।१४।।

चतुर्थ दशति

ऋषिः—शयुः, भर्ग, वसिष्ठः भरद्वाजः, प्रस्कण्वः, तृणपाणिः, विरूपः, शुन.शेष, सोभरिः । देवता—अग्निः । छन्दः—बृहती ।)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र बयममृतं जातवेदसं प्रिय मित्र न शंसिषम् ।।१।।

पाहि नो अग्न एकया पाहत द्वितीयया ।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२

बृहद्भिरग्ने अर्चिभि शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ् यरेवत् पावक दीदिहि ॥३

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियास. सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानानूर्व दयन्त गोनाम् ॥४

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महां असि दिवस्पायुर्दु रोणयु ॥५

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्र राधो अमर्त्य ।
आ दाशषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवां उषर्बु ध ॥६

त्व नश्चित्र ऊत्या वसो राधासि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७

त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋत कविः ।
त्वा विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः॥८

आ नो अग्ने वयोबृध रयि पावक शस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृह सुनीती सुयशस्तरम् ॥९

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रा जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये
॥१०॥ (११४)

हे श्रोताओ ! सब यज्ञों में बढ़ने वाले अग्नि के निमित्त तुम भी स्तुति उच्चारण करो। उन अविनाशी, मित्र, सब प्राणियों के जानने वाले और प्रिय अग्नि की हम भी भले प्रकार स्तुति करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम अपनी एक स्तुति और दूसरी स्तुति से हमें रक्षित करो। हे अग्नि के स्वामी अग्ने ! तुम हमारी तीसरी और चौथी स्तुति सुनकर भले प्रकार रक्षा करो ॥२॥ हे तरुणतम अग्ने ! तुम श्रेष्ठ गुण सम्पन्न और शुद्ध करने वाले हो। अपने उज्ज्वल तेज से भरद्वाज के लिये प्रज्ज्वलित होने वाले अत्यन्त तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् होकर हमारे लिये भी प्रज्ज्वलित होओ ॥३॥ हे अग्ने ! यजमानों द्वारा स्वाहुत हुये तुम धन सम्पन्न और दानशील होकर हमारे मनुष्यों को गौएँ प्रदान करते हो। तुम अपने स्तोताओं से प्रीति करने वाले होओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम सब प्राणियों के स्वामी, स्तुत्य और राक्षसों को सन्तप्त करने वाले हो। हे गृहस्वामी अग्निदेव ! तुम पूजनीय, यजमान के घर को न छोड़ने वाले स्वर्ग के रक्षक हो। इस यजमान के यहाँ सदा स्थिर रहो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम सब उत्पन्न जीवों के जानने वाले और अमरशील हो। इस हविदाता यजमान के लिये उषा देवता द्वारा प्राचीन आश्रययुक्त अद्भुत धनों को लेकर आओ और उषाकाल में जागृत हुये देवताओं को भी यहाँ बुलाओ ॥६॥ हे अग्ने ! तुम दर्शनीय एवं व्यापक हो। हमारे लिये अपने रक्षा-साधनों को धनों के सहित प्रेरित करो, क्योंकि तुम इस लोक के धन को प्रेरणा करते हो। हमारे पुत्र के लिये भी शीघ्र ही सुसम्मानित बनाओ ॥७॥ हे अग्ने तुम दुःखों के दूर करने वाले क्रान्तदर्शी, सत्यस्वरूप एवं महान हो। तुम समिधाओं द्वारा प्रदीप्त होने वाले और मेधावी अग्नि की, स्तोतागण उपासना करते हैं ॥८॥ हे पावक ! अन्न की वृद्धि करने वाले

प्रशंसित धन को हमारे लिये लाओ । हे घृत के समीप रहने वाले अग्ने ! अपनी श्रेष्ठ नीति के द्वारा हमारे लिये भी अनेक उपासकों द्वारा काम्य सुयश रूप धन को प्रदान करो ॥९॥ जो अग्नि आनन्ददायक और होता रूप से यजमानों को समस्त धना के देने वाले हैं उन अग्नि के लिये हर्ष प्रदायक सोम के प्रमुख पात्र के समान स्तोम हमें प्राप्त हों ॥१०॥

पञ्चम दशति

ऋषि.—वसिष्ठः, भर्गः, सौभरिः, मनुः, सुदतिपुरुमीढौ, प्रस्कण्व., मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च, विश्वामित्र., कण्वः, । देवता—अग्नि., इन्द्र. । छन्द बृहती ।)

एना वो अग्नि नमसोर्जो नपातमा हुव ।
प्रिय चेतिष्ठमरति स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१

शेषे वनेषु मातृषु स त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि ॥२

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्नि नक्षन्तु नो गिरः ॥३

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४

अग्निमोडिष्वावसे गाथाभि शीरशोचिषम् ।
अग्नि राये पुरुमीढश्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्नि्‌ नभिर्देवैरग्ने सयावभि. ।
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमाप्रातर्यावभिरध्वरे ॥६

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।७

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८

कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्‌ दूरे सन्निहाभवः ॥९

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१० (१५)

उन बल के पुत्र, हमारे प्रिय ज्ञाता, श्रेष्ठ यज्ञ वाले, स्वामी, सब देवताओं के दूत रूप से प्रतिष्ठित एवं अविनाशी अग्नि को मैं नमस्कार पूर्वक आहूत करता हूं ।१। हे अग्ने तुम वनों में और मातृभूता अरणियों में स्थित रहते हो। याज्ञिक मनुष्य तुम्हें समिधाओं से प्रज्ज्वलित करते हैं, तब तुम निरालस्य और प्रबुद्ध होकर यजमान की हवि का देवताओं के पास वहन करते हो। फिर तुम देवताओं के मध्य विराजमान होकर सुशोभित होते हो ॥२॥ जिस अग्नि के द्वारा यजमानों ने कर्मों को किया, वह मार्गों के जानने वाले अग्नि दर्शनीय रूप से प्रकट हुये। उन श्रेष्ठ वर्ण वाले अग्नि के लिये हमारी स्तुति रूप वाणियाँ प्रस्तुत हों ॥३॥ उक्थ युक्त अहिंसित यज्ञ में यह अग्नि

ऋत्विजों द्वारा वेदी में स्थापित हुए, जैसे सोमाभिषवण फलक कुशा पर आगे रक्खे जाते हैं। हे मरुद्गण! हे ब्रह्मणस्पते! ऋचा रूप स्तुतियों के द्वारा तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ मैं तुम्हारी वरणीय रक्षा को मांगता हूँ ॥४॥ हे स्तोता! इन विस्तृत ज्वालाओं वाले अग्नि को, रक्षा और धन की कामना से स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न करो। इनके यश को सुनकर अन्य मनुष्य भी इनकी स्तुति करते हैं। वे अग्नि मुझ यजमान को गृह प्रदान करें ॥५॥ हे समर्थ कानों वाले अग्ने! हमारी स्तुति को सुनो। मित्र और अर्यमा देवता प्रातःकाल यज्ञ में जाने वाले सब देवताओं के सहित तथा अग्नि के समान गति वाले वह्नि देवता के सहित इस यज्ञ मे कुशाओं पर बैठें ॥६॥ देवोपासकों द्वारा आहूत इन्द्रात्मक अग्नि सब लोकों की आश्रयरूपा पृथिवी को देवताओं के लिये हवि-वहन करने मे प्रवृत्त करते है। यजमान इन्हें बलपूर्वक पुकारते हैं इसलिये यह अपने स्थान स्वर्ग मे रहते हैं ॥७॥ हे इन्द्र तुम इस समय पृथ्वी से, अन्तरिक्ष से या नक्षत्रों से जगमगाते हुये महान् स्वर्ग लोक से यहाँ आकर मेरे शरीर और वाणी के द्वारा प्रवृद्ध होओ। हे श्रेष्ठ कर्म वाले इन्द्र! तुम हमारे मनुष्यो को फलों से सम्पन्न करो ॥८॥ हे अग्ने! वनों की इच्छा करके भी उन्हे छोड़कर तुम मातृरूप जलों को प्राप्त हुए हो। इस कारण तुम्हारा निवर्तन भी असह्य हो जाता है। तुम अप्रकट रहने पर इन अरणियों के द्वारा सब ओर से प्रकट होते हो ॥९॥ हे अग्ने! तुम ज्योतिस्वरूप हो यजमानों के निमित्त तुम्हें प्रजापति ने देव-याग-स्थान मे स्थापित किया था। यज्ञ के लिये प्रकट हुये और हवियों से तृप्त हुये तुम कण्व ऋषि के निमित्त प्रदीप्त हुए थे। ऐसे तुम्हें सब प्राणी नमस्कार करते हैं ॥१०॥

(द्वितीयोऽर्ध)

प्रथम दशति

(ऋषि—वसिष्ठ, कण्व, सौभरि, उत्कील, विश्वामित्र।
देवता—अग्नि, ब्रह्मणस्पति, यूप, छन्द, बृहती।)

देवो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिचध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वा देव ओहते ॥१

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥२

ऊर्ध्व ऊषुण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥३

प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्त अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥५

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।

राय ईशे स्वापत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६

त्वमग्ने गृहपतिस्त्व होता नो अध्वरे ।

त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये ।

अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥८॥१।६

धनों के देने वाले अग्निदेव हवि से सम्पन्न और सब ओर से सिंचित तुम्हारे स्रुक की भी कामना करें और होता के चमस को सोम से सम्पन्न करें। फिर वे अग्नि तुम्हारी हवि का हवन करें। १॥ हमे ब्रह्मणस्पति देव प्राप्त हों। सत्य और प्रिय वाणी प्राप्त हो। सभी देवता हमारे शत्रुओं को नष्ट करें। मनुष्यों का हित करने वाले पंक्ति का यज्ञ का सामीप्य हमें प्राप्त हो ॥२॥ हे अग्ने उन्नत होकर हमारी रक्षा के लिये सुप्रतिष्ठित होओ, सविता के समान उन्नत होकर हमारे लिये अन्नदाता बनो। हम ऋत्विजो के साथ तुम्हे आहूत करते है ॥३॥ हे श्रेष्ठ वास रूप अग्ने! धन की कामना वाला जो उपासक तुम्हें प्रसन्न करता है। जो मनुष्य तुम्हारे लिये हवि देने की इच्छा करता है, वह उक्थ उच्चारण करने वाला सहस्रों के पोषक पुत्र को धारण करता है ॥४॥ देवाश्रय प्राप्त अनेक प्राणियों पर अनुग्रह के निमित्त मन्त्र रूप स्तुतियों से महान् अग्नि की उपासना करते हैं। उन अग्नि को अन्य ऋषियो ने भी भले प्रकार दीप्त किया है ॥५॥ यह यजनीय अग्नि सुन्दर सामर्थ्ययुक्त सौभाग्य के स्वामी हैं। गौ आदि पशु, सन्तान तथा धनादि के अधिपति हैं। यह वृत्र रूप शत्रु नाश के भी स्वामी हैं ॥६॥ हे अग्ने! हमारे इस यज्ञ में तुम गृहपति और होतारूप हो। तम ही पोता संज्ञक ऋत्विज हो।

अतः श्रेष्ठ हवि का यजन करो और हमारी याचना पूर्ण कराओ ॥७॥ हे अग्ने तुम हमारे सखा हो। श्रेष्ठ कर्म करने वाले हम मनुष्यों को सरलता से प्राप्त होने वाले हो। हम अपनी रक्षा के निमित्त तुम अहिंसनशील को वरण करते हैं ॥८॥

द्वितीय दशति

ऋषि श्यावाश्ववामदेवौ, उपस्तुतो वार्ष्टिहव्य, बृहदुक्थ, कुत्स भरद्वाज, वामदेव., वसिष्ठः, त्रिशिरास्त्वाष्ट्र । देवता—अग्निः ।

छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, गायत्री ।

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥१
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो नयो मातरावन्वति धातव।
अनूधा यदज जनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि द्त्यां चरन् ॥२
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा स विशस्व।
संवेशनस्तन्वे चारुरेधि प्रिया देवानां परमे जनित्रे ॥३
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ
जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्न पात्रं जनयन्त
देवा ॥५
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवा. ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो
जिग्युरश्वा ॥६
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्यो. ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७
इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८
प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥९
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्व्युम् ॥१०॥ (१७)

हे ऋत्विजो ! अग्नि देवता को आहूत करो। इन्हें हवि से प्रसन्न करो। पृथ्वी की उत्तरवेदी में गृह स्वामी और होता रूप इन अग्नि की स्थापना करो। जिन अग्नि को हमने नमस्कार किया है, उन्हें यज्ञ मण्डप में प्रतिष्ठित करो ॥१॥ शिशु रूप एवं तरुण अग्नि का हवि-वहन कार्य अद्भुत है। जो अग्नि मातृभता

द्यावा पृथिवी में स्तनपान को प्राप्त नहीं होता, उस अग्नि को यह लोक प्रकट करे। उत्पन्न होने पर यह महान् दौत्य कर्म वाले अग्नि हवि-वहन करते हैं ॥२॥ हे मृत पुरुष! यह अग्नि तेरा एक अंश है, तू इस अंश के सहित वाह्य अग्नि में सम्मलित हो और वायु तेरा अंश है, उसके सहित वाह्य वायु मे मिल। आदित्य रूप तेज से अपने आत्मा को मिला। देह-प्राप्ति के लिये मंगल रूप होकर देवताओं के जनक सूर्य में प्रविष्ट हो ॥३॥ उत्पन्न जीवों के ज्ञाता और पूजनीय अग्नि के निमित्त इस स्तोत्र को संस्कृत करते हैं। हमारी श्रेष्ठ मति इन अग्नि की सेवा करने वाली हो। हे अग्ने! हम तुम्हारे मित्र होकर किसी के द्वारा संतप्त न हों ॥४॥ स्वर्ग के मूर्द्धारूप, पृथ्वी के अधिपति, क्रान्त-दर्शी, कर्म के साधन रूप, सृष्टि के आरम्भ काल मे उत्पन्न, निरन्तर गमनशील देवताओं के मुख-रूप वैश्वानर अग्नि को ऋत्विजों ने हमारे यज्ञ में अरणियों द्वारा प्रकट किया ॥५॥ हे अग्ने! स्तोतागण उक्थों के द्वारा अपनी कामनाओं को तुम्हारे सामने प्रकट करते हैं। तुम स्तुतियों के साथ वर्तमान रहने वाले को, जैसे अश्व युद्ध को अपने अधीन कर लेते हैं, वैसे ही स्तुतियाँ अपने आधीन कर लेती हैं ॥६॥ हे ऋत्विजो! यज्ञ के स्वामी, होता, रुद्ररूप, पार्थिव अन्नों के देने वाले, हिरण्यवर्ण वाले इन अग्नि की, मरने से पहले ही हवि द्वारा उपासना करो ॥७॥ तेजस्वी अग्नि नमस्कार के सहित प्रदीप्त होता है। जिन अग्नि का रूप घृताहुतियुक्त होता है और मनुष्य जिनकी स्तुति विघ्नों के उपस्थिति होने पर करते हैं, वह अग्नि उषा काल में सर्व प्रथम प्रज्ज्वलित होते हैं ॥८॥ अत्यन्त ज्ञानी अग्नि द्यावा-पृथ्वी को प्राप्त होकर देवाह्वान के समय वृषभ के समान शब्द करते हैं। अन्तरिक्ष के निकट प्रकाशमान सूर्य रूप होकर फैलते

और जलों के मध्य विद्युत रूप से प्रवृद्ध होते हैं ॥६॥ अत्यन्त यशस्वी, दूर से ही दर्शनीय, गृह रक्षक एवं हाथों से उत्पन्न किये अग्नि को ऋत्विग्गण उँगुलियों से प्रकट करते हैं ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषि—बुधगाविष्ठिरौ, वत्सप्रि, भरद्वाज, विश्वामित्रः, वसिष्ठ, पायुः । देवता—अग्नि, पूषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिव यर्त मुषासम्
यह्‌वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानव सस्रते नाक-
मच्छ ॥१

प्रभूर्जयन्त महा विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तं ग र्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रु न वर्सणा धन-
र्चिम् ॥२

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह
राति रस्तु ॥३

इडामग्ने पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वष्मे ॥४

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनपाः ॥५

प्र सम्राजमसुरय्य प्रशप्त पुसः कृष्टीनामनुमाद्दस्य ।
इन्द्रष्येव प्र तवषष्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥६

अरण्योर्निहित जातवेदा गर्भ इवेत् सृभृतो गर्भिणीभि ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्नि. ॥७

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षासि पृतनासु जिग्यु: ।
अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥ (१।८)

यह ग्नि समिधाओं से प्रज्ज्वलित होकर जैसे गौ के लिये प्रात काल जा‹ते हैं, वैसे ही उषाकाल मे सावधानी से आते हैं और उनकी ज्वालाएँ, शाखाओं वाले वृक्ष के समान अपने स्थान को छोड़ते हुये अन्तरिक्ष तक भले प्रकार फैल जाती हैं ॥१॥ हे स्तोता ! यह महान् अग्नि राक्षसों के जीतने वाले और मेधावियों के धारण करने वाले, पुरों के रक्षक हैं। इन अग्नि की स्तुति करने की सामर्थ्य प्राप्त करो। वे अग्नि स्तुतियों से उपासना योग्य, कवच के समान लपटों वाले, हरी मूँछ वाले और प्रसन्न स्तोत्र वाले है, इनका पूजन करो ॥२॥ हे पूषन ! एक तुम्हारा शुक्ल वर्ण दिन रूप में और दूसरा कृष्ण वर्ण रात्रि रूप में है, इस प्रकार तुम विषम रूप वाले हो और सूर्य के समान प्रकाश वाले हो। तुम अन्नवान होकर सब प्राणियों का पालन करते हो तुम्हारा दान हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥३॥ हे अग्ने ! अनेक कामधेनुओं को देने वाली इडा देवता का निरन्तर

यजन करने वाले मुझ यजमान का कार्य सिद्ध करो। तुम्हारी श्रेष्ठ मति हमारी ओर हो और हम पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न हो ॥४॥ विद्युत रूप से अन्तरिक्ष में वर्तमान अग्नि ही इस यज्ञ मे हैं। वे महान् अन्तरिक्ष के ज्ञाता, हवि धारक अग्नि तुम उपासक के लिये अन्न-धन प्रेरित करे और तेरे देह के रक्षक हो ॥५॥ मनुष्य के पूज्य और इन्द्रात्मक बलवान अग्नि के श्रेष्ठ सुशोभित रूप की स्तुति करो और उनके उत्कृष्ट कर्मों का वर्णन करो ॥६॥ सब प्राणियों के ज्ञाता अग्नि गर्भ के समान अरणियों द्वारा धारण किये गये हैं। वे हवियुक्त अग्नि अनुष्ठान आदि में जागरित होकर नित्य स्तुत होते हैं ॥७॥ हे अग्ने! तुम सदा से राक्षसों के बाधक रहे हो और राक्षस तुम्हे युद्धों में पराभूत नहो कर सके। तुम ऐसे मायावी राक्षसो को अपने तेज से भस्म करो। यह तुम्हारी ज्वालाओ से बच न सकें ॥८॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि—गय आत्रेय, वामदेव, भरद्वाज, मृक्तावहा द्वित, वसूयवोऽत्रय, गोपवन, पूरुरात्रेय, वामदेव, कश्यपो वा मारीच, मनुर्वा वैवस्वत उभौ वा। देवता—अग्नि। छन्द—अनुष्टुप्)

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१

यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धत मर्त्यः।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्ष त दैव्यम् ॥२

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्व कृपा पावक रोचसे ॥३

त्व हि क्षैतवद् यशोऽग्न मित्रो न पत्यसे ।
त्व विचर्षण श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥४
प्रातरग्नि पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथि: ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्य मर्ता स इन्धते ॥५
यद्वा वाहिष्ठ तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयिस्त्वद् वाजा उदीरते ॥६
विशोविशो वो अतिथि वाजयन्त पुरुप्रियम् ।
अग्नि वो दुर्य वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभि. ॥७
बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्र न प्रशस्तये भर्तासो दधिरे पुर ॥८
अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यः स्म श्रुतर्वन्नर्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥९
जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भि. सहाभुवः ।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥
(११९)

हे अग्ने ! तुम हमे ओजस्वी धन लाकर दो । तुम्हारी गति कभी नहीं रुकती । तुम हमें स्तुत्य धन से सम्पन्न करो और अन्न के मार्ग को प्रशस्त करो ॥१॥ पुत्रोत्पत्ति के समय मनुष्य अग्नि को प्रज्ज्वलित करे और हवियों से यजन करे । तब वह दिव्य कल्याण को भागने मे समर्थ होगा ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हारा उज्ज्वल धूम अन्तरिक्ष में फैलता है और रूप हो जाता है । हे पावक ! सूर्य के समान प्रशमा वाली स्तुति से प्रशंसित हुये

तुम अपनी दीप्ति से सुशोभित होते हो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम मित्र देवता के समान शुष्क काठ के सहित अन्न को प्राप्त करते हो और सब के द्रष्टा होते हुये, यजमान के गृह में अन्न की वृद्धि करते हो ॥४॥ धन-धारक अनेकों के प्रिय, अतिथि के समान पूज्य अग्नि की प्रातःकाल स्तुति की जाती है। उन अमरणशील अग्नि में ही सब मनुष्य हव्य डालते हैं ॥५॥ हे ज्योतिस्वरूप अग्ने ! तुम्हारे निमित्त महान स्तोत्र उच्चारित किया जाता है तुम ही अपरिमित अन्न-धन प्रदान करो। अनेक उपासक तुम से महान् धनों को प्राप्त करते हैं ॥६॥ हे यजमानों ! अन्न-कामना करते हुये तुम सबके प्रिय अग्नि की सेवा करो। मैं भी तुम्हारे लिये हितकारी अग्नि की सुख प्राप्ति के लिये मन्त्र रूप वाणी से स्तुति करता हूँ ॥७॥ यज्ञ में दीप्त हुये अग्नि के लिये हविरन्न दिया जाता है इसलिये हे यजमानों ! मनुष्यगण जिस अग्नि को मित्र के समान स्तुति करते हैं, उन अग्नि के लिये तुम भ हविरन्न प्रदान करो ॥८॥ वृत्रनाशक, बड़े मनुष्य-हितैषी अग्नि को हम प्राप्त हुये। वे अग्नि ऋक्ष के पुत्र श्रुतर्वन के लिये ज्वालाओं के रूप मे प्रकट हुये थे ॥९॥ हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ कर्मों द्वारा उत्पन्न हुये हो। तुम ऋत्विजो के साथ पृथ्वी मे वास करते हो। तुम्हारे पिता कश्यप, माता श्रद्धा और स्तोता मनु हुये ॥१०॥

पञ्चम दशति

(ऋषि—अग्निस्तापसः वामदेवः, वामदेव काश्यपोऽसितो देवलो, वाः, सोमाहुतिर्भार्गव., पायु., प्रस्कण्वः ॥ देवता—विश्वेदेवाः, आङ्गिरा, अग्नि. । छन्द—अनुष्टुप् ।)

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्राह्मणं च बृहस्पतिम् ॥१

इत एत उदारुहन् दिव. पृष्ठान्या रुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथोद् द्यामगिरसो ययु ॥२
राये अग्ने महे त्वादानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मति वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४
प्रत्यग्ने हरसा हर. श्रृणाहि विश्वतस्परि ।
यातुधानस्य रक्षसो बल न्युब्ज वीर्यम् ।५
त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वर जनं मनुजात घृतप्रुषम् ॥६॥ (१।१०)

हम राजा सोम को, वरुण, अग्नि, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति को रक्षा के निमित्त आहूत करते हैं ॥१॥ जिस मार्ग से यह हवि सम्पन्न आंगिरस स्वर्ग लोक को गये तथा जिस प्रकार मनुष्यगण मार्गों पर चलते हैं, वैसे ही यह अग्नि ऊपर जाते हुये स्वर्ग की पीठ पर चढ़ गये ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हें महान् धनों के निमित्त प्रदीप्त करते हैं। तुम सेंचन समर्थ हो। अत: होम के निमित्त द्यावापृथ्वी की स्तुति करो ॥३॥ इस यज्ञ में स्तोतागण स्तोत्र का उच्चारण करते हैं और यह अग्नि उन ऋत्विजों के सब कर्मों को जानते हुये पहिये के समान सब को अपने वश में रखते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! अपने तेज से राक्षसों के सब ओर फैले हुये बल को नष्ट करो और उनके पराक्रम को सब ओर से तोड़ डालो ॥५॥ हे अग्ने ! इस कर्म मे तुम वसुओं, रुद्रों, आदित्यों और श्रेष्ठ यज्ञ वाले प्रजापति द्वारा उत्पन्न हुये जल सेंचन देवता की उपासना करो ॥६॥

॥ प्रथम प्रपाठक: समाप्त ॥

द्वितीयः प्रपाठक

(प्रथमोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—दीर्घतमाः विश्वामित्रः, गोतमः, त्रितः, इरिम्बिठि', विश्वमना वैयश्वा. ऋजिश्वा भारद्वाजः, । देवता—अग्निः, पवमानः, अदिति. छन्दः—उष्णिक् ।)

पुरु त्वा दाशिवा वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृत् ।
बिपाँ ज्योतीषि बिभ्रते न वेधसे ॥२
अग्ने वाजस्य गोमत ईशान सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
होता मन्दो वि राजस्यति स्रिधः ॥४
जज्ञान सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
अयं ध्रुवा रयीणा चिकेतदा ॥५
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् ।
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिध ॥६
ईडिष्वा हि प्रतीव्यां यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥७

न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९
श्रुष्टयग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥ (११-१)

हे अग्ने ! मैं तुम्हारी शरण को प्राप्त हुआ सेवक तुम से अपरिमित धन, पुत्र आदि की याचना करता हूँ ।१॥ हे याज्ञिकों । श्रेष्ठ अनुष्ठानों से प्राप्त तेज को, संसार के कारणरूप एवं देवाह्वाक अग्नि के लिये प्राचीन बृहत् स्तोत्र द्वारा सम्पादन करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न होने वाले, गौओ से सम्पन्न अन्न के स्वामी हो, अत हे जातवेदा अग्ने ! हमें अपरिमित श्रेष्ठ अन्न प्रदान करो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम इस देवताओं के पूजन वाले यज्ञ मे देवोपासक यजमान के लिये यज्ञ-कर्म सम्पादन करो । तुम होता रूप से यजमान को सुखी करने वाले और शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले होकर सुशोभित होते हो ।४॥ यह अग्नि स्थिर धनों के धारण करने वाले हैं । यह लपट रूप सात जिह्वाओं सहित प्रकट होकर कर्म का विधान करने वाले सोम को सेवा-कार्य में प्रेरित करते हैं ॥५॥ स्तुति योग्य अदिति देवी अपने रक्षा-साधनों सहित हमारे पास आवें और सुख,शांति प्रदान करती हुई हमारे शत्रुओं को दूर करें ॥६॥ शत्रुओं के प्रतिकूल रहने वाले अग्नि की स्तुति करो, उन अग्नि का धूम सर्वत्र विचरणशील है तथा उनकी दीप्ति को राक्षस तिरस्कृत नहीं कर सकते । उन सर्व उत्पन्न जीवों के ज्ञाता अग्नि का यजन करो ।७॥ हविदाता यजमान अग्नि को हवि प्रदान करता

है, उसका शत्रु माया करके भी उस पर प्रभुत्व नहीं कर सकता ॥८॥ हे अग्ने ! तुम उस कुटिल, हिंसक और दुराचारी शत्रु को बहुत दूर फेंक दो। हे सत्य के पालक ! हमारे लिये सुख की प्राप्ति को सुगम करो ॥९॥ हे शत्रु-नाशक और उपासकों के रक्षक अग्ने ! मेरे इस अभिनव स्तोत्र को सुन कर मायाकारी राक्षसों को अपने महान् तेज से भस्म करो ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—प्रयोगो भार्गव, सौभरिः, काण्व विश्वमना ।
देवता—अग्नि. । छन्दः—उष्णिक् ।)

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥१

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्व सख्यमाविथ ॥२

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवम तिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३

मा नो हृणीथा अतिथि वसुरग्नि पुरुप्रशस्त एषः ।
य सुहोता स्वध्वरः ॥४

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तय. ।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६

तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासाह सदने कं चिदत्रिणम् ।
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥ (१।१२)

हे स्तोताओ ! तुम सत्य यज्ञ वाले महान् तेजस्वी अग्नि के लिये स्तोत्र-पाठ करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम जिस यजमान से मित्रता करते हो, वह तुम्हारी श्रेष्ठ सन्तान तथा अन्न, बल आदि से सम्पन्न रक्षाओं के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥ हे स्तोता ! उन हव्यवाहक अग्नि की स्तुति करो, जिन दानादि गुण वाले देवता की मेधावीजन स्तुति करते हैं और जो देवताओं को हवि पहुँचाते हैं ॥३॥ हे ऋत्विजों ! हमारे यज्ञ से अतिथि रूप अग्नि को मत ले जाओ क्योंकि वे अग्नि ही देवताओं का आह्वान करने वाले, श्रेष्ठ याज्ञिक, स्तुत्य और निवासप्रद हैं ॥४॥ हवियों से तृप्ति को प्राप्त हुये अग्नि हमारे लिये मंगलमय हों। हे धनेश ! हमें कल्याणकारी धन मिले, श्रेष्ठ यज्ञ और मंगलमयी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥५॥ हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ याज्ञिक, देवाह्वाहक, दानशील, अविनाशी और इस यज्ञ के सम्पन्न करने वाले हो। हम तुम्हारी ही उपासना करते हैं ॥६॥ हे अग्ने ! हमें यश प्रदान करो। यज्ञ स्थान में आने वाले भक्षक राक्षस आदि को तथा दुष्ट मति वाले शत्रु को और उनके क्रोध को भी तिरस्कार करो ॥७॥ सब प्राणियों के रक्षक और हवियों द्वारा प्रदीप्त अग्नि जब मनुष्यों के घर में रह कर प्रसन्न होते हैं, तब वे सब पीड़क राक्षस आदि को नष्ट कर डालते हैं ॥८॥

तृतीय दशति

(ऋषि—शयुर्बार्हस्पत्यः, श्रुतकक्षः, हर्यतः प्रागाथः, इन्द्रमातरो देवजामयः, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ, मेधातिथिराङ्गिरस., प्रियमेधः काण्वश्च । देवता–इन्द्रः । छन्दः–गायत्री ।)

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद्गवे न शाकिने ॥१

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
तेन नूनं मदे मदेः ॥२

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥३

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥५

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ॥६

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥७

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८

पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय ।

सोमं वौ राय शूराय ॥६

इदं वसो सुतमन्ध पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन् ररिमा ते ॥१०॥ (२—१)

हे स्तोताओ। सोमाभिषव होने पर अनेक यजमानों द्वारा आहूत हुये धनदाता इन्द्र के निमित्त उस स्तोत्र का गान करो, जो इन्द्र के लिये गव्य के समान सुख देने वाला है ॥१॥ हे शत-कर्मा इन्द्र । तुम्हारे निमित्त यह अत्यन्त तेजस्वी सोम हमने अभिषुत किया है, उसका पानकर तृप्त होओ और फिर हमें धनादि से संतुष्ट करो ॥२॥ हे गौओ। तुम महावीर के प्रति जाओ। यज्ञ के साधन रूप मंत्र से दोहन योग्य गवादि के दुग्ध महान हैं। इस महावीर के कानों में सुवर्ण और चांदी के दो आभूषण हैं। ॥३॥ हे अध्ययनशील स्तोता। इन्द्र के दान रूप अश्व, गौ और गृह आदि की प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ स्तोत्र का गान करो ॥४॥ वे इन्द्र वृत्रहन्ता और महान हैं ! वे हमें धन देने वाले हों। हम उन्हें प्रसन्न करते हैं ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम अपने साहस, बल और ओज के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त हुये हो। तुम ही श्रेष्ठ फलों की वर्षा करने वाले महान् हो ॥६॥ यज्ञ ने ही इन्द्र की वृद्धि की है। फिर उन इन्द्र ने मेघ को अन्तरिक्ष में प्रशस्त किया और पृथ्वी को जल-वृष्टि द्वारा पूर्ण किया ॥७॥ हे इन्द्र । जैसे एक मात्र तुम ही सब धनों के स्वामी हो, वैसे ही मैं भी होऊँ और मेरा स्तोता गौओं से सम्पन्न हो ॥८॥ हे सोमाभिषव कर्ताओ। परा-क्रमी इन्द्र के निमित्त उस प्रशंसनीय सोम को अर्पित करो ॥९॥ हे इन्द्र। इस अभिषुत सोम का पान करो, जिससे तुम्हारे उदर की पूर्ति हो। हे निर्भय इन्द्र। हम तुम्हारे लिये यह श्रेष्ठ सोम-रस अर्पित करते हैं ॥१०॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि—सुकक्षश्रुतकक्षो, भरद्वाज, श्रुतकक्षः मधुच्छन्दाः, त्रिशोक, वसिष्ठ. । देवता—इन्द्र । छन्दः—गायत्री ।)

उद् घेदभि श्रुतामघ वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥१
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥२
य आनयत् परावत. सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥३
मा न इन्द्राभ्यादिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥४
ए द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥५
इन्द्रं वय महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युज वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६
अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्र. सहस्रबाह्वे ।
तत्रादददिष्ट पौंस्यम् ॥७
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् ।
विद्धो त्वा स्य नो वसो ॥८
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥९

भिन्धि विश्वा अप द्विजः परि बाधो जही मृधः ।

वसुस्पार्हं तदा भर ॥१०॥ (२'२)

हे सूर्यात्मक इन्द्र! तुम्हारा धन देने योग्य और प्रसिद्ध है, इसलिये धनवर्षक और मनुष्यों का हित करने वाले तुम उदार स्वभाव के होते हुये सब दिशाओं को प्रकाशित करते हो ॥१॥ हे वृत्रहन्ता सूर्यात्मक इन्द्र। आज तुमने जिन पदार्थों को उन्नत दिशा मे प्रकाशित किया है, वे सब पदार्थ तुम्हारे आधीन हैं ॥२॥ तुर्वश और यदु को जब शत्रुओं ने दूर कर दिया था, तब उन्हें वहां से यह इन्द्र ही लौटाकर लाये थे। ऐसे युवावस्था वाले इन्द्र हमारे सखा हों ॥३॥ हे इन्द्र! सब ओर शस्त्र फेंकने वाले और सर्वत्र विचारशील राक्षस रात्रियों में हमारे सामने न आवें। यदि आवें तो उन्हें हम तुम्हारे अनुग्रह से नष्ट कर डालें ॥४॥ हे इन्द्र। भले प्रकार भोगने योग्य तथा शत्रुओं को जीतने वाले, मोहसपूर्ण धनो को हमारी रक्षा के निमित्त प्रदान करो ॥५॥ अल्प धन वाले हम बहुत सा धन पाने के लिये तथा वृत्र रूप राक्षसों को नष्ट करने के लिये वज्रधारी इन्द्र को आहूत करते हैं ॥६॥ इन्द्र ने बद्रु के निष्पन्न सोम-रस का पानकर सहस्त्रबाहु को नष्ट किया, उस समय इन्द्र का पराक्रम दर्शनीय हुआ ॥७॥ हे काम्यवर्षक इन्द्र! हम तुम्हारी कामना करते हुये तुम्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं। हे सर्वव्यापक इन्द्र! तुम हमारे स्तोत्र को जानो ॥८॥ जो याज्ञिक अग्नि को प्रज्ज्वलित करते हैं तथा जिनके मित्र इन्द्र हैं, वे क्रमपूर्वक कुशाओ को आच्छादित करते हैं ॥९॥ हे इन्द्र। वैर करने वाली सब शत्रु सेनाओं को छिन्न-भिन्न करो।

ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥८

उपह्वरे गिरीणां सगमे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत ॥९

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नर नृषाह् महिष्ठम् ।१०। (२१३)

मरुद्गण के हाथों में स्थित चाबुको की ध्वनि को मैं सुनता हूँ। रणक्षेत्र में वह ध्वनि वीरत्व को उत्साहित करता है ॥१॥ हे इन्द्र ! जैसे पाश ग्रहण कर पशु-स्वामी पशु को देखता है, वैसे ही हमारे यह पुरुष तुम्हारी ओर देख रहे हैं ॥२॥ जैसे नदियाँ निम्नगामिनी होकर समुद्र की ओर जाती हैं वैसे ही सब प्रजायें इन्द्र के क्रोध-भय से स्वय ही झुकती हुई उनके अभिमुख गमन करती हैं ॥३॥ हे देवगण ! तुम्हारी महिमामयी रक्षायें पूजनीय हैं, उन रक्षाओं की हम अपने निमित्त याचना करते हैं ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम मुझ सोमाभिषवकर्त्ता को उशिज पुत्र कक्षीवान के समान ही तेजस्वी करो ॥५॥ जिनके लिये सोमाभिषव किया जाता है, जो हमारी कामनाओं के जानने वाले हैं और जो युद्धक्षेत्र में शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हैं, वे वृत्रहन्ता इन्द्र हमारी स्तुति को श्रवण करें ॥६॥ हे सवितादेव ! आज हमें अपत्ययुक्त धन प्रदान करो और दुःस्वप्न के समान दुःख देने वाली दरिद्रता को हमसे दूर कर डालो ॥७॥ वे इन्द्र काम्यवर्षक, युवा, लम्बी ग्रीवा वाले तथा किसी के सामने न झुकने वाले हैं। वे इन्द्र इस समय कहाँ हैं ? कौन-सा स्तोता उनका पूजन करता है ? ॥८॥ पर्वतीय भूमि पर और नदियों के संगम स्थल पर बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति को सुनने के लिये मेधावी इन्द्र शीघ्र

प्रकट होते हैं ॥६॥ भले प्रकार प्रतिष्ठित, स्तोत्रों द्वारा प्रशंसनीय शत्रु-तिरस्कारक और महान दानी इन्द्र की स्तुति करो ॥ ०॥

———

(द्वितीयोऽर्ध)

प्रथम दशति

(ऋषि. श्रुतकक्ष, मेधातिथि, गौतमः, भरद्वाज, बिन्दु पूतदक्षो वा: श्रुतकक्ष सुकक्षो वा:, वत्स काण्व, शुन शेप, शुन: शेपो, वामदेवो वा । देवता—इन्द्र । छन्द —गायत्री ।)

अपादु शिप्रचन्धस सुदक्षस्य प्रहोषिण: ।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिर ॥१
इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिर ।
गावो वत्स न धेनवः ॥२
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३
यदिन्द्रो अनयद्रितो महरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाभुवत् सचा ॥४
गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।

युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५
उप नो हरिभि सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभि: सुतम् ॥६
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
अच्छा वभृथमोजसा ॥७
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥८
रेवतीर्न. सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजा: ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९
सोम: पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् ।
देवत्रा रथ्योर्हिता ।१० (२-४)

सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र ने देवताओं को हवि देने में कुशल याज्ञिकों द्वारा जौ के साथ परिपक्व सोम रूप अन्न के टपकते हुये रस का पान किया ॥१॥ हे महान् धनी इन्द्र ! हमारी यह स्तुतियाँ तुम्हारी ओर उसी प्रकार बारम्बार गमन करती हैं जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों की ओर जाती हैं ॥२॥ इस गमनशील चन्द्रमा में त्वष्टा का जो तेज अन्तर्हित है, वही तेज सूर्य की रश्मियां हैं ॥३॥ जब अत्यन्त वर्षक इन्द्र वृष्टि-जलों को इस लोक में प्रेरित करते हैं तो पूषा देव उनकी सहायता करते हैं ॥४॥ ऐश्वर्यवान् मरुद् गण की माता गौ, अन्न की इच्छा करती हुई अपने पुत्रों का पालन करती है ॥५॥ हे सोमाधिपति इन्द्र ! तुम अपने हर्यश्वों के द्वारा निष्पन्न सोम का पान करने के लिये हमारे

यज्ञ में आगमन करो ।।६।। हमारे यज्ञ में सात होताओं ने हवियों से इन्द्र को प्रवृद्ध किया और ओज से सम्पन्न होकर इन्द्र के लिये यज्ञान्त तक आहुति दी ।।७।। पालन कर्त्ता और सत्य स्वरूप इन्द्र की श्रेष्ठ बुद्धि को मैंने ही ग्रहण किया है, इस कारण मैं सूर्य के समान ही प्रकाश करता हुआ प्रकट हुआ हूँ ।।८।। हम अन्नवान् मनुष्य जिन गौओं से आनन्दित होते हैं, हमारी वे गौयें इन्द्र की प्रसन्नता प्राप्त होने पर दुग्ध-घृतादि से सम्पन्न और बलिष्ठ हों ।।९।। देवताओं के रथ पर आरूढ़ होने वाला सोम और सूर्य इन्द्र के लिये श्रेष्ठकर्मा मनुष्यों द्वारा दी हुई हवियों को जानें ।।१०।।

द्वितीय दशति

(ऋषिः – श्रुतकक्ष, वसिष्ठः, मेधातिथिप्रियमेधौ:, इरिम्बिठिः, मधुच्छन्दाः, त्रिशोकः, कुसीदीः, शुनः शेपः। देवता—इन्द्रः। छन्दः-गायत्री।)

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ।१
प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ।।२
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।।३
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ।।४
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एही मस्य द्रवा पिब ।।५

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥६

अभि त्वा वृषभा सुते सुत सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुत ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥९

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहस ॥१०॥ (२-५)

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, सैकड़ों कर्म वाले, मनुष्यों को महान् धन देने वाले, सोमपायी इन्द्र की स्तुति को भले प्रकार गाओ ॥१॥ हे मित्रो ! हर्यश्व और सोममयी इन्द्र को प्रसन्न करने वाले स्तोत्र का गान करो ॥२॥ हे इन्द्र! हम तुम्हारे मित्र तुम्हे अपना बनाने की कामना से तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। हमारे पुत्र, सभी कण्वशी उक्थों, द्वारा तुम्हारा यश गाते हैं ॥३॥ हर्षित मन वाले इन्द्र के निमित्त निष्पन्न सोमरस की, हमारी वाणी सदा प्रशंसा करे और सबकी पूजा के योग्य सोम का हम पूजन करें ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये यह सोम वेदी स्थित कुशों पर निष्पन्न किया हुआ रक्खा है। तुम इस सोम के पास आकर इस यज्ञ-स्थान में पान करो ॥५॥ नित्यप्रति जैसे श्रेष्ठ दुग्ध वाली धेनु को बुलाते हैं, वैसे ही सुन्दर कर्म वाले इन्द्र को हम अपनी रक्षा के निमित्त प्रतिदिन बुलाते

हैं ।।६।। हे काम्यवर्षक इन्द्र ! सोमाभिषव के पश्चात् उसके पान करने के लिये तुम्हें निवेदित करता हूँ। यह सोम अत्यन्त शक्ति-प्रदायक है, तुम इसका रुचिपूर्वक पान करो ।।७।। हे इन्द्र ! यह निष्पन्न सोम-रस चमस-पात्रों में भरा हुआ तुम्हारे लिये ही रक्खा है। हे स्वामिन ! इस सोम-रस का अवश्य ही पान करो ।।८।। यज्ञादि अनुष्ठानों के आरम्भ मे ही अथवा युद्ध उपस्थित होने पर हम मित्र रूप उपासक अपनी रक्षा के लिये अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को आहूत करते हैं ।९।। हे स्तोम वाहक मित्र रूप ऋत्विजों ! तुम शीघ्र आकर बैठो और इन्द्र की सब प्रकार स्तुति करो ।।१०।।

तृतीय दशति

(ऋषि—विश्वामित्रः, मधुच्छन्दा., कुसीदी काण्व., प्रियमेध., वामदेव., श्रुतकक्ष मेधातिथि, विन्दुः पूतदक्षो वा. । देवता—इन्द्र. । छन्दः—गायत्री ।)

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधाना पते ।
पिबा त्वा३स्व गिर्वण. ॥१
महाँ इन्द्रः पुरुश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं स गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥३
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४
क्या नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कथा शचिष्ठया वृता ॥५

त्यमु व. सत्रासाह विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये ॥६
सदसस्पतिमद्भुत प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनि मेधामयासिषम् ॥७
ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरय ।
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८
भद्रभद्रं न आ भरेषमूर्ज शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि न. ॥९
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥१०॥ (२-६)

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! इस ओज सम्पन्न और निष्पन्न सोमरस का शीघ्र पान करो ॥१॥ हमारे इन्द्र महान् हैं । यह श्रेष्ठ गुण वाले हैं । वज्रधारी इन्द्र की महिमा स्वर्ग के समान श्रेष्ठ हो और इनके बल की अधिक प्रशंसा हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हाथों वाले हो । हमें देने के लिये प्रशंसनीय अद्भुत, ग्रहणीय धन को अपने रक्षक हाथ से उठाकर इसी समय दो ॥३॥ यह इन्द्र धेनुओं के स्वामी, यज्ञोत्पन्न और सत्य के पालन करने वाले हैं । इनकी स्तुतियां सहित पूजा करो, जिससे ये हमें भले प्रकार जानें ॥४॥ अद्भुत गुण वाले, प्रवृद्ध और मित्र इन्द्र किस श्रेष्ठ कर्म से हमारे सामने हों ? वे किस अनुष्ठान से हमारे अभिमुख आवें ? ॥५॥ हे स्तोता ! तुम अनेकों का तिरस्कार करने वाले और स्तोत्रों मे बढ़े हुये उन इन्द्र को ही हमारी रक्षा के लिये अभिमुख करो ॥६॥ अद्भुत कर्म वाले, इन्द्र के प्रिय, कामना के योग्य धन देने वाले सदसस्पति देवता की शरण में श्रेष्ठ बुद्धि की

प्राप्ति के लिये उपस्थित हुआ हूँ ॥७॥ हे इन्द्र ! जो मार्ग स्वर्ग के नीचे है तथा जिन मार्गों से मैं संसार में आया हूँ, वह मार्ग स्तुत्य हैं। यजमान हमारे उस मार्ग वाले स्थान को सुनें ॥८॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! हमें अत्यन्त कल्याणकारी धन प्रदान करो। हमें बलयुक्त अन्न और सुख प्रदान करो ॥९॥ यह सोम मरुद्गण द्वारा अभिषुत किया गया है, अतः अपने तेज से तेजस्वी हुये मरुद्गण प्रातःकाल इस सोम का पान करते हैं और अश्विद्वय भी प्रातःकाल ही सोमपान करते हैं ॥१०॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि—इन्द्रमातरो देवजामयः, गोधाः, दध्यङ्ङाथर्वणः प्रस्कण्वः गोतमः, मधुच्छन्दाः, वामदेवः, वत्सः शुनःशेपः, वातायन उलः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री।)

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते।
वन्वानासः सुवर्यम् ॥१

न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि।
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥२

दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण।
स्तुति देवं सवितारम् ॥३

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्य प्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव ॥५

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महां अभिष्टिरोजसा ॥६
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।
महान्महीभिरूतिभिः ॥७
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८
अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९
वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥ (२-७)

अपने कर्म की इच्छा करती हुईं और रुद्र को प्राप्त होती हुईं माताएँ उत्पन्न हुये इन्द्र की परिचर्या करती हैं और श्रेष्ठ धन को इन्द्र से पाती हैं ।।१।। हे देवताओं ! हम तुम्हारे लिये कोई विपरीत कर्म नहीं करते प्रत्युत मन्त्रों में वर्णित तुम्हारे कर्मों पर चलते हैं ।।२।। हे वृहद् सोम के गायक, प्रकाश-पथ के पथिक आथर्वण ! ऋत्विज या यजमान की भूल से लगे दोष को दूर करने के लिये तुम सवितादेव की स्तुति करो ।।३।। यह प्रत्यक्ष हुई, प्रसन्नता देने वाली उषा स्वर्गलोक से आकर रात्रि के अन्धकार को दूर करती है । हे अश्विद्वय ! मैं तुम्हारे लिये वृहत् स्तुति करता हूँ ।।४।। अनुकूल शब्द वाले इन्द्र ने दधीचि की अस्थियों से आठसौ दस राक्षसों को मारा ।।५।। हे इन्द्र हमारे इस अनुष्ठान में आगमन कर सोम रूप अन्न के पान द्वारा तृप्त होओ, फिर बल से अत्यन्त बली होकर शत्रुओं का तिरस्कार करो ।।६।। हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम हमारे पास आगमन करो ।

तुम अपनी महती रक्षाओं के साथ आकर रक्षा करो ।।७।। इन्द्र का वह विख्यात ओज बढ़ गया । इसी ओज के द्वारा यह इन्द्र द्यावापृथ्वी को चर्म के समान लपेट लेते हैं ।।८।। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त सस्कृत किया है । तुम इस सोम की ओर हमारी स्तुति रूप वाणी को भले प्रकार प्राप्त होते हो ।।९।। हमारे हृदय के लिये कल्याणकारी, सुखदाता औषधि को वायु हमें प्राप्त करावें, जिससे हमारी आयु-वृद्धि हो ।।१०।।

पञ्चम दशति

(ऋषि—कण्वः, वत्स', श्रुतकक्षः, मधुछन्दाः, ईरिम्बिठिः, वारुणिः सत्यधृति । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
न किः स दभ्यते जनः ।।१

गव्यो षुणो यथा पुराश्वयोत रथया ।
वरिवस्या महोनाम् ।।२

इमास्त इन्द्र पृश्यनयो घृतं दुहत आशिरम् ।
एनामृतस्य पिप्युषः ।।३

अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
यत् सोमेसोम आभुवः ।।४

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ।।५

क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् ।
स नो वसून्या भरात् ।।६

आ याहि सुषुमा हि त इंद्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥७
महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः दुराधर्षं
वरुणस्य॥८
त्वावतः पुरूवसो वयमद्रि प्रणेतः ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥६॥ (२-८)

जिस यजमान की मेधावी वरुण, मित्र, अर्यमा रक्षा करते हैं, उस यजमान को कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥१॥ हे इन्द्र! जैसे हमारे पूर्व यज्ञ में तुम धन दान के निमित्त पधारे थे, वैसे ही हमें गौ, अश्व, रथ और प्रतिष्ठाप्रद धन देने के लिये अब भी आगमन करो ॥२॥ हे इन्द्र! तुम्हारी यह सत्य रूप यज्ञ के पालन करने वाली, श्रेष्ठ वर्ण गौएँ घृत और दूध से हमारे पात्रों को भरती हैं ॥३॥ हे बहुत नाम वाले, बहुतों द्वारा स्तुत इन्द्र! तुम मेरे प्रत्येक सोम-याग में जब सोम-पान के निमित्त आओ, तब मैं अपने लिये गौओं की कामना वाली बुद्धि से सम्पन्न होऊँ ॥४॥ अन्नवती, पवित्र करने वाली, धनों के करने वाली सरस्वती दान योग्य अन्नों के सहित हमारे यज्ञ की इच्छा करती हुई आवें और यज्ञ को सम्पन्न करें ॥५॥ मनुष्यों में कौन ऐसा है जो इन्द्र को तृप्त कर सके? वे इन्द्र हमारे यज्ञ में आकर तृप्त हों और धन-दान करें ॥६॥ हे इन्द्र! यहाँ आगमन करो। तुम्हारे लिये ही हमने यह सोमाभिषव किया है। तुम इस सोम को पान करो। वेदी पर बिछे हुये कुशा के आसन पर बैठो ॥७॥ मित्र, वरुण और अर्यमा की महती रक्षायें हमारी रक्षा करने वाली हों ॥८॥ हे इन्द्र! तुम बहुत ऐश्वर्य वाले हो। कर्मों को सफलता-पूर्वक सम्पन्न करते हो। हे हर्यश्ववान् इन्द्र! हम तुम्हारे हैं ॥६॥

॥ द्वितीय प्रपाठक समाप्त ॥

तृतीय प्रपाठक

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—प्रगाथः, विश्वामित्रः, वामदेवः, मधुच्छन्दाः, गृत्समदः, भरद्वाजः। देवता—इन्द्र.। छन्द—गायत्री।)

उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ।२

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन्।
न देवो वृतः शर इन्द्रः ॥३

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥५

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥६

इन्द्रो अंग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः।

गावो वत्सं न धेनवः ॥८

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।

हुवेम वाजसातये ॥९

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।

न क्वेवं यथा त्वम् ॥१०॥ (२-९)

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हें प्रसन्न करे। हे वज्रिन् ! तुम धन प्रदान करो। ब्राह्मण के बैरियों को नष्ट कर डालो ॥१॥ हे स्तुत्य ! हमारे द्वारा अभिषुत इस सोम का पान करो। तुम हर्षप्रदायक सोम की धाराओं द्वारा सिंचित होते हो। हे इन्द्र ! हमारे पास तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न ही रहता है ॥२॥ हे यजमानो ! यह इन्द्र तुम्हें यज्ञानुष्ठान के लिये प्रेरित करता है। यह वीर इन्द्र हमारे द्वारा वरण किये गये हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! नदियाँ जैसे समुद्र को प्राप्त होती है वैसे ही हमारे सोम तुम्हें प्राप्त हों। अतः हे इन्द्र ! अन्य कोई देवता तुमसे बढ़कर नहीं है ॥४॥ साम गायक अपने बृहत्साम से स्तुति करते हैं और अध्वर्यु यजुर्वेद रूप वाणी के द्वारा स्तुति करते हैं ॥५॥ हमारे द्वारा स्तुत इन्द्र महान् दाता ऋभु को हमें अन्न के निमित्त प्राप्त करावें। बलवान् इन्द्र ! अन्न प्राप्त के लिये बलवान् छोटे भाई को हमें दो ॥६॥ स्थिर मन वाले, विश्वद्रष्टा इन्द्र महान् भय का तिरस्कार करने वाले हैं ॥७॥ हे स्तुत्य इन्द्र ! प्रत्येक सोमाभिषव पर हमारी स्तुतियाँ गौओं के बछड़ों के पास पहुँचने के समान हो, तुम्हें प्राप्त हों ॥८॥ हम इन्द्र और पूषा को आज ही मित्रता के लिये तथा अन्न और जल की प्राप्ति के लिये आहुत करते है ॥९॥ हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम से बढ़कर कोई नहीं है, तुमसे श्रेष्ठ भी कोई नहीं है ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—त्रिशोकः, मधुच्छन्द. वत्सः, सुकक्षः, वामदेवः, विश्वामित्र,
गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ., श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ।
देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री ।)

तरणि वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
समानमु प्र शंसिषम् ॥१
असृगमिन्द्र ते गिर प्रति त्वामुदहासत ।
सजोषा वृषभं पतिम् ॥२
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३
यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥४
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्ध चर्षणीनाम् ।
आशिषे राधसे महे ॥५
अरं त इन्द्रश्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
अरं शक्र परेमणि ॥६
धानावन्तं करम्भिगमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७
अपाँ फेनेन नमुचेः शिर इंदोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥८
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वा ।

तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९

तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।

स्तोतृभ्य इन्द मृडय ।१०। (२-१०)

हे मनुष्यों ! सन्तान आदि के पालन करने वाले, शत्रुओं को त्रासप्रद, पशुओं सम्पन्न तथा अन्न देने वाले इन्द्र की मैं सदा स्तुति करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! मैंने तुम्हारे लिये स्तोत्र रचना की है। वह स्तोत्र स्वर्ग में स्थित, काम्यवर्षक, सोमपायी तुम इन्द्र के समीप गये और तुमने उन्हें स्वीकार किया ॥२॥ जिस यजमान को द्रोहरहित मरुद्गण, अर्यमा या मित्र देवता रक्षा करते हैं, वह यजमान श्रेष्ठ यज्ञ वाला होता है, इसे सब जानते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुमने जो धन स्थिर पुरुष में और जो धन दृढ़ पुरुष में स्थापित किया है, उसी कामनायोग्य धन को हमें प्रदान करो ॥४॥ प्रसिद्ध वृत्रहन्ता एवं वेगवान् इन्द्र को प्रसन्न करके सोम रूप अन्न अर्पित करता हूँ ॥५॥ हे शूर इन्द्र ! हम तुम्हारा यश सुनने को उत्सुक हों। हे शक्र ! तुम्हारे समान देवता के यश को भी हम सुनें ॥६॥ हे इन्द्र ! भुने जौ और दधियुक्त सत्तू और पुरोडाश से युक्त प्रशंसित हमारे सोम-रस का प्रातः सेवन में पान करें ॥७॥ बैरियों की सब सेनाओं पर इन्द्र ने जब विजय प्राप्त की, तब नमुचि नामक राक्षस का शिर जल के फेनरूप झागों से बने शस्त्र द्वारा काट डाला ॥८॥ हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त ही सिद्ध किये गये हैं। जो सोम अब सिद्ध किये जायेंगे वे भी तुम्हारे ही होंगे। तुम उन सब सोमों का पान कर तृप्त होओ ॥९॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम्हारे लिये सोम सिद्ध किये हैं। कुशा का आसन बिछा है,

तुम इस पर बैठो और सोमपान से तृप्त होकर हमें सुखी करो ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषि — शुनः शेपः, श्रुतकक्षः त्रिशोकः, मेधातिथिः गोतमः, ब्रह्मातिथिः, विश्वामित्रो जमदग्निर्वाः, प्रस्कण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द — गायत्री)

आ व इन्द्र क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम ।
मंहिष्ट सिञ्च इन्दुभिः ॥१

अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया ।
इषा सहस्रवाजया ॥२

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद् वि मातरम् ।
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥३

बृवदुक्थं हवामहे सुप्रकरस्नमूतये ।
साधः कृण्वन्तमवसे ॥४

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५

दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् ।
वि भानुं विश्वथातनत् ॥६

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥७

उदु त्ये सूनवो गिरः कोष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥८

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

समूढमस्य पांसुले ।९। (२-११)

हे अन्न की कामना वाले पुरुषो ! यह इन्द्र सैकड़ों कर्म करने वाले एव महान है । जैसे कृषि को जल से सींचते हैं, वैसे ही तुम इन्हें सोमरस से भले प्रकार सींचो ॥१॥ हे इन्द्र ! स्वर्ग से सैकड़ों प्रकार के बल वाले हजारों अन्न और रसों के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥२॥ इन्द्र ने उत्पन्न होते ही वाण को ग्रहण किया और अपनी माता से पूछा कि कौन-कौन-से पराक्रमी इस संसार मे प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ॥३॥ लोक-रक्षा के लिये फैले हुये हाथ वाले, सब कर्मों को सिद्ध करने वाले स्तुत्य इन्द्र को हम बुलाते हैं ॥४॥ मित्र और वरुण यह मेधावी देवता हमें सरल विधि से इच्छित फल प्राप्त करावें और अन्य देवताओ से समान प्रीति वाले अर्यमा देवता भी हमें सरलता से मार्ग पर लावें ॥५॥ दूर से पास आने वाली उषा जब अपना प्रकाश फैलाती है, तब उसकी दीप्ति अनेक प्रकार की होती है ॥६॥ हे श्रेष्ठकर्मा मित्रावरुण ! हमारे गोष्ठ को घृत के कारणभूत दुग्ध से भले प्रकार सिंचित करो और पारलौकिक धाम को भी मधुर रस से सम्पन्न करो ॥७॥ शब्दरूपी वाणी के उत्पन्न करने वाले मरुतों ने यज्ञ के निमित्त जलों का उत्कर्ष किया और जल को प्रवाहित कर प्यास से रँभाती हुई गौओं को घुटने के बल झुक कर जल पीने की प्रेरणा दी ॥८। भगवान् विष्णु ने इस विश्व को लाँघते हुये तीन पाद स्थापित किये। इन विष्णु के धूलियुक्त पाँव में सब संसार भले प्रकार समा गया ॥९॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि—मेधातिथिः, वामदेवः, मेधातिथिप्रियमेधौः, विश्वामित्रः, कौत्सो दुर्मित्रः सुमित्रो वाः विश्वामित्रो गाथिनाऽभीपाव उदलो वाः श्रुतकक्षः। देवता—इन्द्र.। छन्द—गायत्री।)

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय।
अस्य रातौ सुतं पिब ॥१

कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते।
तदिद्‌ध्यस्य वर्धनम् ॥२

उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानम् ॥३

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजाना च वाजपतिः।
हरिवान्त्सुताना सखा ॥४

आ याह्यु प नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथा.।
महाँ इव युवजानिः ॥५

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥६

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृततुँरनु।
तवेद सख्यमस्तृतम् ॥७

वय घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वण.।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥८

एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ।१०। (२-१२)

हे इन्द्र ! जो साधक क्रोध पूर्वक अभिषव करे, उसे त्याग दो । उस स्थान पर श्रेष्ठ अभिषव कर्म वाले को भेजो और इस यजमान के यज्ञ मे निष्पक्ष हुये सोम का पान करो ॥१॥ उन महान् मेधावी इन्द्र के निमित्त हमारा स्तोत्र यथार्थ रूप में न होने पर भी स्वीकृत हो । क्योंकि इस स्तोत्र से ही यजमान की वृद्धि सम्भव है ॥२॥ इन्द्र स्तुति न करने वाले के शत्रु हैं और होता द्वारा पठित स्तोत्र को भी जानते हैं । वे साम गायक के साम को भी जानते है । अतः हम उन्हीं इन्द्र का स्तव करते है ॥३॥ अन्नो में श्रेष्ठ अन्न के स्वामी, हर्यश्ववान् इन्द्र होताओं द्वारा उच्चारित स्तोत्रों से प्रसन्न होकर सोम से मित्र के समान प्रीति करें ॥४॥ हे इन्द्र ! हमारे अभिषुत सोम का ग्रहण करो । दूसरों के हविरन्न से प्रीति न करो ॥५॥ हे सर्वव्याप्त इन्द्र ! हमारी स्तुति की कामना करने वाले तुम कृत्रिम नदी के समान रस रूप जल देने के लिये फैले हुये और निष्पन्न सोमों को कब रोकोगे ? ॥६॥ हे इन्द्र ! देवताओं के पश्चात् ब्रह्मात्मक धन वाले पात्र से सोम का पान करो । देवताओं से तुम्हारी अटूट मित्रता है ॥७॥ हे स्तुति योग्य इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हों । हे सोमपाये ! तुम हमें सब प्रकार सन्तुष्ट करते हो ॥८॥ हे इन्द्र ! हमारे देहाङ्गों में बल स्थापित करो क्योंकि तुम महान् बल वाले हो । यज्ञ द्वारा वश में होने वाले तुम हमें हित-कारी फल प्रदान करो ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में बलवान

शत्रुओं का बध करते हो। तुम वीर और स्थिर हो। तुम्हारा मन स्तुतियों से आकर्षित करने के योग्य हो ॥१०॥

पञ्चम दशति

(ऋषि—वसिष्ठ, भरद्वाजः, वालखिल्या., नोधाः, कलिः प्रागाथः, मेधातिथिः, भर्ग., प्रगाथः काण्वः। देबता—इन्द्रः, मरुतः। छन्द—वृहती।)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२
अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३
तं वो दस्ममृतोषहं वसोर्मन्दानमंधसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४
तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्र सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५
तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥६
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७
त्वं हि चेद्वरवे विदा भगं वसुत्तये।

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८

न हि वश्चरमं च वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्यः मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्या च शंसत ।
॥१०॥ (३-१)

हे इन्द्र! तुम अत्यन्त पराक्रमी, स्थावर जङ्गम के स्वामी और सर्वदृष्टा हो। बिना दुही पयस्विनी गौओं के समान सोम से पूर्ण चमस वाले हम तुम्हें अनेक बार नमस्कार करते हैं ।।१।। हे इन्द्र! हम स्तोता अन्नदान के लिये तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। तुम सत्य के रक्षक हो। तुम्हें दूसरे मनुष्य भी रक्षा के निमित्त बुलाते हैं। अश्वारोहियों के युद्ध में भी तुम्हे पुकारते हैं ॥२॥ अनेकों ऐश्वर्य वाले वे इन्द्र हम स्तोताओं के लिये सहस्रों धन देते हैं। हे ऋत्विजों! उन्हीं श्रेष्ठ धन वाले इन्द्र का अत्यन्त पूजन करो ॥३॥ हे ऋत्विजों! शत्रु-तिरस्कारक दर्शनीय, व्याप्त, सोम रूप अन्न से तृप्त होने वाले इन्द्र को, बछड़ो को देखकर शब्द करने वाली गौओ के समान स्तुतिपूर्वक नमस्कार करते हैं ॥४॥ हे ऋत्विजों! वेगवान् अश्वो वाले, धनदाता इन्द्र की, बाधा प्राप्त होने पर बृहत् साम द्वारा रक्षा के लिये स्तुति करो। हमने अपने जिस यज्ञ में सोमाभिषव किया है, वहाँ पुत्र द्वारा पिता की सेवा करने के समान ही इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥५॥ युद्ध आदि में शीघ्रता वाला वीर पुरुष अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से अन्नों को शीघ्र प्राप्त करता है। जैसे बढ़ई रथ-चक्र की नेमि को नम्र करता है, वैसे ही मैं अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र को स्तुति करके

तुम्हारे लिये सामने बुलाता हूँ ।। हे इन्द्र ! हमारे द्वारा अभिषुत और गव्यादि से युक्त सोमरस का पान करो तृप्त होओ और देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ में हमारे मित्र रूप धनदाता होते हुये हमारी वृद्धि की इच्छा करो । तुम्हारी कृपा-बुद्धि हमारी रक्षा करने वाली हो । हे इन्द्र ! मैं गौ-धन की कामना करने वाला हूँ, अतः मुझे गौ धन प्रदान करो । मैं अश्व चाहता हूँ अतः मुझे अश्वों से पूर्ण करो ।।८।। हे मरुद्‌गण ! तुम मे जो लघु है उनको भी स्तोता वसिष्ठ स्तुति से वंचित नहीं करते । तुम सब एकत्र होकर हमारे सोम के अभिषव होने पर सोम का पान करो ।।९।। हे स्तोताओ ! इन्द्र के स्तोत्र के अतिरिक्त अन्य स्तोत्र को उच्चारित न करो । सोमाभिषव के पश्चात् काम्यवर्षक इन्द्र की स्तुति करो ।।१०।।

।। तृतीय प्रपाठक समाप्त ।।

—:o:—

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि आङ्गिरस· पुरुहन्मा, मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च, विश्वामित्रः, गौतमः, नृमेधपुरुमेधौः, मेध्यातिः, देवातिथिथिः, काण्वः । देवता – इन्द्र. । छन्द—बृहती ।)

न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णु मोजसा ।।1

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ
इहि ॥४

त्वमंग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्रब्रवीमि ते वचः ॥५

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्य प्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥७

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु य मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥८

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्व तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिव
॥१०॥ (३-२)

सदा समृद्ध, स्तुत्य, महान् बल वाले, अतिरस्कृत और शत्रु को दबाने वाले इन्द्र को जो यजमान यज्ञादि कर्मों से अपने अनुकूल कर चुका है उसे कोई दबा नही सकता ॥१॥ जो इन्द्र बिना सामग्री ही ग्रीवाओं के जोड़ को रुधिर निकलने से पहले ही जोड़ देते हैं तथा जो अनेक धनों के स्वामी हैं वे इन्द्र देह के कटे हुये भाग को पुनः ठीक कर देते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! सुवर्ण-निमित रथ में योजित हजारों और सैकड़ो अश्व, हमारी स्तोत्र-युक्त हवियों वाले यज्ञ मे सोम-पान के लिये लावें ॥३॥ हे इन्द्र ! पथिक जिस प्रकार मरुदेश को शीघ्र ही लांघते हैं वैसे ही तुम अपने मोर के समान रोमों वाले अश्वों से शीघ्र ही आगमन करो और जैसे पक्षियों को व्याध पकड़ता है वैसे तुम्हे कोई भी न रोक सके ॥४॥ हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तुम अपने तेज से तेजस्वी होकर अपने उपासक की प्रशंसा करते हो। तुमसे अन्य कोई देवता सुख प्रदान नहीं करता । अतः मै यह स्तोत्र तुम्हारे लिये ही करता हूँ ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त यशस्वी, बलों के स्वामी और सत्य रूप सोम के पीने वाले हो और तुम अत्यन्त विकराल राक्षसों को भी अकेले ही नष्ट कर देते हो ॥६॥ देव-ताओ के इस यज्ञ में हम इन्द्र को ही आहूत करते हैं यज्ञ के अव-सर पर हम इन्द्र को ही बुलाते है । यज्ञ की समाप्ति पर भी हम इन्द्र का ही आह्वान करते हैं । धन-लाभ के लिये भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं ॥७॥ हे इन्द्र ! मेरी स्तुति रूप वाणियाँ तुम्हे प्रवृद्ध करें। अग्नि के समान तेज वाले तपस्वी ऋषि स्तोत्रो द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥८॥ शत्रुओं के विजेता, महान् धन वाले अक्षय रक्षा वाले हे इन्द्र ! जैसे अन्न प्राप्ति के लिये रथ इधर-उधर गमन करते हैं, वैसे ही हमारे मधुर श्रेष्ठ स्तुति रूप वचन तुम्हारे लिये उच्चरित होते हैं ॥९॥ जैसे प्यासा गौर मृग जल से पूर्ण तडाग पर जाता है, वैसे ही मित्रता होने पर

हे इन्द्र ! तुम हमारे पास शीघ्र आगमन करो और हम ऋत्वों द्वारा अभिषुत सोम का कृपापूर्वक पान करो ।।१०।।

द्वितीय दशति

(ऋषि—भर्गः, रेभः काश्यपः, जमदग्निः, मेधातिथिः, नृमेधपुरुमेधौः, वसिष्ठः, रेभः, भरद्वाजः । देवता—इन्द्रः, आदित्याः । छन्द—वृहती ।)

शग्ध्यू ३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ।।१
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्म घवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ।।२
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्ये वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ।।३
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमे भिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।।४
प्र व इन्द्राय वृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ।।५
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयंनुतावृधो देवं देवाय जागृवि ।।६
इंद्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।७
मा न इंद्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।

त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक् ॥८

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥९

यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या
॥१०॥ (३-३)

हे शचिपति वीर इन्द्र ! सब रक्षाओं सहित अभीष्ट फल हमें प्रदान करो । तुम हमे सौभाग्ययुक्त धन प्रदान करने वाले हो, मैं तुम्हारी ही उपासना करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुमने भोगने योग्य धनों को बली राक्षसों से उनको जीत कर प्राप्त किया है, अतः हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम अपने दान द्वारा स्तोता को समृद्ध करो । जो याज्ञिक तुम्हारे निमित्त कुशा का आसन बिछाते हैं, उनकी भी धन वृद्धि करो ॥२॥ हे याज्ञिकों ! मित्र, अर्यमा और वरुण को प्रसन्न करने वाले स्तोत्र का, उनके विराजमान होने पर गान करो ॥३॥ हे इन्द्र ! स्तोतागण सोम-पान के लिये, सब देवताओं से पहले तुम्हारी स्तुति करते हैं । रुद्र-पुत्र मरुतों ने भी तुम प्राचीन पुरुषों की स्तुति की थी ॥४॥ हे स्तोताओ ! अपने महान् इन्द्र के निमित्त सोम-रूप स्तोत्र का गान करो । यह पापनाशक इन्द्र अपने सैकड़ों धार वाले वज्र से पापों को दूर करें ॥५॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र के निमित्त बृहत् साम का गान करो जिन इन्द्र के लिये ऋषियो ने साम-गान के द्वारा सूर्य के तेज से अलंकृत किया ॥६॥ हे इन्द्र ! हमें कर्मवान् बनाओ । जैसे पिता पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही तुम हमें धन प्रदान करो । हम नित्यप्रति सूर्य के दर्शन करें ॥७॥

हे इन्द्र ! तुम हम हविदाताओं को मत त्यागो और हमारे लिये सुख देने वाले यज्ञ में सोम पीने के निमित्त आओ। हे इन्द्र ! हमें अपनी रक्षा में रक्खो और हमारा त्याग न करो ॥८॥ हे इन्द्र ! निम्नगामी जल के समान झुकते हुये हम तुम्हें सोम के अभिषव सहित प्राप्त होते हैं तथा कुशा के आसन बिछाने वाले स्तोता तुम्हारी उपासना करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! जो धन-बल मनुष्यों में है तथा जो पार्थिव धन अत्यन्त तेज वाला है, उसे हमको प्रदान करो और हमें सब महान् बलों को भी दो ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषि—मेधातिथि:, रेभः, वत्स:, भरद्वाजः, नृमेध:, पुरहन्मा, नृभेवपुरुमेधौ, वसिष्टः, मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च:, कलिः, । देवता—इन्द्र. । छन्द—बृहती ।)

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा ह्यु ग्रश्रृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिद्यु गदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिन वचो यथा ॥३

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया विद्युमेभ्यः ॥४

श्रायन्त इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वमूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥५

न सीमदेव आप तदिष दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥७

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा असासिषु ॥९

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
नस्मा उ अद्य सवने सुत भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०॥

(३-४)

हे विकराल कर्मा इन्द्र ! तुम सत्य कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । तुम सोमाभिषवकर्त्ता द्वारा आहुत हुये हमारे रक्षक और वरदाता कहे जाते हो । तुम पास में या दूर से भी अभीष्ट पूर्ण करने वाले सुने जाते हो ॥१॥ हे इन्द्र ! जब तुम स्वर्ग में या अन्तरिक्ष मे स्थित होते हो तब तुम्हें महिमामयी कान्ति वाले अश्वों के समान स्तुतियों के द्वारा सोमाभिषवकर्ता अपने यज्ञ में आहुत करता है ॥२॥ हे उद्गाताओं ! सोम का अभिषव करते हुये तुम शत्रुओं को भयप्रद, शत्रु-तिरस्कारक,

मेधावी स्तुत्य और सर्वशक्तिमान् इन्द्र की स्तुति गाओ ॥३॥ हे इन्द्र ! शीत, धूप, वर्षा आदि से रक्षा करने वाला कल्याणप्रद धन युक्त गृह मुझे और मेरे यजमानों को प्रदान करो। शत्रुओं द्वारा छोड़े अस्त्रों को इनके पास से दूर कर दो ॥४॥ हे मनुष्यो ! जैसे आश्रिता किरणें सूर्य की सेवा करती हैं, वैसे ही इन्द्र के सब धनों का उपभोग करो। वे इन्द्र जिन धनों को अपने ओज से प्रकट करते हैं, उन धनों को हम पिता द्वारा प्रदत्त भाग के समान ही धारण करें ॥५॥ हे दीर्घजीवी इन्द्र ! तुम से विमुख मनुष्य उस प्रसिद्ध अन्न को नहीं पाते। जो इन्द्र यज्ञ मे जाने के लिये अपने हर्यश्वों को योजित करते हैं, उनकी जो स्तुति नहीं करता वह उन्हे प्राप्त नहीं होता ॥६। हे स्तोताओं ! राक्षसों के साथ संग्राम उपस्थित होने पर जिन्हे अपनी रक्षा के लिये बुलाया जाता है, उन इन्द्र के लिये हमारे यज्ञ में स्तोत्र उच्चारण करो जो वृत्रहन्ता शत्रु-नाशिनी प्रत्यञ्चा वाले है, उन इन्द्र को तीनों सवनो में स्तुतियों से विभूषित करो ॥७॥ हे इन्द्र ! पार्थिव निम्न धन तुम्हारा ही है। सुवर्ण आदि मध्यम धन को तुम ही पुष्ट करते हो। तुम सभी रत्नादि धनों के राजा हो, तुम जब गवादि धन देते हो, अब तुम्हे कोई भी रोक नहीं सकता ॥८। हे इन्द्र ! कहाँ गये थे ? अब कहाँ हो ? तुम्हारा मन बहुतों की ओर जाता है। हे रणकुशल और असुर-नाशक इन्द्र ! यहाँ आओ, हमारे चतुर स्तोता तुम्हारी स्तुति गाते है ॥९॥ हम यजमान इन इन्द्र को कल सोम द्वारा तृप्त कर चुके है । हे इन्द्र ! आज अभिषुत हुये इस सोम को ग्रहण करो। हे अध्वर्यो ! इस समय स्तुति से उन्हें सुशोभित करो ॥१०॥



चतुर्थ दशति

(ऋषि—पुरुहन्मा:, भर्ग: इरिम्बिठि:, जमदग्नि:, देवातिथि:, वसिष्ठ, भरद्वाज, वालखिल्या:, । देवता—इन्द्र:, सूर्य:, इन्द्राग्नी । छन्द—बृहती ।)

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठ यो वृत्रहा गृणे ॥१
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थुणासत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरा भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥४
अश्वी रथी सुरूप इद्गोमान् यदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५
यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्र सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६
यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिम पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥७
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८

इंद्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिशत् पदा
न्यक्रमीत् ॥९

इंद्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः
॥१०॥ (३-५)

रथ द्वारा गमन करने वाले इन्द्र मनुष्यों के स्वामी हैं, उनके समान गमनशील कोई नही। वह पाप नाशक और सेनाओं के पार लगाने वाले हैं। मैं उन महान् इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र! हम जिससे भयभीत है उस हिंसाकारी के प्रति हमे अभय दो। क्योंकि तुम अभय-दान की शक्ति वाले हो। हमारी रक्षा के लिये शत्रुओं को जाता और हमारी हिंसा-कामना वालों पर विजय प्राप्त करो ॥२॥ हे गृहपते! गृह का आधारभूत स्तम्भ दृढ़ हो। हम सोमाभिषव करने वालों का देह-रक्षक बल की प्राप्ति हो। असुरों की पुरियों को तोड़ने वाले सोमपायी इन्द्र ऋषियों के सखा हों ॥३॥ हे सूर्यात्मक इन्द्र! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। हे आदित्य! तुम महान् हो। स्तोता-गण तुम्हारी महिमा की स्तुति करते हैं। हे सूर्य! तुम बल से भी महान हो ॥४॥ हे इन्द्र! जो पुरुष तुम्हारा सखा हो जाता है, वह अश्वों, रथों और गौओं वाला होकर श्रेष्ठ रूप और अन्न धन से सम्पन्न होता है। फिर सबका सुख देने वाले स्तोत्र वाला होकर सभा आदि मे जाने वाला होता है ॥५॥ हे इन्द्र! सौ स्वर्ग भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकते। सौ पृथ्वी भी तुमसे अधिक नहीं हो सकती। सहस्रों सूर्य भी तुम्हें प्रकाश नहीं

दे सकते। कोई भी उत्पन्न पदार्थ और द्यावा- पृथ्वी भी तुम्हें व्याप्त नहीं कर सकते ॥६॥ हे इन्द्र! पूर्व दिशा में वर्तमान, पश्चिम या उत्तर में वर्तमान तथा निम्न दिशा में वर्तमान स्तोताओं द्वारा अपने कार्यों के लिये तुम आहूत किये जाते हो। स्तोतागण अपने राजा के हित के लिये प्रार्थना करते है, तुम तुर्वश द्वारा भी बुलाये गये थे ॥७॥ हे व्यापक इन्द्र! तुम प्रसिद्ध को कोई ललकार नहीं सकता। तुम्हारे लिये जा श्रद्धायुक्त यज-मान हवि-सम्पन्न होता है, वह सोमाभिषव के दिन हविरन्न देने की इच्छा करता है ॥८ हे इन्द्राग्ने! बिना पॉव वाली यह उषा पॉव वाली प्रजाओं से पहले आती है और प्राणियों क शिर को कम्पित कर उनकी वाणी से ही अत्यन्त शब्द करती है। वह उषा तुम्हारे प्रताप से ही एक दिन में तीस मुहूर्तों को लांघती है ॥६॥ हे इन्द्र! हमारी निकटस्थ यज्ञशाला मे श्रेष्ठ मत और रक्षाओं के सहित आगमन करो। तुम अपनी कल्याण-मयी अभोष्टियों के सहित आगमन करो। हे बन्धो! तुम सुख-दात्रा उपलब्धियो के सहित यहा आओ ॥१०॥

पञ्चम दशति

(ऋषि— नृमेध, वसिष्ट, भरद्वाज, परुच्छप, वामदेव, मेधातिथि, भर्ग, मेध्यातिथिर्मेध्यातिथिश्च। देवता— इन्द्रः, अश्विनौ, वरुण, छन्द—बृहती।

इत ऊती वो अजर प्रहेतारमप्रहितम्।
आशु जेतार होतार रथीतमम्नूर्त तुग्रियावृधम् ॥१
गो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताद्वा सधमाद न आ गहीह वा सन्नप श्रुधि ।२

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तोरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः ।।३
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं त हूमहे वयम् ।
सहस्रमन्या तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ।।४
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्त दिशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत् कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ।।५
यदा कदा च माढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद् वदेत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ।।६
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यानिथे ।
यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रा वज्रो हिरण्ययः ।।७
उभय श्रृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवात्सोमपातय धिया शविष्ठ आ गमत् ।।८
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवा न शताय शतामघ ।।९
वस्यां इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे
।।१०।। (३-६)

हे मनुष्यो ! तुम अजर, शत्रु-विजेता, येगवान्, यज्ञमण्डप में जाने वाले, रथियों में उत्कृष्ट, अहिंसनीय, जल की वृद्धि करने वाले इन्द्र को रक्षा के लिये अभिमुख करो ।।१।। हे इन्द्र ! यजमान भी तुम्हें हमसे दूर न रमाये रहें। तुम दूर रह कर भी हमारे यज्ञ में शीघ्रता से आओ और हमारी स्तुतियों को श्रवण करो ।।२।।

हे मनुष्यो ! सोमपायी, वज्रधारी इन्द्र के लिये सोमाभिषव करो। इन्द्र की तृप्ति के लिये पुरोडाशों को परिपक्व करो। यह इन्द्र यजमान को सुख देते हुए ही हवि स्वीकार करते हैं। अतः तुम भी इन्द्र का प्रसन्न करने वाला अनुष्ठान करो ॥३॥ जो इन्द्र शत्रुओं के नाशक और सबके दृष्टा हैं, हम उन इन्द्र को स्तुतियों द्वारा आहूत करते हैं। हे सैकड़ों प्रकार के क्रोध करने वाले बहु धनयुक्त, सत्यपालक इन्द्र ! तुम रणक्षेत्रों में भी हमारी वृद्धि करने वाले होओ ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम हमारे द्वारा कृत कर्मों को ही धन मानते हो। हमारे यज्ञरूप कर्म का दिनरात फल प्रदान करो तुम्हारा दिया हुआ धन उपेक्षा योग्य कभी नहीं होता अतः हमारा दान भी उपेक्षा योग्य न हो ॥५॥ जब कभी मनुष्य स्तोता, हवि-दाता यजमान के लिये स्तुति करे, तब पापनाशक और विभिन्न कर्मों को धारण करने वाले वरुण की रक्षात्मक वाणी से स्तुति करे ॥६। हे इन्द्र ! हे मेध्यातिथे ! इस पिये हुये सोम से तृप्त होकर हमारी गौओं की तुम रक्षा करो। जो इन्द्र अपने रथ मे हर्यश्वों को योजित करते हैं, वे वज्रधारी सुवर्ण निर्मित रथ वाले हैं। ७॥ स्तोत्र और शस्त्र दोनों प्रकार की हमारी स्तुतियों को हमारे सामने आकर इन्द्र सुनें और हमारे यज्ञ को सम्पन्न करने वाली बुद्धि से युक्त ऐश्वर्यवान् इन्द्र सोम पाने के लिये यहां आगमन करें ॥८। हे वज्रिन् ! मैं महान् मूल्य के लिये भी तुम्हारा विक्रय नहीं करता। सहस्र के लिये भी विक्रय नहीं करता। मैं उन्हे अपरिमित धन के लिये भी नहीं बेचता ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम मेरे पिता से भी अधिक ऐश्वर्य वाले हो। पालन न करो तो भी मेरे भ्राता से अधिक ही हो। मेरी माता और तुम समान मन वाले होकर मुझे अन्न-धन में स्थापित करो ॥१०॥

॥ तृतीय प्रपाठकः समाप्त ॥

चतुर्थः प्रपाठक

(प्रथमोऽर्ध)

प्रथम दशति

ऋषि—वसिष्ठ, वामदेवः मेधातिथिर्मेध्यातिथीः, विश्वामित्र,
इत्येके, मेधातिथि, वालखिल्याः, मेध्यातिथि, नृमेध ।
देवता— इन्द्र., वहव । छन्द - वृहती ।

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१
इम इन्द्र मदाय ते सोभाश्चिकित्र उविथन. ।
मधोः पपान उप नो गिर श्रृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२

आ त्वा द्य सवर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्र धेनुं सुदुवामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥३
न त्वा बृहन्ता अद्रयो वरन्त इन्द्र वाडवः ।
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४
क ई वेद सुते सचा पिवन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रचन्धसः ॥५
यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशं मघवन् पुरुस्पृह वसव्ये अधि बर्हय ॥६
त्वष्टा नो दैव्यं वच पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥७

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८

युंक्ष्वा हि वृत्रहन्तम् हरी इन्द्र परादतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥
(३-७)

हे वज्रिन्! दधि मिश्रित यह सोम तुम्हारे लिये ही निष्पन्न किये गये थे। उन सोमों को तृप्ति के लिये पीने को हमारे यज्ञ-स्थान में अश्वों के द्वारा हमारे अभिमुख होओ ॥१॥ हे इन्द्र! यह स्तोत्र सम्पन्न सोम तुम्हारी तृप्ति के लिये ही है। तुम इन्हें पीते हुये हमारे स्तोत्रों को सुनो। तुम स्तुत्य हो, अतः मुझ स्तोता को अभीष्ट फल प्रदान करो ॥ ॥ मै अब अधिक दुग्धवती, सुख पूर्वक दोहन योग्य प्रशसा की पात्रों, अनेक दुग्धधारा वाली, कामना के योग्य गौ के समान सुशोभित इन्द्र का आहूत करता हूँ ॥३॥ हे इन्द्र! बड़े-बड़े सुदृढ़ पर्वत भी तुम्हारे बल को नहीं रोक सकते। मेरे समान जिस स्तोता को तुम धन देते हो, उस धन दान को कोई नहीं रोक सकता ॥४॥ अभिषुत सोम को ऋत्विजों के साथ पान करने वाले इन इन्द्र का ज्ञाता कौन है? यह कितने प्रकार के अन्नों को धारण करते है? यह इन्द्र ही सोम से तृप्त होकर शत्रु-पुरियों को अपनी शक्ति से नष्ट कर डालते हैं ॥५॥ हे इन्द्र! यज्ञ में विघ्न करने वालों को तुम दण्ड देते हो, इसलिये हमारे यज्ञ के चारों ओर स्थित विघ्नकर्त्ताओं

को दूर करो और हमारे सोम की अधिक वृद्धि करो ॥६॥ त्वष्टा देव, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति, अपने पुत्रों और भाइयों के सहित अदिति हमारे यज्ञ में विरोधियों से स्तुतिरूप वाणी की रक्षा करें ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम हिंसक कदापि नहीं हो । तुम हविदाता के पास ऋत्विज को प्रेरण करते हो । हे मघवन् ! तुम्हारा बहुत-सा दान हमें प्राप्त होता है ॥८॥ हे वृत्रहन इन्द्र ! अपने हर्यश्वों को रथ में योजित करो । तुम अत्यन्त पराक्रमी हो । दर्शन-योग्य मरुद्गण के सहित स्वर्ग से हमारे सामने आओ ॥९॥ हे वज्रिन् ! तुम्हें हविदाता यजमानों ने आज प्रथम सोमपान कराया था । तुम हमारे यज्ञ में आकर हमारे स्तोता के स्तोत्र को सुनो ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि — वसिष्ठ:, पौर:, आत्रेय:, प्रस्कण्व:, मेधातिथिमेध्यातिथि, देवातिथि:, नृमेधः । देवता — उषा:, अश्विनौ, इन्द्र: । छन्द — बृहती ।)

प्रत्यु अदर्श्यायत्यूच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महीवृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१

इमा उवा दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशविशं हि गच्छथः ॥२

कुष्ठः को वामश्विनातपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्नया क्षपमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३

सोमाभिषव करके थका हुआ यजमान राजा के समान ऐश्वर्य वान् होता है । ३।। अश्विद्वय ! तुम्हारे यज्ञार्थ यह मधुर सोम अभिषुत हुआ है । प्रथम दिन निष्पन्न हुये इस सोम का पान करो और हविदाता को श्रेष्ठ धन प्रदान करो ।।४।। हे इन्द्र ! सिंह के समान तुम्हें सोम-रस के सहित स्तुति करता हुआ मैं तुमसे ही याचना करता हूँ । अपने स्वामी से कौन-सा मनुष्य याचना नहीं करता ? ।।५।। हे अध्वर्यो ! तुम सोम को उत्तर वेदी पर पहुँचाओ, क्योंकि यह इन्द्र सोमपान की कामना करते है । सारथि द्वारा योजित रथ में वृत्रहन्ता इन्द्र यहां आ गये ।।६।। हे महान इन्द्र ! उस याचित धन को सब ओर से लाकर दो । तुम बहुतों द्वारा याचना करने योग्य तथा संग्रामों में बुलाये जाने योग्य हो ।।७।। हे इन्द्र ! तुम जितने धन के स्वामी हो, वह धन मेरा ही होगा । मै अपने साम-गाता स्तोता को धन देने मे समर्थ होऊँ । मै व्यर्थ नष्ट करने को धन का उपयोग न करूँ ।।८।। हे इन्द्र ! तुम सब युद्धों मे शत्रु-सेनाओं को दबाते हो । तुम दैवी कोप को दूर करते हो । तुम हमारे शत्रुओं को सङ्कट देते और उन्हें नष्ट करते हो जो दुष्ट हमारे कर्म में विघ्न डालते हैं उन्हें भी तिरस्कृत करते हो ।।९।। हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग के स्थानो से श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त हो । पृथिवी लोक भी तुमसे बड़ा नही है । तुम सबकी उपेक्षा करते हुये हमें ही रक्षित करो ।।१०।।

तृतीय दशति

(ऋषि - वसिष्ठ', गातु:, पथ्र्वैन्य:, ससगु:, गौरिवीति', देवेना भार्गव:, वृहस्पतिर्नकुलो वा: सुहोत्र: देवता—इन्द्र: । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

असावि देवं गोऋजीकमन्धोन्यस्मिन्निन्द्रो जनुषमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु॥१
योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्रयाहि ।
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सौमैः ॥२

अदर्दरुत्समसृजो विखानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः
महान्तमिन्द्र पर्वत वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान् हन् ॥३

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चितुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४

जगृह्मा ते दक्षिण मिन्द्र हस्त वसूयचो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपति शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं विषणं रयि दाः ॥५

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्व काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णूहि पूर्द्धि चक्षुर्मुमुग्धचा स्मान्निधयेव बद्धान् ॥७

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुतं भुरण्युम् ॥८

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुन्ध्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च
विवः ॥९

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै मह वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि वचांस्यमै स्थविराय
तक्षुः ॥१०॥ (३-९)

गव्यादि से सुसंस्कृत उज्ज्वल सोम का हमने अभिषव किया है। इसके प्रति यह इन्द्र स्वभाव से ही आकर्षित होते हैं। हे इन्द्र ! हम तुम्हें हवियों से प्रसन्न करते हैं। तुम सोम से तृप्त होकर हमारी स्तुति को जानो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे बैठने के लिये यह स्थान बनाया गया है। तुम अनेकों द्वारा आहूत हुये हो। मरुद्गण के सहित अपने उस स्थान पर आकर बैठो और हमारे रक्षक तथा वृद्धिकर्त्ता होओ। हमें धन देते हुये सोमों से तृप्त होओ ॥२॥ हे इन्द्र ! तुमने जल वाले मेघ को चीर डाला। मेघ में जल निकलने के मार्गों को बनाया। जल रोकने वाले मेघों को स्रवित किया। तुमने मेघ को खोलकर जल को छोड़ा और राक्षसों को नष्ट किय ॥३॥ हे इन्द्र हम सोमाभिषवकर्त्ता तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम धनदाता को हम पुरोडाश का भाग देते हैं। अतः तुम हमें श्रेष्ठ धन दो। जो धन अत्यन्त कामना के योग्य है, वही हमे प्रदान करो। तुम्हारे बहुत-से धनो को तो तुम्हारी कृपा होने मात्र से ही हम प्राप्त कर लेते है ॥४॥ हे धनेश्वर ! हम तुम्हारे दक्षिण हाथ को धन की कामना से पकड़ते हैं। हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हें गौओं का स्वामी जानते है, अतः हमें अभीष्ट फल वाला धन प्रदान करो ॥५॥ हम युद्ध मे रक्षा वाले कर्म को प्रयुक्त करते हैं, सग्राम में इन्द्र को रक्षार्थ आहूत करते हैं, ऐसे हे इन्द्र ! हमारे द्वारा अन्न की याचना करने पर हमें

पशुओं से सम्पन्न गोष्ठ वाला बनाओ ॥६॥ सुखदात्री, गमनशील यज्ञप्रिया, दर्शनीय सूर्य की रश्मियाँ इन्द्र को प्राप्त हुईं। हे इन्द्र! तुम अन्धकार का नाश करो। हमे चक्षु वाला बनाओ। हमें पाशों से मुक्त करो ॥७॥ हे वेन! तुम श्रेष्ठ पर्ण वाले, अन्तरिक्ष में गमनशील, सुवर्ण पख वाले, जल के अभिमानी देव वरुण के दूत यम के स्थान में पक्षी के रूप में स्थित और वृष्टि आदि के द्वारा पोषक हो। तुम्हारी कामना वाले स्तोता अन्तरिक्ष की ओर देखते हैं ॥८॥ वेन नामक गन्धर्व ने आनन्दसूचक ध्वनि करते हुये पूर्वोत्पन्न ब्रह्म को दर्शनीय तेज से युक्त किया। उसी गन्धर्व ने आदित्य आदि के तेज की स्थापना की। उसी ने उत्पन्न हुये तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्राणियो के स्थान को बनाया ॥९॥ महान् पराक्रमी, वीर शीघ्रकर्मा, स्तुत्य, प्रवृद्ध और वज्रधारी इन इन्द्र के लिये स्तोतागण अत्यन्त सुखदायक एवं नवीन स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं ॥१०॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि—द्युतानः, वृहदुक्थः, वामदेवः, वसिष्ठः, विश्वामित्रः-गोरिवीतः। देवता इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्।)

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठादियानः कृष्ण दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्र श या धमन्तमप स्तीहिति नृम्णा अधद्रा. ॥१

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वदेवावे अजहुर्ये सखायः।
मरुद्भिरिन्द्र सख्य ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥२

विधु दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्य समान ॥३
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभव
शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो
रण धा ॥४
मेडि न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं
स्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्ष वृत्रहणं गृणीषे ॥५
प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्रसुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः ॥६
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
श्रृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जित धनानि
॥७
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो
बचांसि ॥८
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९
(३-१०)

दस हजार राक्षसों के सहित आक्रमण करने वाला कृष्णासुर अंशुमती नदी पर पहुँचा। उस मतप्रद शब्द वाले राक्षस के पास मरुद्गण सहित इन्द्र पहुँचे। उन समान मन वाले देवताओं ने हिंसक राक्षस-सेना का संहार किया ॥१॥ हे इन्द्र! यह विश्वेदेवा तुम्हारे सहायक मित्र थे, वे सब वृत्रासुर के श्वास से

भयभीत होकर चारों ओर भाग गये और तुम्हारा साथ छोड़ दिया। परन्तु मरुद्गण ने साथ नहीं छोड़ा तुम उन मरुतों से मित्रता रखो। तब इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकोगे ॥२॥ रणक्षेत्र में बहुत से शत्रुओं को भगाने वाले वीर युवक को भी इन्द्र की कृपाप्राप्त वृद्ध हरा देता और जो वृद्ध आज मरता है, वह दूसरे दिन ही जन्म धारण कर लेता है। इन्द्र की यह सामर्थ्य महिमा-मयी ही है ॥३॥ हे इन्द्र! तुम पराक्रमी होकर ही प्रकट होते हो। तुमने ही सात राक्षसों की पुरियो को नष्ट किया और अन्धकार से ढकी द्यावा पृथिवी को सूर्य रूप से प्रकाशित किया ॥४॥ हे इन्द्र! तुम हमारे शत्रुओं के क्षीण करने वाले और हमें विजय प्राप्त कराने वाले हो। जैसे वृष्टि कराने वाली वाणी की प्रार्थना की जाती है, वैसे ही तुम मेघों के प्रेरक, जलों के धारक, काम्य-वर्षक, दृढ़, वज्रधारी को स्तुति द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥५॥ हे ऋत्विजो! धन-वृद्धि करने वाले महान् इन्द्र के लिये सोम अर्पित करो। वे इन्द्र अत्यन्त ज्ञानी हैं, उनकी स्तुति करो। हे इन्द्र! तुम अभीष्टपूरक हो, अतः हविदाता मनुष्यों के समक्ष आगमन करो ॥६॥ अन्नलाभ कराने वाले, विजय दिलाने वाले, युद्ध में विश्व के स्वामी इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। यह इन्द्र शत्रुओं को भय-भीत करने वाले, राक्षसों के हननकर्त्ता, शत्रु-धन विजेता हैं। हे इन्द्र! ऐसे तुम्हें हम रक्षा के लिये आहूत करते हैं ॥७॥ हे ऋषियों! इन्द्र के निमित्त स्तोत्र और हवियो को अर्पित करो। अपने यज्ञ मे इनका पूजन करो। जा इन्द्र सब लोकों को अपनी महिमा से बढ़ाते हैं, वे हमारे स्तोत्र को सुनें ॥८॥ इन इन्द्र का शस्त्र मेघ–हनन के लिये अन्तरिक्ष में स्थित हुआ। उसी ने इन्द्र के निमित्त जल को वश में किया। पृथिवी में सिंचित जल औष-धियों मे व्याप्त होता है ॥९॥

पञ्चम दशति

(ऋषि —अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः, भरद्वाज, वसुकृद् वासुक्र. विमदो वा:, वामदेव., विश्वामित्र, रेणु., गोतमः। देवता तार्क्ष्यः, इन्द्र, इन्द्रापर्वतौ। छन्द—त्रिष्टुप्।)

त्यमू षु वाजिनं देवजूत सहोवान तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशु स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्र. ॥२

यजामह इन्द्र वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्या विव्रतानाम्।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्मयमानो वि
राधमा ॥३

सत्राहणं दाधृषि तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभ सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्र सनितोत वाज दाता मघानि मघवा
सुराधाः ॥४

यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो
वा।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमण-
स्त्वोता ॥५

य वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना य युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते।
यं शूरसातौ यमपामुज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः
॥६

वीतं हव्यान्यध्वरेषु देव वर्धेथाँ गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७

इन्द्राय गिरो अनिशतसर्गा अपः प्रैरयत् सगर य बुध्नात्।
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ
पृथिवीमुत द्याम् ॥८

आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवाज्ज-
गम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरा दीद्यानः
॥९

को अद्य युंक्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो
दुर्हृणायून ।
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषाँ भृत्यामृणधत् स
जीवात् ॥१०॥ (३-११)

उन प्रसिद्ध अन्न वाले सोम लाने के लिये देवताओं द्वारा प्रेरित, रथों को युद्ध क्षेत्र में लाने वाले, शत्रु-विजेता, द्रुतगामी तार्क्ष्य को कल्याण के निमित्त आहूत करते हैं ॥१॥ मैं रक्षक इन्द्र का आह्वान करता हूँ। अभीष्टपूरक इन्द्र का आह्वान करता हूँ। सब संग्रामों में बुलाने योग्य इन्द्र को आहूत करता हूँ। वे इन्द्र हमारे हव्य का सेवन करें ॥२॥ दक्षिण हाथ में वज्रधारण करने वाले, कर्म वाले, हर्यश्वों को रथ में जोड़ने वाले इन्द्र की हम पूजा करते हैं। सोम-पान के पश्चात् दाढ़ी मूँछ को कम्पित करते हुये वे इन्द्र विभिन्न धनों का प्रदान करते हैं ।३॥ हम स्तोता शत्रु हन्ता, शत्रु तिरस्कारक शत्रुओं को दूर करने वाले, काम्यवर्षक, वज्रधारी इन्द्र की स्तुति करते हैं। वे इन्द्र वृत्रहन्ता, अन्नदाता और श्रेष्ठ धनों के देने वाले हैं ॥४॥ हमें हिंसित करने की इच्छा वाला, हम पर आक्रमण करने वाला, अपने को महान्

हुआ जो मनुष्य क्षीण करने वाले शस्त्रों को लेकर चढाई करता है, उसे हमे भले प्रकार तिरस्कृत करें ।।५।। क्रोधित मनुष्य जिसे पुकारते है, परस्पर हिंसा करने वाले पुरुष जिसे पुकारते हैं, जल की इच्छा से जिन्हें पुकारते हैं और मेधावीजन जिन्हें हवि अर्पित करते हैं, वह इन्द्र है ।।६।। हे इन्द्र और पर्वत ! तुम महान् रथ द्वारा आकर प्रार्थना योग्य अन्न प्रदान करो। हमारे यज्ञों मे आकर हविभक्षण करो और उससे तृप्त होकर स्तुतियों से प्रवृद्ध होओ ।।७।। निरन्तर उच्चरित जो स्तुतियाँ इन्द्र के निमित्त होती हैं, उनसे वे जलों को प्रेरित करते हैं और पृथवी तथा स्वर्ग को रथ-चक्र के समान स्थिर रखते हैं ।।८।। हे इन्द्र ! स्तोतागण तुम्हें स्तुतियों से अभिमुख करते हैं। तुम उडते हुये अन्तरिक्षगामी हुये थे। हमारे इस यज्ञ मे तेज से अत्यन्त दीप्त हुये इन्द्र मुझे पुत्र प्रदान करें ।।९।। सत्य के ज्ञाता इन्द्र के रथ मे योजित तेजस्वी, क्रोधयुक्त, इन्द्र को वाहन करने वाले अश्वों को स्तोत्र से कौन रोक सकता है ? जो यजमान इन अश्वों के रथ-वहन की प्रशसा करता है वह चिरञ्जीवी होता है ।।१०।।

—:o.—

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—मधुच्छन्दा, जेता माधुच्छन्दस , गोतम, अत्रि , तिरश्चीः, काण्वो नीपातिथिः, शयुर्बार्हस्पत्य । देवता—इन्द्र । छन्द – अनुष्टुप् ।)

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किण. ।

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ।1

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

रयीतमं रथीनां वाजना सत्पति पतिम् ॥२
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥३
यदिंद्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिव. ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥४
श्रुधा हव तिरश्चया इन्द्रयस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महा असि ॥५
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रज. सूर्यो न रश्मिभिः ॥६
एंद्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिव यय दिवावसो ॥
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थु सुतेषु गिर्वण. ।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनव· ॥८
एतो न्विन्द्र स्तवाम शुद्धं शुद्धन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थर्वावृध्वाँस शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥९
यो रयि वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तम ।
सोम सुत. स इन्द्रतेऽस्ति स्वधापते मद ॥१०॥ (३-१२)

हे इन्द्र ! उद्गाता तुम्हारी स्तुति करते हैं। मन्त्रोच्चारण करने वाले होता तुम्हारी स्तुति करते हैं। जैसे बाँस की नोंक पर नाचने वाले नट आदि बाँस को ऊँचा करते हैं, वैसे ही तुम्हें हम उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करते है ॥१॥ समुद्र के समान

महान्, रथियों में महारथी, अन्नों के स्वामी इन्द्र की हमारी सब स्तुतियों ने वृद्धि की ।।२।। हे इन्द्र ! इस अत्यन्त प्रशंसनीय, तृप्तपद अभिषुत सोम को पान करो। यज्ञ-मण्डप मे स्थित इस उज्ज्वल सोम की धारायें तुम्हारे अभिमुख गमन करती हैं ।।३।। हे इन्द्र ! तुम अद्भुत बल वाले, वज्रधारी, मेधावी और व्याप्त हो। तुम्हारा जो देय धन इस लोक मे नहीं है उसे अपने दोनों हाथों से लाकर हमे दो ।।४।। हे इन्द्र ! जो तुम्हारी हवियों से उपासना करता है, वह मै तिरश्च तुम्हारी स्तुति करता हूँ। उसे सुनकर मुझ श्रेष्ठ अपत्य, गवादि पशु और सब प्रकार का धन देकर परिपूर्ण करो, क्योंकि तुम महान् हो ।।५।। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त सम्पादित हुआ है। तुम अत्यन्त बली और शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले हो। हमारे इस यज्ञ-स्थान मे आगमन करो। सूर्य द्वारा अन्तरिक्ष को किरणो से पूर्ण किये जाने के समान तुम्हें सोम की शक्तिपूर्ण करे ।।६।। हे इन्द्र ! अपने अश्वों पर चढ़कर मुझ कण्व की श्रेष्ठ स्तुति के प्रति आगमन करो। जब तुम स्वर्गलोक का शासन करते हो तब हम सुखी होते हैं। हमारे कर्म की समाप्ति पर स्वर्ग को गमन करो ।।७।। हे स्तुत्य इन्द्र ! सोमाभिषव के पश्चात् हमारी वाणियाँ, रथी के युद्ध-स्थल मे पहुँचने के समान तुम्हारे समक्ष शीघ्र ही पहुँचती हैं। हे इन्द्र ! हमारी वाणियाँ गौओं जैसे बछड़ो के पास रँभाती हुई जाती है, वैसे ही जाती हुई तुम्हारी स्तुति करती हैं ।।८।। शीघ्र आकर शोधक साम के द्वारा और पवित्र करने वाले उक्थों के द्वारा शुद्ध हुये इन इन्द्र की स्तुति करें, फिर पाप-मुक्त होकर वृद्धि को प्राप्त हुये इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा गो दुग्धादि से सस्कृत हुआ यह सोम हर्ष देने वाला है ।।९।। हे इन्द्र ! जो सोम अत्यन्त सुख वाला है और अपनी दीप्ति से अत्यन्त प्रकाश वाला है, वह सोम तुम्हारे भक्तों को धन देने वाला हो। हे स्वधापति इन्द्र !

यह निष्पन्न हुआ सोम तुम्हें हर्षप्रदायक होता है ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—भरद्वाज., वामदेव., शाकपूतो वा, प्रियमेधः प्रगाथ., श्यावाश्व आत्रेयः, शयुः, जेता माधुच्छन्दस. । देवता–इन्द्रः, मरुतः, दधिकावाः, अग्निः । छन्द—अनुष्टुप् ।)

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१
आ नो वयो वयः शयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
महान्त पूर्विणेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः ॥२
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पतिम् ॥३
स पूर्व्यो महोना वेन क्रतुभिरानज ।
यस्य द्वारा मनु पिता देवेषु धिय आनजे ॥४
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठि विश्ववेदसम् ॥६
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिन ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥७
पुरा भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्र पुरुष्टुतः ॥८॥ (४-१)

हे यज्ञ-कर्म में नेता अध्वर्यो ! सोमपान की कामना वाले, सबके ज्ञाता, यज्ञों में गमनशील और अग्रगन्ता इन्द्र के लिये सोम अर्पित करो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे सखा हो। अनेक गुफाओं में वर्तमान हमारे सोम को लाकर, पहले से ही संसार मे स्थित हमारे भयानक मानवी वचन को नष्ट करो, अर्थात् हमारे मनुष्य जन्म को समाप्त कर देवता बना दो ॥२॥ हे इन्द्र ! जैसे रक्षा के लिये रथ को घुमाते हैं, वैसे ही तुम अत्यन्त बली, शत्रु-तिरस्कारक और सत्य-रक्षक इन्द्र को हम भ्रमण कराते हैं। ३॥ वे इन्द्र अपने मुख्य उपासक यजमानों के यज्ञों के द्वारा उनकी हवियों की इच्छा करते हुये आते हैं। उस इन्द्र की प्राप्ति वाले अनुष्ठानों को देवताओं के पालक मनुष्य पाते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! जिस रथ में योजित तुम्हारे वाहन तुम्हे अभिमुख करते है, उस यज्ञ में मधु रूप एव हर्षकारी सोम का पान करते हुये तुम अन्न के लिये वृष्टि करने वाले, होते हो ॥५॥ हे यजमानो ! उपासकों पर कृपा करने वाले, बल के रक्षक, शत्रु-तिरस्कारक, कर्मों मे स्थित, विश्वरूप धन वाले इन्द्र की तुम्हारे लिये स्तुति करता हूँ ॥६॥ अश्व के समान वेग वाले, विजयशील अग्नि की स्तुति करता हूँ। यह अग्नि हमारे मुख आदि को सशक्त करे और हमारे आयुधों की वृद्धि करें ॥७॥ यह शत्रु-पुरियों के विध्वंसक, नित्य युवा, क्रान्तदर्शी, अत्यन्त ओजस्वी, विश्वकर्मा-रूप धारण करने वाले, वज्रहस्त और अनेकों द्वारा स्तुत है ॥८॥

तृतीय दशति

(ऋषि—प्रियमेध., वामदेव मधुच्छन्दा, भरद्वाजः, भरद्वाजः,
अत्रि, प्रस्कण्व·, आप्त्यस्त्रितः। देवता—इन्द्रः, उषा,
विश्वेदेवाः, ऋक्सामौ। छन्द—अनुष्टुप्।)

प्रप्र व॑ित्रष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ।।१
कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहु· सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि ब्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ।।२
अर्चत प्रार्चता नर· प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्णवर्चत ।।३
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ।।४
विश्वानरस्य वनस्पतिमानतस्य शवसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ।।५
स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्त्तस्य शमतः ।
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ।।६
विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणेद्युम्नं सुदत्र मंहय ।।७
वयश्चित्तो पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ।।८
अमी ये देवा स्थन मध्य आ राचने दिवः ।

कद्व ऋतं कदमृत का प्रत्ना व आहुतिः ॥९

ऋचं साम यजामहे याभ्या कर्माणि कृण्वते ।

वि ते सदसि राजतो यज्ञ देवेषु वक्षतः ॥१०॥ (४-२)

हे अध्वर्यो! तुम त्रिष्टुभ युक्त अन्न को वीरों के प्रशंसक इन्द्र के प्रति निवेदित करो। वे इन्द्र अनुष्ठान के निमित्त अत्यन्त ज्ञान वाले कर्म का सेवन करते है ॥१॥ इन्द्र के अश्वों के सभी कार्य यज्ञ के निमित्त हैं। यह यज्ञ में आने के लिये ही योजित किये जाते हैं, यह बात स्वर्ग के ज्ञाता पुरुष कहते हैं ॥२॥ हे अध्वर्यो! इन्द्र का पूजन करो। यज्ञ-कर्म से प्रेम करने वाले उपासको। इन अभीष्टपूरक और शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र का बारम्बार पूजन करो ॥३॥ शत्रु-नाशक इन्द्र के लिये वृद्धि के साधन रूप उक्थ प्रशंसनीय हैं। इससे प्रसन्न हुये इन्द्र हमारे पुत्रादि तथा हम मित्रों में वर्तमान होकर हर्षध्वनि करे ॥४॥ हे मरुद्गण! तुम्हारे सहित वैश्वानर, न झुकने वाले, बल के स्वामी इन्द्र को अपने सैनिकों और रथों के गमन काल मे रक्षा के लिये आहूत करता हूँ ॥५॥ शान्त भाव से अपने कर्म में लगे हुये मनुष्यों मे दिव्य गुणयुक्त स्तुति करने बाला पुरुष स्तोता तुम्हारी रक्षाओं से रक्षित होकर, शत्रुओं को पाप के समान लाँघता है ॥६॥ हे शतकर्मा इन्द्र! तुम्हारा महान् धन वाला दान बहुत है, इसलिये तुम महान् दानी हो। तुम हमे धन प्रदान करो ॥७॥ हे उषे! तुम्हारे प्रकाश फैलाने वाले आगमन पर मनुष्य, पशु और पक्षी सभी अपनी इच्छानुसार विचरण करते हैं ॥८॥ हे देवताओ! तुम सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्तरिक्ष में स्थित होते हो। तुम्हारे स्तोत्र से सम्बन्धित सत्य और असत्य

कहाँ है ? तुम्हारी प्राचीनकाल आहुति कौन-सी है ? ॥८॥ जिन स्तोत्रादि के द्वारा होता और उद्गाता अनुष्ठानादि कर्म करते हैं, इन ऋचा और साम से हम यज्ञ करते है। वही ऋचायें स्तोत्र रूप से सुशोभित होती और यज्ञीय भाग को देवताओं को प्राप्त कराती है ॥१०॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि—रेभः सुवेदा., शैलूषि, वामदेव, सव्य आङ्गिरसः, विश्वामित्र, कृष्ण आङ्गिरस., भरद्वाज., मेधातिथि, कुत्स.।
देवता—इन्द्र, द्यावा पृथिवी। छन्द—जगती, पक्ति।)

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरोमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्॥१

श्रत्तो दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद् दस्यु नर्यं विवेरपः।
उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवं ॥२

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम्।
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन् तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्यं नो वच ॥४

चर्षणीधृत मघवानमुक्थ्या३मिन्द्र गिरो बृहतीरभ्यनूपत ।
वावृधान पुरुहूत सुवृक्तिभिरमर्त्य जरमाण दिवेदिवे ॥५
अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युव सध्रीचीर्विश्वा उशतीर-
नूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पति मर्य न शुन्ध्युं मघवान-
मूतये ॥६
अभि त्य नेष पुरुहूतमृग्मियामिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो
अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे महिष्ठमभि
विप्रमर्चत ॥७
त्यं सुमेषं महया स्वर्विदं शत यस्य सुभुवः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यद रथमिन्द्र ववृत्याममवसे
सुवृक्तिभिः ॥८
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे
भूरिरेतसा ॥९
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१०
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृ-
जिश्वना ।

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वंतं सख्याय
　　　　　　　　　　　　　　　　　हुवेमहि ॥११॥ (४-३)

आक्रमण करने वाली, सब ओर फैली हुई सेनायें एकत्र होकर शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र को आयुधयुक्त करती हैं और स्तोता उन ऐश्वर्यवान् इन्द्र को यज्ञ में प्रकट करते हैं। वे सत्य कर्म के लिये, शत्रुहन्ता, उग्र, स्थिर, तेजस्वी इन्द्र की धन-लाभार्थ स्तुति करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र! मैं तुम्हारे प्रमुख क्रोध को श्रद्धा से देखता हूँ। उस क्रोध से तुमने राक्षसों का हनन किया और मेघों में छिपे जलों को इस लोक में भेजा। जब द्यावापृथिवी तुम्हारे अधीन होते हैं, तब विस्तृत अन्तरिक्ष भी तुम्हारे बल से डरता है ॥२॥ हे प्राणियों! स्वर्ग के और बल के स्वामी इन्द्र को स्तोत्र और हवि द्वारा प्राप्त होओ। जो एकाकी ही यजमानों में अतिथि के समान पूज्य माने जाते हैं, वे पुराण पुरुष इन्द्र 'शत्रु-जय' की कामना वाले स्तोता को विजय-पथ पर अग्रसर करते हैं ॥३॥ हे अनेको द्वारा स्तुत और अत्यन्त ऐश्वर्य वाले इन्द्र! हम तुम्हारे आश्रित होकर ही यज्ञ में प्रवृत्त होते हैं। हमारी स्तुतियों को तुमसे भिन्न कोई भी प्राप्त नहीं होता। जैसे पृथिवी अपने मे उत्पन्न सब प्राणियों को आश्रय देती है, वैसे ही हमारे स्तोत्र को आश्रय दो ॥४॥ हे उपासको! स्तुति रूप वाणी से अभीष्ट बल से पुष्ट करने वाले, ऐश्वर्यवान्, प्रशंसा योग्य, प्रवृद्ध, अनेकों द्वारा स्तुत, अविनाशी इन्द्र का स्तव करो ॥५॥ स्त्रियाँ जैसे बलवान पति की रक्षा के लिये कामना करती हैं, वैसे ही स्वर्ग में एकत्र होने वाली, कामनायुक्त वाणियाँ इन्द्र की स्तुति करती हैं ॥६॥ शत्रुओं से युद्ध के लिये तत्पर, यजमानों के द्वारा धनों के आश्रयस्थान इन्द्र के कर्म सूर्य-रश्मियों के समान मनुष्यों का हित करने वाले होते हैं उन मेधावी और

महान् इन्द्र का सुख के निमित्त पूजन करो ।।७।। जिनके साथ भूमियाँ प्राप्त होती हैं, उन शत्रु-स्पर्द्धी, धनदाता, रथ के समान गन्तव्य स्थान को प्राप्त कराने वाले, अश्व के समान द्रुतगामी इन्द्र की रक्षार्थ पूजन करो और स्तुतियुक्त सौ प्रदक्षिणा करो ।।८।। द्यावापृथिवी, जल वाले प्राणियों के आश्रययोग्य है । यह जल को प्रेरित करने वाले वरुण की धारण शक्ति से ठहरे हुये और महान वीर्य वाले हैं ।।६।। हे इन्द्र ! जैसे उषा अपने प्रकाश से सब ससार को पूर्ण करती है, वैसे ही तुम द्यावा पृथिवी को अपने तेज से पूर्ण करते हो । इस प्रकार के तुम बड़े से बड़े, मनुष्यों के स्वामी इन्द्र को अदिति ने उत्पन्न किया । इस कारण वह जननियों में श्रेष्ठ हुई ।।१०।। हे ऋत्विजो ! इन्द्र के निमित्त हवियुक्त स्तुति का उच्चारण करो । जिन इन्द्र ने ऋजिश्वना को साथ ले कृष्णासुर को स्त्रियों सहित नष्ट कर डाला, उन अभीष्ट-वर्षक, वज्रधारी मित्रभूत इन्द्र का हम आह्वान करते हैं ।।११।।

पञ्चम दशति

(ऋषि—नारदः, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौः, पर्वत., विश्वमना वैयः नृमेधः, गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक् ।)

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ।।१
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ।।२
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ।।३
यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभि. ॥४
एदु मध मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ॥५
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधासि चोदयते महित्वना ॥६
एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते बिपश्चिते पनस्यवे ॥८
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग ॥९
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय घृष्णवे ॥१०॥ (४-४)

हे इन्द्र ! सोमाभिषव होने पर उनका बल लाभ के लिये पान करते और अपने स्तोता को पवित्र करते हो, ऐसे तुम अत्यन्त ही महान् हो ॥१॥ हे स्तोताओ ! अनेकों द्वारा बुलाये गये, अनेकों से स्तुत उन इन्द्र की बारम्बार स्तुति करो। वे इन्द्र महान हैं, उनकी मन्त्रों से पूजा करो ॥२॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे उन अभीष्टवर्षी युद्धो मे, शत्रु-तिरस्कारक लोकों के रचयिता और हर्यश्वों से सेवनीय सोम से उत्पन्न हुये आनन्द की हम प्रशसा करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! विष्णु के आगमन पर तुम उनके साथ अन्य योग में सोम का पान करते हो । आप्त के पुत्र त्रित के यज्ञ में भी तुम सोम पान करते हो। मरुद्गण के

आने पर उनके साथ भी सोम पीते हो, फिर भी हमारे इन श्रेष्ठ सोमो से हर्ष को प्राप्त होओ ॥४॥ हे अध्वर्यो ! हर्षप्रदायक सोम के अत्यन्त आनन्ददायक रस को इन्द्र के लिये सींचो। यह समर्थ इन्द्र ही स्तोत्र आदि के द्वारा पूजित होते हैं ॥५॥ हे ऋत्विजो ! इस श्रेष्ठ सोम को इन्द्र के लिये ही सींचो। फिर इन्द्र इस रस का पान करें और स्तोताओं को अपनी महिमा से श्रेष्ठ अन्न को अपरिमित रूप से प्रदान करें ॥६॥ हे सखाभूत ऋत्विजो ! तुम शीघ्र ही आगमन करो और सबके स्वामी इन्द्र की स्तुति करो। वे इन्द्र समस्त शत्रु-सेनाओं को अकेले ही वशीभूत करते हैं ॥७॥ हे उद्गाताओं ! मेधावी, महान्, अन्न के उत्पन्न करने वाले तथा स्तुति की कामना वाले इन्द्र के निमित्त वृहत्साम का गान करो ॥८॥ अकेले ही जो इन्द्र हविदाता यजमान को धन देते हैं, वे इन्द्र सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं ॥९॥ हे ऋत्विजो ! हम वज्रधारी इन्द्र के लिये स्तुति करते हैं। तुम सबके लिये शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र की मैं ही स्तुति करता हूँ ॥१०॥

॥ चतुर्थ प्रपाठकः समाप्त ॥

—:०:—

पञ्चम प्रपाठक:

(प्रथमोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि–प्रगाथ., भरद्वाजः नृमेधः, पर्वतः, इरिम्बिठि, विश्वमन', वसिष्ठः । देवता—इन्द्र', आदित्या । छन्द उष्णिक्, अनुष्टूप् ।)

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुत' पिब ॥२

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्श्वतः पृथुः पतिर्दिविः ॥३

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
यना हसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥४

तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघ य आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥५

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्यु' परिपदामिव ॥६

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥७

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते मुषाव हर्यश्दाद्रिः ।
सीतुर्बाहुभ्यां सुपनो नार्वा ॥८॥ (४-५)

हे इन्द्र ! तुम्हारे श्रेष्ठ बल के लिये एव यज्ञ के लिये तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम अपने बल से वृत्र का हनन करते हो ॥१॥ हे इन्द्र ! जिस सोमपान जनित हर्ष के होने पर तुमने दिवोदास के शत्रु शम्बरासुर की हिंसा की, उस सोम का तुम्हारे निमित्त अभिषव किया गया है, तुम उसका पान करो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, शत्रु-विजेता, सबके प्रिय, स्वर्ग के स्वामी और पवन के समान महान् हो । तुम हमारे निकट आगमन करो ॥३॥ हे सोमपायी इन्द्र ! तुम्हारा सोमपान जनित हर्ष वृत्रवध आदि कर्म के जानने वाला है । तुम उस शक्ति से राक्षसों को मारते हो । हम तुम्हारी उस शक्ति की स्तुति करते हैं ॥४॥ हे आदित्यो ! हमारे पुत्र, पौत्र के जीवन के निमित्त दीर्घ आयु प्रदान करो ॥५॥ हे वज्रिन ! विघ्नकारियो को दूर करना तुम ही जानते हो । सूर्योदय के समय कर्म करके ब्राह्मण नित्य शुद्ध होते हैं और सूर्योदय होने पर पक्षी सब ओर उड़ जाते, वैसे ही तुम्हारे बल के उदय होने पर शत्रु भी भाग जाते हैं ॥६॥ हे आदित्य ! हमसे रोगों को दूर करो । बाधक शत्रु को हमारे पास से भगाओ । जो हमे दुःख देना चाहे उसे हमसे दूर हटाओ और हमें पाप से भी मुक्त करो ! ७॥ हे इन्द्र ! सोमपान करो । यह सोम तुम्हे हर्ष देने वाला हो । अश्व के समान ग्रहीत सोमाभिषवण प्रस्तर ने तुम्हारे निमित्त सोम को संस्कृत किया है ॥८॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—सौभरिः, नृमेध. देवता—इन्द्रः मरुतः । छन्द - ककुप् ।)

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥१
या न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व रतुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥२
आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।
दृढा विद्यमयिष्णव ॥३
आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोम सोमपते पिब ॥४
त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुबीमहि ।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥५
गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धव ।
रिहते ककुभो मिथ ॥६
त्व न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्पणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥७
अधा हन्द्रि गिर्वण उप त्वां काम ईमहे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८
स दन्तस्ते वयो यथा गोश्र ते मधौ वदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥९

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।

वज्रिञ्चित्रं हवामहे ।।१०।। (४-६)

हे इन्द्र ! तुम जन्म से ही बान्धवरहित, शत्रुरहित और प्रभुत्व करने वाले से रहित हो । जब तुम अपने किसी उपासक की रक्षा करना चाहते हो तब उसके मित्र हो जाते हो ।।१।। हे मित्रो ! जिन इन्द्र ने इस श्रेष्ठ धन का हमे अधिक मात्रा में पहले ही दिया था, उसी धन वाले इन्द्र की तुम्हारे धन–लाभ और रक्षा के लिये स्तुति करता हूं ।।२।। हे मरुद्गण ! हमारे पास आगमन करो । हमे हानि मत पहुंचाओ । तुम दृढ़ पर्वत आदि को भी नियम में रखते हो । हमारा त्याग मत करो ।।३।। हे अश्वो, गौओ और अन्नवती पृथिवी के स्वामी इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त यह सोम प्रस्तुत है, तुम यहां आकर इसका पान करो ।।४।। हे अभीष्टवर्षी इन्द्र ! गवादि पशु वाले यजमान के स्थान में श्वास लेते हुये शत्रु को तुम्हारी कृपा से ही उत्तर देने मे हम समर्थ होंगे ।।५।। हे मरुद्गण ! यह गौएँ भी समान जाति होने के कारण बांधवयुक्त हुईं और दिशाओं मे जाकर परस्पर प्रेम करती हैं ।।६।। हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम हमें ओज और धन प्रदान करो । तुम अपने बल से शत्रु-सेनाओं को दबाते हो । हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।।७।। हे इन्द्र ! हम इच्छित पदार्थों की तुमसे याचना करते हुये तुम्हारी स्तुति करते है ।।८।। हे इन्द्र ! स्वर्ग-प्रति वाले तुम्हारे दूध-घृत मिश्रित सोम के समीप एकत्र हुये हम तुम्हे बारम्बार नमस्कार करते हैं ।।९।। हे वज्रिन् ! सोम से तुम्हें पुष्ट करने वाले हम अपनी रक्षा के लिये तुम्हे बुलाते हैं, जिस प्रकार अधिक गुणवान् मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को बुलाते हैं ।।१०।।

तृतीय दशति

(ऋषि—गोमत, त्रित, अवस्युः। देवता—इन्द्रः, विश्वेदेवाः, अश्विनौ। छन्द—पंक्ति।)

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शाभथा वस्वीरनु
स्वराज्यम् ॥१

इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या नि शशा अहिमर्चन्ननु
स्वराज्यम् ॥२

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र
नोऽविषत् ॥३

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्नन
स्वराज्यम् ॥४

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हवो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु
स्वराज्यम् ॥५

यदुद रत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्।

युङ्ध्वा मदच्युता हरी कं हनः वसौ ।
दधऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥६

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया
मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७

उपो षु श्रृणही गिरो मघवन्मातथा इव ।
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते
हरी ॥८

चन्द्रमा अप्स्वाइन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो
वित्त मे अस्य रोदस ॥९

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी
मम श्रुतं हवम् ॥१०॥ (४-७)

सब यज्ञों मे निष्पन्न होने वाले रसयुक्त मधुर सोम का श्वेत वर्ण वाली गौये पान करती हैं। वे गौयें अभीष्टवर्धक इन्द्र का अनुगमन करती हुई सुखी होती है और दूध देती हुई अपने स्वामी के राज्य मे निवास करती हैं। १॥ हे वज्रिन्! इस प्रकार तुम्हारे सोम ग्रहण करने पर स्तोता तुम्हें आनन्द देने वाली स्तुति करता है। तब तुम अपने सम्राज्य मे स्थापित होकर वृत्र पर शासन करते हो ॥२॥ हे वृत्रहन्! शक्ति के निमित्त, बल के निमित्त याज्ञिकों द्वारा प्रवृद्ध किये गये तुम सभी छोटे-बड़े युद्धों में बुलाये

जाते हो। हमारे द्वारा आहूत इन्द्र युद्धादि मे हमारी भले प्रकार रक्षा करें ॥३॥ हे वज्रिन्! तुम्हारा बल किसी से तिरस्कृत नहीं हुआ। उसी बल से तुमने अपना प्रभुत्व दिखाते हुये माया-मृग रूप वृत्र को अपना माया से मार डाला ॥४॥ हे इन्द्र! शीघ्रता से आक्रमण कर शत्रुओं को पकड़ो। क्योंकि तुम्हारा वज्र शत्रुओं द्वारा रोका नहीं जा सकता। तुम्हारे बल के सामने सभी झुकते हैं। इस कारण अपने प्रभुत्व को प्रकट करने वाले तुम उस वृत्र को मार कर जलों को जीतो ॥५॥ युद्ध के उपस्थित होने पर जो शत्रु को जीतता है, उसे ही धन मिलता है। हे इन्द्र! ऐसे संग्रामों में शत्रु के अहंकार का नाश करने वाले अपने अश्वों को योजित करो और अपने विरोधी को मारो और अपने उपासक को धन में स्थापित करो ॥६॥ हे इन्द्र! तुम्हारे दिये हुये अन्न का यजमानों ने सेवन किया और उसके श्रेष्ठ स्वाद को कहने में असमर्थ रहने के कारण आनन्द से शिर हिलाया। फिर तेजस्वी हुये विप्रों ने अभिनव स्तोत्र स्तुति की। अतः अपने हर्यश्वों को योजित करो ॥७॥ हे इन्द्र! हमारे निकट आकर हमारी स्तुतियों को भले प्रकार सुनो। तुम हमें सत्य वाणी से सम्पन्न कब करोगे? तुम हमारी स्तुतियों को सदा ही स्वीकार करते रहे हो, अतः अपने अश्वों को योजित कर शीघ्र ही आगमन करो ॥८॥ अन्तरिक्ष के जल-युक्त मण्डल में वर्तमान सूर्य-रश्मियां चन्द्रलोक में और स्वर्ग में समान रूप से गमन करती हैं। ऐसी हे रश्मियों! तुम सुवर्ण के समान नोक वाली हो। तुम्हारे चरण रूप अग्र भाग को मेरी इन्द्रियाँ पकड़ नहीं सकतीं। हे द्यावा पृथिवी! तुम मेरी स्तुति को जानो ॥९॥ हे अश्विद्वय! तुम्हारे फलवर्षक और धनवाहक रथ का स्तोता ऋषि स्तोत्रों से सुशोभित करता है। अतः हे मधुविद्या के ज्ञाताओ! इस बात को सुनो ॥१॥

चतुर्थः दशति

(ऋषि — वसुश्रुतः, विमदः, सत्यश्रवा, गोतमः, अहोमुग्वामदेव्यः ।
देवता—अग्नि, उषा, सोमः, इन्द्रः, विश्वेदेवाः ।
छन्द—पक्ति, बृहती ।)

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य
आ भर ॥१

अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
शीर पावकशोचिष वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं
विवक्षसे ॥२

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अवोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ॥३

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो त यवसे
विवक्षते ॥४

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे
हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५

स घा तं वृषण रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा
न्विन्द्र ते हरी ॥६

अग्नि त मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं
स्तोतृभ्य आ भर ॥७

न तमंहो न दुरित देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति
द्विषः ॥८॥ (३-८)

हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान और अजर हो । हम तुम्हें भले प्रकार प्रज्ज्वलित करते हैं । तुम्हारी स्तुति योग्य ज्योति स्वर्ग में भी दमकती है । तुम हम स्तोताओं को अन्न प्रदान करो ॥१॥ हे अग्ने ! अपने द्वारा की हुई स्तुति से देवाह्वान को सिद्ध करने वाले यज्ञों में जिनके लिये कुशाये बिछाई गई हैं ऐसे सर्वत्र व्यापक तथा पवित्रतायुक्त दीप्ति वाले तुम्हारे निमित्त सोम जनित हर्ष के लिये निवेदन करते हैं, क्योंकि तुम महान् हो ॥२॥ हे उषे ! आज इस यज्ञ के दिन हमे अपरिमित धन के लिये प्रकाश दो । इसी प्रकार तुमने पहले भी प्रकाश दिया था । हे सत्य रूप वाली उषे ! मुझ यव-पुत्र सत्यश्रवा पर कृपा करो ॥३॥ हे सोम ! तुम महान् हो । विशिष्ट मद वाले होकर तुम हमारे मन, अन्तरात्मा और कर्म को कल्याणमय करो । यह स्तोता तुम्हारे सखा हों, जैसे गौयें घास से मित्रता करती हैं ॥४॥ कर्म से महान-शत्रुओं को भयप्रद इन्द्र सोमपान के पश्चात् अपने बल को प्रकट करते हैं । फिर वे श्रेष्ठ नासिका वाले, हर्यश्ववान् इन्द्र

अपने हाथों मे लोह वज्र को समृद्धि लाभ के निमित्त ग्रहण करते हैं ॥५॥ हे अभीष्टवर्षक, गौऐं प्राप्त कराने वाले, रथारूढ़ इन्द्र ! तुम्हारा जो रथ पूर्ण पात्र को प्रकट करता है, अपने उस रथ मे हर्यश्वों को योजित करो ॥६॥ उपासको के धन रूप, घर के समान आश्रय रूप जिन अग्नि को गौऐं तृप्त करती है और द्रुतगामी अश्व जिन्हें प्राप्त होते हैं तथा उपासक यजमान जिन के समक्ष हवि लेकर जाते हैं, मै उन्ही अग्नि की स्तुति करता हूँ । हे अग्ने ! हम स्तोताओं को अन्न प्रदान करो ॥७॥ हे देवगण ! शत्रुओं को दण्ड देने वाले अर्यमा, मित्र और वरुण शत्रुओं से पार कर जिसकी उन्नति करते हैं, उस मनुष्य को कोई दोष और उसका फल व्याप्त नहीं करता ॥८॥

पञ्चम दशति

(ऋषि – धिषणया ऐश्वरयोऽग्नय , त्र्यरुणत्रसदस्यूः, वसिष्ठः, वामदेवः । देवता —पवमानः, मरुतः अग्निः, वाजिना स्तुति । छन्द—पंक्तिः, उष्णिक् ।)

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२

पवस्व सोम महान्त्ससद्रः पिता देवाना विश्वाभिधाम ॥३

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४

इंदुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्य राज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६
क ई व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वा ॥७
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥८
आविर्मर्य्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुः
सवम् ।
स्वर्गा अर्वन्तो जयत ॥९
पवस्व सोम द्युम्नो सुधारो महां
अवीनामनुपूर्व्यः ॥१०॥ (४-९)

हे सोम ! तुम्हारा रस अत्यन्त सुस्वादु है । तुम इन्द्र के लिये, मित्र के लिये, पूषा के लिये और भग देवता के लिये सब पात्रों मे स्रवित होओ ॥१॥ हे सोम ! हमे भले प्रकार अन्न प्राप्त कराने के लिये पात्रों में स्रवित होओ और साहसपूर्वक शत्रुओं पर आक्रमण करो । तुम हमारे ऋणों को नष्ट करन के लिये शत्रुओं को तिरस्कृत करते हो । २॥ हे सोम तुम महान् प्रवाहमान् सबके पालक और देवताओं के सब धामो के पात्रों को परिपूर्ण करते हो ॥३॥ हे सोम ! तुम अश्व के समान जलो से प्रक्षालित होकर वेगवान् होते हो । अतः महान् बल और धन के लिये पात्रों को पूर्ण करो ॥४॥ यह कल्याणकारी सोम श्रेष्ठ वृद्धि द्वारा सेवनीय हर्ष के लिये जलो के मध्य क्षरित होता है ॥५॥ हे सोम ! तुम्हारा अभिषव होने पर हम तुम्हारी स्तुति

करते हैं। हे पवमान! तुम मनुष्यों के साथ राष्ट्र की रक्षा के निमित्त शत्रुओं से युद्ध करते हो ॥६॥ प्रभुत्व सम्पन्न, कान्तिवान् समान स्थान वाले, मनुष्य-हितैषी और श्रेष्ठ अश्वों वाले ऐसे कौन हैं जो दीन स्तोता के लिये अपने बन जाते हैं? ॥७॥ हे अग्ने! तुम कल्याण रूप, अश्व के समान हवि वाहक और इन्द्रादि देवताओं को प्राप्त कराने वाले हो। आज हम ऋत्विज तुम्हें स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं ॥८॥ मनुष्यों का हित करने वाले, प्रकाशयुक्त हवि प्राप्त करने वाले देवताओं ने सविता देव द्वारा सम्पादित अन्न रूप सोम को प्राप्त किया। अतः हे यज-मानो! स्वर्ग पर विजय प्राप्त करो ॥९॥ हे सोम! तुम अन्न-युक्त, प्राचीन, महान्, सुन्दर धाराओं वाले और क्रमपूर्वक सम्पादित होने वाले हो ॥१०॥

—:०:—

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—वामदेवः, अवस्युः, संवर्तः। देवता - इन्द्रः; विश्वेदेव, उषा.। छन्द—पंक्तिः।)

विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१

एष ब्रह्माय ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥

ब्रह्म ण इन्द्रं महग्रन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्र पुरुहूत द्युमन्तम्
॥४
शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति व स्पृश-
द्रयिम् ॥५
सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपस ॥६
आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यद्धभिः ॥७
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्त पुष्येम रयिं धीमहे त इद्र ॥८
अर्चन्त्यर्क मरुतः स्वर्का आ स्ताभति श्रुतो युवा स
इंद्र ॥९
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत य
ज्जुजोषते ॥१०॥ (४-१०)

हे शत्रुनाशक और उपासकों को दान देने वाले इन्द्र ! तुम हमें सब प्रकार के अभीष्ट धन दो। तुम अत्यन्त सामर्थ्य वाले हो। अतः हम तुम्हीं से याचना करते हैं ॥१॥ वसन्त आदि ऋतुओं में प्रकट होने वाले जो इन्द्र अपने नाम से ही प्रसिद्ध हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥२॥ राक्षसों को नष्ट करने के लिये, प्रशसनीय स्तोत्रों से पूजन करने वाले विप्र, इन्द्र को प्रवृद्ध करते है ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे रथ की मनुष्यों और देवताओं ने रचना की। तुम अनेकों द्वारा पुकारे गये और विश्वकर्मा ने तुम्हारे वज्र को तेजस्वी बनाया ॥४॥ हविदाता यजमान सुख, पदवी और धन को प्राप्त करते है और इन्द्र के लिये कर्म न करने वाला व्यक्ति दानादि करने में समर्थ नही होता और अपने

अभीष्ट धन का भी स्पर्श नहीं कर सकता ॥५॥ इन्द्र की शरण में जाने वाले सदा स्वच्छ और पोषण शक्ति तथा दानादि गुण वाले और निष्पाप होते है ॥६॥ हे उषे ! कामना योग्य तेज के सहित आगमन करो। उषा की किरणे रथ का वहन करती हैं, वे ऐनों से सम्पन्न हैं ॥७॥ हे इन्द्र ! राजा द्वारा बनवाये चमस मे से मधुरतायुक्त श्रेष्ठ अन्न को हम तुम्हारे पास आकर परोसते हुये तुम्हारा ध्यान करते है ॥८॥ श्रेष्ठ स्तोत्र वाले स्तोता पूजनीय इन्द्र का हवियों और स्तोत्रो से पूजन करते है। वे युवा और श्रेष्ठ इन्द्र उनके शत्रुओं का हनन करते हैं ॥९॥ हे ब्राह्मणो ! वृत्रहन्ता इन्द्र के लिये उस स्तोत्र का गान करो जिससे इन्द्र प्रसन्न होते ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—वामदेव., बन्धु., सम्वर्त, भुवन आप्त्य:, भरद्वाज । देवता—अग्नि., इन्द्र, उषा, विश्वेदेवा । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्. ।)

अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथ. ॥१
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवो बरूथ्य. ॥२
भगो न चितो अग्निर्महोना दधाति रत्नम् ॥३
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥
उषा अप स्वसुष्टम. सं वर्तयति वर्तनि सुजातता ॥५
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तुरातयः ॥७
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीरा. ॥८

ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न
इन्द्र ॥९

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥ (४-११)

अत्यन्त मेधावी, हवियों से युक्त एवं हवि-वहन करने वाले अग्नि हविदाता को भले प्रकार जानते हैं ॥१। हे अग्ने! तुम सेवा करने के योग्य हमारे निकटस्थ रक्षक तथा कल्याणप्रद होओ ॥२॥ सूर्य के समान अद्भुत महान अग्नि याज्ञिकों को श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं।।२।। यह अग्नि सब शत्रुओं के मारने वाले हैं। वे इस यज्ञस्थान में पूर्व दिशा में स्थित होकर पूजे जाते है ॥४॥ यह उषा अपनी भगिनी रूप रात्रि के अन्धकार को अपने प्रकाश से दूर कर देती है और रथ पर भी अपना उत्तम प्रकाश पहुँचाती है ॥५॥ इन दर्शनीय लोकों को सुख प्राप्ति के लिये शीघ्र ही वश में करता हूँ। इन्द्र और सब देवगण मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे कार्य को सिद्ध करें ॥६॥ हे इन्द्र राजमार्ग से जैसे छोटे-छोटे मार्ग निकलते है, वैसे ही तुम्हारे दान हमे प्राप्त हों ॥७॥ हम इन्द्र के दान को इस स्तुति के प्रभाव से भोगने वाले हों। श्रेष्ठ पुत्रों वाले हम सौ हेमन्तों तक सुखी रहे ॥८॥ हे इन्द्र! हे मित्रावरुण! तुम हमे बलयुक्त अन्न प्रदान करो। हमारे अन्न को अपरिमित करो ॥९॥ इन्द्र ही सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषि—गृत्समदः, गौराङ्गिरस. (?, गोर आ० घोर आ० वा)
परुच्छेद. रेभ', एवयामरुत:, अनानत:, पारुच्छेपि, नकुल ।
देवता—इन्द्र', सूर्यः, विश्वेदेवा', मरुत., पवमान,
सविता, अग्नि, । छन्द—अष्टि., जगती',
अत्यष्टि, शक्वरी वा ।)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिर तुविशुष्मस्तृम्पत् सोमम
पिबद् विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ई ममाद महि कर्म कर्तवे महमुरु सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥1

अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
ब्रध्नः समीचीरुषस. समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
मन्युमन्तश्चिता गोः ॥२

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव
सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाज-
सातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥३

तामिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं
श्रवाँसि भूरि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा
सुपथा कृणोतु वज्री ॥४

यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
भुवो विश्वमभ्यदेव मोजसा विदेदूर्ज ।
शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥ (४-१२)

अत्यन्त बली, पूजनीय इन्द्र ने ज्योति, गौ और आयु वाले दिनों में अभिषुत सोम का विष्णु के साथ इच्छानुसार पान किया। उस सोम ने वृत्रहनन आदि कर्मों मे इन महिमामय इन्द्र को हर्षयुक्त किया। वह टपकता हुआ श्रेष्ठ सोम इन इन्द्र में रमण करे ॥१॥ सहस्र मानवों वाले, दर्शनीय, मेधावी, विधाता एव ज्योतिस्वरूप यह सूर्य अन्धकार रहित इन उषाओं को प्रेरित करते हैं। तब यह प्रकाशयुक्त चन्द्रमा आदि भी दिन के प्राप्त होने पर सूर्य के तेज के कारण आभाहीन हो जाते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! दूर देश से हमारे निकट आगमन करो। जैसे यह अग्नि और संस्कृत सोम प्राप्त हुये हैं, जैसे सत्यपालक यजमान यज्ञ-भूमि में आया है, जैसे चन्द्रमा अपने लोक को प्राप्त होता है, वैसे ही हम यजमान तुम्हारे अभिमुख आकर आह्वान करते हैं। जैसे अन्न के लिये पुत्र पिता को पुकारते है, वैसे ही युद्ध जीतने के लिये हम तुम्हें पुकारते हैं ॥३॥ उग्र, धनवान्, बलधारक, शत्रु द्वारा न रुक सकें ऐसे इन्द्र को बारम्बार आहूत करता हूं। वे महान् इन्द्र हमारी स्तुतियों के प्रति अभिमुख हो रहे हैं। वे वज्रधारी हमें धन प्राप्त होने वाले मार्गों को सुगम करें ॥४॥ हे इन्द्र ! उत्तर वेदी के अग्रभाग में आह्वानीय अग्नि को मैंने धारण किया। हम उन अग्नि की पूजा करते हैं। इन्द्र और वायु की स्तुति करते है। यह सब यजमान के लिये देवयज्ञ वाले स्थान में एकत्र होकर अभीष्टपूर्ण करते हैं हमारे सभी कर्म तुम्हे प्राप्त होते हैं ॥५॥ ऐवयामरुत नामक ऋषि की स्तुतियां मरुत्वान और विष्णु सहित इन्द्र को प्राप्त हो। यह यजन योग्य, अलंकृत,

बलवान् मरुद्गण के बल को भी प्राप्त हों ।।६।। पवित्रकर्ता सोम अपनी हरित वर्ण वाली धारा से जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है वैसे ही सब वैरियों को नष्ट करता है। इस सोम की धारा तेजस्वी होती है, यही सोम अपने तेजों से सब रूपों को व्याप्त करता है ।।७।। सर्वज्ञ, सत्यप्रेरक, धनदाता, प्रिय, स्तुति-योग्य उन सविता देवता का पूजन करता हूँ। उन सविता की दीप्ति ऊँची उठकर द्यावापृथिवी मे दमकती है। वे श्रेष्ठकर्मा सविता देव कृपापूर्वक स्वर्ग के निमित्त सोमपान करते हैं ।।८।। सब देवताओं मे अग्र-होता, अधिक धनदाता, बल के पुत्र, सर्व-ज्ञाता अग्नि देवता यज्ञ का भले प्रकार निर्वाह करते है, वे देव-ताओं को हवि पहुँचाने की इच्छा करते हुये सब ओर से होमे जाते हुये घृत को स्वीकार करते है ।।९।। हे सर्वप्रेरक इन्द्र! तुम्हारा प्राचीन मनुष्य हितैषी कर्म स्वर्ग मे प्रशंसनीय है। तुमने अपनी शक्ति से असुर के प्राणो को नष्ट किया और उसके द्वारा अवरुद्ध जलों को खोल दिया। ऐसे हे इन्द्र! अपने बल से राक्षस का तिरस्कृत करो। तुम बल और हविरूप अन्न को प्राप्त करो ।।१०।।

—:—

चतुर्थः दशति

(ऋषि – अमहोयु, मधुच्छन्दाः, भृगुर्वारुणि, त्रित, कश्यप॰ जमदग्निः, दृढच्युत आगस्त्यः काश्यपोऽसित. । देवता— पवमानः, सोम, छन्द— गायत्री ।)

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रं शर्म महि श्रव. ॥१

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इंद्राय पातवे सुतः ॥२

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥३

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशंसहा ॥४

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥५

इंद्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥६

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥७

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८

परि स्वानो गरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥९

परि प्रिया दिविः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।

स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१०॥ (५-१)

हे सोम ! तुम्हारा रस उत्पन्न हुआ । हम स्वर्ग मे विद्यमान उग्र कल्याण को और महिमामय अन्न को प्राप्त करते हैं ॥१॥ हे सोम ! तुम इन्द्र के पानार्थ संस्कृत हुये हो । अतः अत्यन्त स्वाद वाली हर्षप्रदायक धार सहित त्वरित होओ ॥२॥ हे सोम । तुम स्तोताओं के लिये अभीष्टवर्धक होते हुये कलश मे आगमन करो और मरुत्वान् इन्द्र के लिये सब धनो को धारण कर हर्षयुक्त होओ ॥३॥ हे सोम ! तुम्हारा रस देवताओं द्वारा कामना किया हुआ, राक्षस-हन्ता, अत्यन्त हर्षप्रद है । उस रस के सहित कलश मे आगमन करो ॥४॥ तीन वेदों की वाणी रूप स्तुतियों का ऋत्विगण उच्चारण करते है और पयस्विनी गौएँ रँभाती हैं, तब हरे वर्ण का सोमरस शब्द करता हुआ कलश में गमन करता है ॥५॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त मधुर हो । इस यज्ञ-स्थान में इन्द्र के लिये कलश मे स्थित होओ ॥६॥ पर्वत मे उत्पन्न सोम शक्ति के निमित्त अभिषुत किया गया जलों मे बढ़ता है । श्येन जैसे अपने स्थान को प्राप्त होता है, वैसे ही यह सोम अपने स्थान को प्राप्त होता है, वैसे ही यह सोम अपने स्थान पर स्थित होता है ॥७॥ हे सोम ! तुम हर्ष और बल के साधन रूप हो । इन्द्र आदि देवताओं के पानार्थ तथा मरुद्गण के निमित्त कलश में स्थित होओ ॥८॥ यह सोम पवित्र कलश में स्थित हुआ है । हे सोम ! तुम पर्वत पर उत्पन्न होने वाले हो । अभिषुत होने पर सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो ॥९॥ बुद्धि के बढ़ाने वाला सोम अभिषवण फलक मे स्थित होकर स्वर्ग गमन में प्रीति करने वालों को प्राप्त होता है ॥१०॥

पञ्चम दशति

(ऋषि—श्यावाश्व, त्रित, अमहीयुः, भृगु, कश्यप निध्रुविः काश्यप, काश्यपोऽसित । देवता—पवमान सोमः । छन्द—गायत्री ।)

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमु ॥१

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥२

पवस्वेन्द वृषा सुत कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥३

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्त त्वा हवामहे ।
पवमान स्वर्दृशम् ॥४

इंदुः पविष्ट चेतन प्रिय· कवीना मतिः ।
सृजदश्वं रथीरिव ॥५

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासा वीरयाशव ॥६

पवस्व देव आयुषगिन्द्र गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥७

पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानर बृहत् ॥८

परि स्वानास इदवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥९

परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धारूर्मावधि श्रिन ।
कारुं बिभ्रत् पूरुस्पृहम् ॥१०॥ (५-२)

हर्षप्रदायक सोम अभिषुत होने पर हमारे हवियुक्त यज्ञ में अन्न और यश के लिये पात्रों मे स्थित होता है ॥१॥ बुद्धि-वर्धक यह सोम जल की लहरो के समान तथा पशुओं के बन मे जाने के समान पात्रों मे जाता है ॥ ॥ हे अभिषुत सोम ! तुम कामनाओं को पूर्ण करने वाले होकर धाराओं सहित पात्र मे स्थित होओ और हमे यश से सम्पन्न करो तथा सब शत्रुओं को नष्ट करो ॥३॥ हे सोम ! तुम अभीष्टवर्धक हो । हे पवमान सोम ! तुम सर्वद्रष्टा को हम यज्ञ मे आहूत करते है ॥४॥ चैतन्यताप्रद, देवप्रिय यह सोम ऋत्विजों की स्तुतियों के सहित पात्रो मे जाता है ॥५॥ बलवान् भाग्यशाली सोम गौओं, अश्वों और पुत्रों की कामना से ऋत्विजो द्वारा शुद्ध होता है ॥६॥ हे दिव्य गुण वाले सोम ! पात्रों मे स्थित होओ और तुम्हारा हर्षकारी रस इन्द्र को प्राप्त हो । तुम रस रूप से वायु को प्राप्त होओ ॥७॥ सोम ने वैश्वानर नामक ज्योति को स्वर्ग के अद्भुत वज्र के समान प्रकट किया ॥८॥ अमृतरूप सोम निचोड़े जाते हुये धारा रूप से देवताओं के हर्ष के लिये छन्ने से नीचे टपकते हैं ॥९॥ मेधावी समुद्र की लहरों में आश्रित, स्पृहणीय स्तोता के धारण करने वाला सोम पात्र मे सिंचित होता है ॥१०॥

—०:—

षष्ठः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि अमहीयु, बृहन्मति, आङ्गिरस, जमदग्नि, प्रभूवसु, मेध्यातिथि निध्रुवि काश्यप, उचथ्य। देवता — पवमानः, सोम,॥ छन्द — गायत्री।)

उपो षु जातमप्तुर गोभिर्भग परिष्कृतम्।
इंदुं देवा अयासिषुः॥१
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणि।
शुम्भन्ति विप्र धातिभिः॥२
आविशन् कलशं सुतो विश्वा अपन्नभि श्रिय।
इदुरिन्द्राय धीयते॥३
असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुत।
कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत्। ४
प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः।
घन्त कृष्णामप त्वचम्॥५
अपघन्न् पवसे मृध ऋतुवित् सोम मत्सर।
नुदस्वादेवयुं जनम्॥६
अया पवस्व धारया यथा सूर्यमरोचयः।
हिन्वानो मानुषीरप॥७

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरप ॥८

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥९

परि द्युक्ष सनद्रयिं भरद्वाजं नो अंधसा ।
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१०॥ (५-३)

भले प्रकार उत्पन्न हुये जलों द्वारा प्रेरित, शत्रुनाशक, गो-घृत आदि से मिश्रित सोम को देवगण प्राप्त होते है ॥१॥ जो दृष्टा सोम शत्रु-सेनाओं पर आक्रमण करता है, उस सोम को शुद्धियों से शोभित करते है ॥२॥ कलश में प्रविष्ट हुआ निष्पन्न सोम सब धनों की वर्षा करता हुआ इन्द्र के निमित्त स्थित होता है ॥३॥ रथ के अश्व को जैसे छोड़ देते हैं, वैसे ही अभिषवण फलकों में अभिषुत सोम छन्ने मे छोड़े जाने पर वेग वाला होकर युद्धों मे आक्रमण करने वाला होता है ॥४॥ प्रकाशयुक्त और गमनशील सोम यज्ञ मे उसी प्रकार जाते हैं जैसे गौएँ गोष्ठ मे जाती हैं ।५॥ हे सोम ! तुम हर्षप्रदायक हो, हिंसक शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो । तुम पात्रों में स्थित रहने वाले होकर देव विरोधी राक्षसों को दूर करो ॥६॥ हे सोम ! मनुष्य हितैषी जलों को प्रेरित करते हुये तुम अपनी जिस धार से सूर्य को प्रकाशित करते हो, उसी धार से पात्र में गमन करो ॥७॥ हे सोम ! तुम जलों के रोकने वाले वृत्र के हननकर्त्ता इन्द्र की रक्षा करो और धारा से कलश को पूर्ण करो ॥८॥ हे सोम ! इन्द्र के सेवनार्थ अपने रस रूप से कलश में स्थित होओ । तुम्हारे रस ने ही युद्धों की निन्यानवे पुरियों को तोड़ डाला था ॥९॥ देय धनों को यह सोम हमें अन्न के सहित प्रदान करे । हे सोम ! तुम छाने जाते हुये कलश मे टपको ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि–मेधातिथि:, भृगु:, उचथ्य, अवत्सार:, निध्रुवि, काश्यप, असित, कश्यपो मारीच:, कवि:, जमदग्नि, अयास्य आङ्गिरस, अमहीयु:, । देवता–पवमान: सोम । छन्द–गायत्री ।)

अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शत ।
स सूर्येण दिद्यते ।।१

आ ते दक्ष मयोभुव वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।२

अध्वर्यो अद्रिभि सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ।।३

तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धस ।
तरत् स मन्दी धावति ।।४

आ पवस्व सहस्रिण रयिं सोम सुवीर्य्यम् ।
अस्मे श्रवासि धारय ।।५

अनु प्रत्नास आयव पद नवं यो अक्रमु. ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ।।६

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदन् योनौ वनेष्वा ।।७

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रत: ।
वृषा धर्माणि दध्रिषे ।।८

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभि: ।
इंदो रुचाभि गा इहि ।।९

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयु ।
अव्या वारेभिरस्मयु ॥१६

अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथा ।
मन्दान इद् वृषायसे ॥११

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्य बृहत् ॥१२

प्र न इन्दो महेतु न ऊर्मि न विभ्रदर्पसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥१३

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्ण ।
यच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥ (५-४)

अभीष्टवर्धक, हरित वर्ण वाला, पूजनीय, सखा के समान और दर्शनीय सोम जो अभिषव काल मे शब्द करता है, वह सूर्य के साथ ही प्रकाशित होता है ।।१।। हे साम हम याज्ञिक तुम्हारे बल की याचना करते हैं । वह बल सुखदायक, धन प्राप्त कराने वाला, रक्षक और अनेकों द्वारा कामना किया गया है ।।२।। हे अध्वर्यो ! पाषाणों द्वारा कूटकर निकाले गये सोम-रस को छन्ने में डालो और इन्द्र के पीने के लिये पवित्र करो ।।३।। निष्पन्न सोम की धार से जो उपासक इन्द्र को हर्ष प्रदान करता है, वह पाप से तरते हुये ऊर्ध्वगति को पाता है ।।४।। हे सोम ! तुम सहस्त्रसख्यक धन की वृष्टि करो और हम में अन्नों को स्थापित करो ।।५।। प्राचीन और गमनशील

सोमों ने नवीन पद का अतिक्रमण किया और दीप्ति के लिये सूर्य के समान तेजस्वी हुआ ॥६॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त तेजस्वी और बारम्बार शब्द करने वाले हो । इस यज्ञ-मण्डप में आगमन करो ॥७॥ हे सोम ! तुम काम्यवर्षक और तेजस्वी हो । हे वर्षण-शील सोम ! तुम कर्मों के धारण करने वाले हो ॥८॥ हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा शोभित हुये तुम अन्न-लाभ के लिये धाराओं सहित स्रवित होओ और अन्न रूप गवादि पशुओं को प्राप्त होओ ॥९॥ हे सोम ! काम्यवर्षक, देवताओं द्वारा इच्छित तुम हमारी रक्षा करो और छन्ने में धारा रूप से टपको ॥१०॥ हे सोम ! इन श्रेष्ठ कर्म द्वारा महान् होते हुये तुम देवताओं के निमित्त वृद्धि को प्राप्त होओ । तुम हर्ष प्रदायक होते हुये, बैल के समान शब्द करते हो ॥११॥ चैतन्यताप्रद शुद्ध, पात्र में स्थित यह सोम जल से उत्पन्न अन्न को देता हुआ जाना जाता है ॥१२॥ हे सोम ! तुम हमारे धन के लिये कलश को प्राप्त होते हो, तुम्हारी तरगों के धारण करने वाला विप्र देव पूजन के निमित्त गमन करता है ॥१३॥ इस सोम ने शत्रुओं को और अदानशीलों को मारा । यह इन्द्र के स्थान को प्राप्त होने वाला सोम धारा रूप में क्षरित होता है ॥१४॥

तृतीय दशति

(ऋषि—भरद्वाजः, कश्यपो, गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रौ, जमदग्निर्वसिष्ठ । देवता—पवमान, सोम. । छन्द—बृहती ।)

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधायोनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१

परीतो षिञ्चता सुत सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अत्स्वान्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्
॥४
सोम उ ष्वाण सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५
तवाह सोम रारण सख्य इंदो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि
॥६
मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशंग बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८
पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ॥९
इंद्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०
पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्म न् देवेभ्य साम मत्सरः ॥११

पव माना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि
प्रयांसि च ॥१२। (५-५)

हे सोम! तुम जलों के अच्छादक हो। धारा रूप से कलश में जाते हो। रत्नादि धन के दाता, यज्ञ स्थान में स्थित होने वाले, दिव्य सोम देवताओं के लिये हितकारी होते हैं ॥१॥ जो सोम देवताओं के लिये उत्तम हवि है, वह मनुष्यो का हितैषी सोम जलों मे जाता है। उस सोम को पाषाणों से कूट कर जलों में सिंचित करो ॥२॥ हे साम! प्रस्तर द्वारा कूटे जाने पर तुम छन्ने को लाँघते हुये कलश में जाते हो। जैसे नगर मे मनुष्य होता है वैसे ही सोम काष्ठ के पात्रों में पहुँचता है ॥३॥ हे सोम! देवताओं के पानार्थ सिन्धु के समान वसतीवरी जलों से वृद्धि को प्राप्त हुये तुम अपने अंशों के सहित मधुर रसयुक्त कलश को प्राप्त होते हो ॥४॥ निचोड़ा जाता हुआ सोम शुद्ध होकर कलश में जाता है। यह सोम हरे वर्ण को धार से आनन्ददायक होता हुआ प्राप्त होता है ॥५॥ हे सोम! मै नित्य-प्रति तुम्हारे सख्य-भाव में रहूँ। जो अनेक राक्षस मेरे कर्म में बाधक होते हैं, उन्हें तुम नष्ट करो ॥६॥ हाथों से भले प्रकार सस्कृत हुये सोम! तुम शब्द करते और अनेकों द्वारा कामना किये गये सुवर्णादि धन स्तोताओ को लाभ कराते हो ॥७॥ हे ज्ञानी, गमनशील, हर्षयुक्त, रस सींचने वाले सोम! तुम अपने रस को कलश के ऊपर सब ओर निकालते हो ॥८॥ हे सोम! तुम चैतन्यतायुक्त, प्रिय और पवित्र होते हुये छन्ने से टपकते हो। तुम पितरों के नेता और बुद्धिवर्द्धक हो तथा हमारे यज्ञ को अपने मधुर रस से सिंचित करते हो ॥९॥ हर्षप्रदायक, संस्कृत सोम मरुत्वान् इन्द्र के लिये कलश में पूर्ण होता और अपनी

धाराओं से छन्ने में टपकता है। ऋत्विज इसका शोधन करते हैं ॥१०॥ हे सोम! तुम सब स्तोत्रों के द्वारा अन्न-लाभ वाले होकर आओ और देवताओं के लिये हर्षप्रद और तृप्तिकारक होते हुये टपको ॥११॥ मरुद्गण सहित इन्द्र की प्रिय स्तुतियों और अन्नों को लक्ष्य करते हुये स्तोता के अन्न-लाभ के निमित्त यह सोम छन्ने से निकलते हैं ॥१२॥

चतुर्थ दशति

(ऋषिः—उशना काव्य, वृषगणो वासिष्ठ, पराशरः, शाक्त्य, वसिष्ठो मैत्रावरुण, प्रतर्दनो देवोदासि., प्रस्कण्व. काण्डव। देवता–पवमानः, सोम। छन्द—त्रिष्टुप्।)

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्व न त्वा वाजिन मर्जयन्तोऽच्छा।
बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीति ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
सोमं यन्ति मतयो वावशाना ॥३

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म-पशुमन्ति होता ॥४

सोमः पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता
पृथिव्याः ।।५
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः
।।५

अभि त्रिपृष्ठं वृषण वयोधामगोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि
।।६

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्म ञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य
गोपाः वृषा पवित्र अधि सानो अव्ये बृहत्
सोमो बावृधे स्वानो अद्रिः ।।७
कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे
पुनान ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः
।।८

एष स्य ते मधुमाँ इंद्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे
अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्
।।९

पवस्व सोम मधुसाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो
अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह
मदिन्तमो मत्सरः इंद्र पानः ।।१०।। (५-६)

हे सोम ! तुम शीघ्र आकर कलश में स्थित होओ। ऋत्विजों द्वारा पवित्र किये जाते हुये तुम इस यजमान को अन्न प्रदान करो। तुम्हें अश्व के समान शुद्ध करते हुये विप्र यज्ञ मे पहुँचाते हैं ।।१।। उशना के समान स्तुति करने वाला इन्द्रादि देवों के प्राकट्य का वर्णन करता है। तेजस्वी व्रती और पापशोधक शब्द करता हुआ पात्रों को भर देता है ।।२।। हविदाता यजमान तीनों वेदों की वाणियों का उच्चारण करता है और सोम की सत्य कल्याण वाली स्तुति कहता है। अभीष्ट की याचना वाले स्तोता सोम की स्तुति के लिये गमन करते हैं ।।३।। सुवर्ण द्वारा पवित्र किया जाता सोम अपने रस को देवताओं में मिलाता है। यह अभिषुत सोम शब्द करता हुआ छन्ने में जाता है, जैसे होता पशुओं से भरे गोष्ठ मे जाता है ।।४।। बुद्धियो के प्रकट करने वाला, स्वर्ग, पृथिवी, अग्नि, आदित्य और इन्द्र को प्रकट करने वाला विष्णु को भी बुलाने वाला सोम कलश में स्थित है ।।५।। तीनों सवन वाले, काम्यवर्षक, अन्नदाता, शब्दवान् सोम की कामना वाणी करती है। यह जलों में बसा हुआ प्रवाहमान सोम स्तोताओं को वरुण के समान धन प्रदान करता है ।६।। जलवर्षक, यज्ञपालक, काम्यवर्षक, सस्कृत सोम जलधारक अन्तरिक्ष में प्रजाओं को प्रकट करता हुआ सबको लाँघ जाता है ।।७।। सब ओर से परिस्रुत हरित सोम शब्द करता हुआ शोधा जाता और द्रोण कलश में पहुँचता है। यह अपने को दुग्धादि मिश्रित करता हुआ यज्ञ में जाता है। स्तोता इस सोम के लिये हवियुक्त स्तोत्र करे ।।८।। हे काम्यवर्षक इन्द्र ! यह मधुर सोम तुम्हारे लिये सींचने वाला होता हुआ छन्ने से टपकता है। यह हजारों, सैकड़ों धनों के स्वामी धनों के देने वाला अत्यन्त प्राचीन यज्ञ मे विद्यमान हुआ ।।९।। हे सोम ! तुम माधुर्यमय हो। वसतीवरी

जलों को आच्छादित करते हुये छन्ने से गिरते हो। फिर अत्यन्त हर्षप्रदायक होकर द्रोण कलश मे स्थित होते हो ॥१०॥

पञ्चम दशति

(ऋषि—प्रतर्दन, पराशरः, शाक्त्यः, इन्द्रप्रमितिर्वासिष्टः, वसिष्टो मैत्रावरुणः, मृडीको वासिष्टः, नोधा गौतम, कण्वो घौर, मन्युर्वासिष्ट कुत्स आङ्गिरसः, कश्यपो मारीच, प्रस्कण्व. काण्वः ॥ देवता—पवमान सोमः ॥ छन्द—त्रिष्टुप् ।)

प्र सेनानीः शूरो अग्ने रथानां गव्यन्नति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमासीदतु कलशं देव इंदुः ॥३

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
इंद्रं गच्छन्नायुधा सशिशानो विश्वा वसुहस्तयोरादधानः ॥४

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इंदुम् ॥५

साकमुक्षो मजयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजो ॥६

अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभ. स्पर्धन्ते धिय. सूरे न विश· ॥७

अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इंद्रे सोम. सहः इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो वाधते पर्यराति वरिवस्कृण्वन्
वृ जनस्य राजा ॥८

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इदो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य व तो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९

महत् तत् सोमो महिषश्चकारापा यद्गर्भोऽवृणोत देवान्
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०

असर्जि वक्वा रथ्ये यथा नौधिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वस रो अधि मानो अव्ये मृजन्ति वह्नि सदनेष्वच्छ ॥११

अपामिवेदूर्मयस्ततु राणा· प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम ॥१२॥ (५-७)

सेनाओं से अग्रगन्ता, शत्रुओं को बाधक सोम, गौ आदि की कामना करता हुआ रथों के आगे चलता है। इस सोम से युक्त सेना हर्षित होती है। यह सोम इन्द्र के आह्वानों का मङ्गलमय करता हुआ इन्द्र के आगमन के लिये दुग्ध आदि को ग्रहण करता है ॥१॥ हे सोम ! तुम्हारी मधुमयी धारायें हर्षयुक्त होती हैं। वसतीवरा जलों में जब तुम शुद्ध होते हो और छन्ने से निकलते हो तब गो-दुग्ध को देखकर त्वरित होते हो। फिर प्रसिद्ध होकर सूर्य को अपने तेज से पूर्ण करते हो ॥२॥ हे स्तोताओं ! सोम की भले प्रकार स्तुति करो। हम देवताओं की पूजा करते है। सोम का अभिषव करो। वह सोम छन्ने से क्षरित होकर द्रोण कलश में स्थित हो ॥३॥ अध्वर्युओं से प्रेरित, द्यावा पृथिवी का प्रकट करने वाला, अन्न देता हुआ तथा आयुधों को तीक्ष्ण करता हुआ सोम हमें देने के लिये हाथों में धन ग्रहण करता हुआ प्राप्त होता है ॥४॥ स्तोता की वाणी जिसे संस्कृत करती है तब यज्ञ में देवताओं को हर्ष देने वाले सबके पोषक, कलश स्थित सोम की कामना करती हुई गौयें अपने दुग्ध को मिश्रित करती हैं ॥५॥ कर्म करती हुई अँगुलियाँ सोम का अभिषव करती हैं, तब वह हरित सोम सब दिशाओं में जाता हुआ अश्व के समान वेग से कलश में स्थित होता है ॥६॥ सूर्य में जिस प्रकार रश्मियाँ उदित होती है, वैसे ही सोम का संस्कार करने वाली दसों अँगुलियाँ उपस्थित होती हैं। तब वह जलों को ढकता हुआ सोम स्तोताओं की कामना करता हुआ गो पालक के गोष्ठ में जाने के समान कलश में जाता है ॥७॥ क्षरणशील, गमनशील, बलवान् इस इन्द्र के निमित्त प्रेरित होता है। वह यजमान को धन-लाभ कराने वाला राजा सो इन्द्र को शक्ति को देने के लिये स्रवित होता है। वही राक्षसों को नष्ट

करता और शत्रुओं को रोकता है ॥८॥ हे सोम ! धनयुक्त धारा के सहित सिंचित होओ। तुम वसतीवरी जलों में मिलकर कलश में जाओ। तब आदित्य और वायु के समान प्रेरक वेग को धारण कर इन्द्र को प्राप्त होओ ॥९॥ महान् सोम ने बहुत से कर्म किये हैं। जलों गर्भरूप इस सोम ने देवताओं का यजन किया और इन्द्र में सोमपान से उत्पन्न बल को धारण किया। इसी सोम ने सूर्य मे तेज की स्थापना की ॥१०॥ जिस सोम में देवताओं के मन रमे हैं, वह शब्द करने वाला सोम यज्ञ मे स्तुति के साथ अश्व के समान योजित किया गया। दश अँगुलियाँ सोम को उच्च स्थान रूप छन्ने में प्रेरित करती है ॥११॥ जल की शीघ्रकर्मा तरंगों के समान कर्म में शीघ्रता करने वाले ऋत्विज् स्तुतियों को सोम के प्रति प्रेरित करते हैं। नमस्कारयुक्त स्तुतियाँ उस सोम को देवताओं के निकट पहुँचती हुई प्रविष्ट होती है ॥१२॥

— • —

(द्वितीयोऽर्ध)

प्रथम दशति

(ऋषि – आन्धीगु, श्यावाश्वि, नहुषो, मानवः, ययातिर्नाहुष मनु सांवरण, ऋजिश्वाम्बरीषौ, रभसूनू काश्यपौ, प्रजापतिर्वाच्यो वा। देवता—पवमान सोम। छन्द—अनुष्टुप, बृहती।)

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥१

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदा ।
सोमा पवन्त इंदवोऽस्मभ्य गातुवित्तमा ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्य स्वर्विद ॥४
अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इंदो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥५
अभी नवन्ते अद्रुह प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्स न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥६
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौस्यम् ।
शुक्रा वि यन्त्यपुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुव. ॥७
परि त्य हर्यत हरि वभ्रुपुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वा इत् परि मदेन सह गच्छति ॥८
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मख न भृगवः ॥९॥ (५-८)

हे मित्रो ! सोम के अभिषुत रस की रक्षा के लिये लम्बी जीभ वाले श्वान को दूर करो ॥१॥ यह सेवनीय सोम छन्ने मे शुद्ध होकर कलश मे जाता हुआ सब प्राणियों का पोषक होता है और अपने तेज से द्यावा पृथिवी को प्रकाशित करता है ॥२॥ मधुमय, हर्षप्रदायक, निष्पन्न सोम छन्ने मे होता हुआ पात्र में टपकता है । हे सोम ! तुम्हारे हर्षकारी रस देवताओं के पास पहुँचे ॥३। श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञाता, देवताओं के मित्र, पाप रहित सोम तेजस्वी हुये आगमन करते हैं ॥४॥ हे सोम ! सैकड़ों द्वारा

कामना करने योग्य सहस्रों का भरण करने वाले, अन्न यश वाले, तेजस्वी और बलदाता अपत्य हमें प्राप्त कराओ ।।३।। गौऐं जैसे बछड़ों को चाहती हैं, वैसे ही बसतीवरी जल इन्द्र के प्रिय सोम से मिलते हैं ।।६।। सबके द्वारा कामना किये गये, शत्रु-तिरस्कारक सोम के लिये प्रत्यऋचा के समान फैले हुये छन्ने को अध्वर्यु गण आच्छादित करते हैं ।।७।। सबके स्पृहणीय हरित सोम को छन्ने मे छानते हैं। वह साम इन्द्रादि देवताओं को अपनी हर्षकारी धाराओं सहित प्राप्त होता है ।।८।। सोम के शब्द को कर्म में बाधा देने वाला न सुनें। हे स्तोताओ ! पूर्वकाल में जैसे दक्षिणारहित मख को भृगुओं ने दूर किया था, वैसे ही श्वान को दूर हटाओ ।९।।

द्वितीय दशति

(ऋषि—कविर्भार्गव, ऋषिगण, रेणुर्वैश्वामित्र, वेनो भार्गव, वसुर्भारद्वाज, वत्सप्री, अत्रिभौमः पवित्र आङ्गिरसः। देवता—पवमान, साम। छन्द—जगती।)

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधियेषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः ।।१

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद् देवेषु हरय. ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोर्यो
न. सन्तु सनिषंतु नो धियः ।।२

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।

अभ्यृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा ।
अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥३
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा
सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः
कलशे शतयामना पथा ॥४
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षा
देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा
पाजांसि कृणुषे नद प्वा ॥५
वृषा मनीना पवते विचक्षणः सोमो अह्ना
प्रतरीतोष्सां दिवः ।
प्राणा सिन्धूना कलशाँ आचक्रद दन्द्रस्य
हार्द्यविशन्मनीषिभि. ॥६
त्रिरस्मै सप्त धनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिज चारूणि चक्रयहतैरवर्धत॥७
इंद्राय साम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो
द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥८
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी
राजेव दस्मो अभिगा अचिक्रदत् ।

पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनि
घृतवन्तमासदत् ॥९
प्र देवमच्छा मधुमन्न इंदवोऽसिष्यदन्त गाव
आ न धेनव ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः
परिस्रुतमुस्त्रिया निर्णिजं धिरे ॥१०
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयंतमुक्षणं
हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥११
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि
विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
श्रृतास इद् वहन्तः सं तदाशत ॥१२॥ (५-९)

भक्षण योग्य हितकारी सोम ससार को तृप्त करने वाले जलों को प्राप्त होता है। फिर यह वृद्धि को प्राप्त हुआ सोम, सूर्य के विचरण करने वाले रथ पर विश्वद्रष्टा होकर आरूढ़ होता है ॥१॥ अप्रेरित, पापनाशक, सिद्ध सोम देवताओ वाले यज्ञ मे आवें। अदानशील शत्रु अन्न की इच्छा करके भी भोजन प्राप्त न करें। हमारे स्तोत्र देवताओं को प्राप्त हों।।२॥ इन्द्र के वज्र के समान यह बीजवपनकर्त्ता सोम द्रोण कलश में जाता हुआ शब्द करता है। इसकी फल-वृष्टि करने वाली जलमयी धारायें दुधारु गौओं के समान शब्द करती हुई प्राप्त होती हैं ॥३॥ यह सोम इन्द्र के उदर में जाकर उन्हें सुखी करता है।

वह वसतीवरी जलों से मिलकर छन्ने से छनता हुआ द्रोण कलश में जाता है।४॥ सबका धारक, शोधनीय, बलदाता, हरे वर्ण का स्तुत्य सोम छन्ने मे आता और सप्त प्राणियों द्वारा सिद्ध किया जाता है। वह बिना यत्न ही अश्व के समान वसतीवरी जलों मे अपने वेग को करता है॥ ॥ काम्यवर्षक, द्रष्टा, दिन, उषा और आदित्य की वृद्धि करने वाला सस्कारित सोम स्तुतियों द्वारा प्रेरित होकर हृदय मे प्रवेश करने की इच्छा से कलशो में जाता हुआ शब्द करता है ॥६॥ यज्ञ में स्थित सोम के लिये इक्कीस गौऐ दुही जाकर दुग्ध-पात्रों को भरती है तब यह सोम यज्ञो द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता हुआ वतसीवरी जलों के शोधन हेतु मगलरूप हो जाता है ॥७॥ हे सोम ! तुम प्रसिद्ध हाकर इन्द्र के लिये रस सींचो। रोग और राक्षस को दूर करो, वे तुम्हारे रस-पान का आनन्द प्राप्त न करें। इस यज्ञ में तुम्हारे रस हमारे निमित्त धन से सम्पन्न हों ॥८॥ काम्यवर्षक हरित सोम सिद्ध होकर राजा के समान तेजस्वी होता है। वह रस निकलने के समय शब्द करता हुआ पवित्र होता है तथा छन्ने से टपकता है। फिर श्येन के समान अपने स्थान को प्राप्त होता है।.९॥ मधु-मय सोम देवताओं के लिये पात्र में जाता है। गौऐं जैसे अपने बछड़ों को देखकर दूध टपकाती हैं, वैसे ही यज्ञ में रँभाती हुई गौऐं सब ओर से टपकने वाले सोम को इन्द्र के लिये धारण करती हैं ॥१०॥ ऋत्विज् सोम को दुग्ध से मिश्रित करते हैं। देवगण इस भले प्रकार मिलाये हुये सोम का आस्वादन करते हैं। वह सोम गो घृत से मिलाया जाता है। वही सोम जल के आधार-भूत अन्तरिक्ष में उठाया जाकर सुवर्ण से पवित्र किया जाता हुआ ग्रहणीय होता है ॥११॥ हे ब्रह्मणस्पते ! हे सोम ! तुम्हारा अंग सर्वत्र फैला है। तुम पान करने वालों के देह में व्याप्त होते

हो। व्रत आदि से जिसका देह तेजस्वी नही हुआ है वह सोम-पान मे समर्थ नहीं होता। परिपक्व देह वाला तेजस्वी ही इसमे समर्थ है ॥१०॥

तृतीय दशति

ऋषि—अग्निश्चाक्षुषः, चक्षुर्मानवः, पर्वतनारदौः त्रित आप्त्यः, मनुराप्सवः, द्वित आप्त्य। देवता—इन्द्र।
छन्द—उष्णिक्॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
श्रुष्टे जातास इंदवः स्वर्विदः ॥1

प्र धंवा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परिस्रव।
द्युमंतं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२

सखाय आ नि षीदत पुनामाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।
शिशु न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥४

प्राणा शिशुमहीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥५

पवस्व देववीतय इदो धाराभिरोजसा।
आ कलशं गधुमंत्सोम नः सदः ॥६

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति।
अग्र वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥७

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते।
भृति न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥८

गोमन्न इदो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥९

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥१०

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११

परि कोश मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत ॥१२॥ (५-१०)

शीघ्र सुसस्कृत पात्रो मे स्रवित होते हुये सर्वज्ञ हरित वर्ण के यह सोम काम्यवर्षक इन्द्र को प्राप्त हों ॥१॥ हे साम ! इस पात्र मे आओ । इन्द्र के निमित्त सब ओर से सिंचित हाओ । शत्रुओं का शोषण करने वाले स्वर्ग प्रापक बल को हमे प्रदान करो ॥२॥ हे सखाओं ! स्तुति के लिये तत्पर होओ । शोधे जाते हुये सोम के प्रति साम गाओ । पिता जैसे अपने बालक को अलंकारों से सुशोभित करता है, वैसे ही सोम को समृद्धि के निमित्त विभूषित करो ॥३॥ हे मित्रो ! तुम देवताओं के हर्ष के लिये सोम की स्तुति करो । हवियों को स्तुतियों से सुस्वादु बनाओ ॥४॥ यज्ञ को सम्पन्न करने वाला पूज्य जलों वाला सोम यज्ञ को व्यक्त करने वाले रस को प्रेरित करता हुआ, सब हवियों को व्याप्त करता हुआ, स्वर्ग और पृथिवी पर स्थित होता है ॥५॥ हे सोम ! देवताओं के सेवन के लिये बल के साथ पात्र में पहुँचो और रस-युक्त होकर द्रोण कलश में स्थित होओ ॥६॥ पवित्र स्तोत्र के आगे बारम्बार शब्द करने वाला सोम अपनी धारा से छन्ने में जाता है ॥७॥ छन्ने में छनते हुये स्तुति करो । इन स्तुतियों से प्रसन्न होने

वाले के लिये अधिकता से स्तुति करो ।।८।। हे सोम ! तुम संस्कृत होकर गौओं और अश्वों सहित धन प्रदान करो। फिर मैं तुम्हारे पवित्र रस को गोरस में मिश्रित होने पर अधिक प्राप्त करूँ ।।९।। हे सोम ! तुम धन देने वाले हो। हमारी वाणियाँ धन-लाभ के निमित्त तुम्हारी स्तुति करती हैं तथा हम तुम्हारे रस को गौ-दुग्ध आदि में आच्छादन करते हैं ।।१०।। हरे वर्ण का सोम छन्ने से निकलता है। हे सोम ! तुम स्तोताओं को अपत्ययुक्त यश प्रदान करो ।।११।। वह संस्कृत होता हुआ सोम अपने मधुर रस को कलश में पहुँचाता है। इस सोम का, ऋषियों की सत्य वाणियाँ स्तव करती हैं ।।१२।।

चतुर्थः दशति

(ऋषि—गौरवीतिः शाक्त्यः, ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, ऋजिश्वा भारद्वाजः, कृतयशा आङ्गिरसः ऋणञ्चयः, शक्तिर्वासिष्ठ, उरुरागिरसः देवता—पवमानः सोमः। छन्द—उष्णिक्ः, गायत्री, प्रगाथः।)

पवस्व मधु मत्तम इंद्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः।
महि द्युक्षतमो मदः ॥१

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
वि को शं मध्यमं युव ॥२

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
वनप्रक्षमुदतम् ॥३

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम्।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम्।

स सुन्वे यो वसूनां रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥५

त्वं ह्यांग दैव्यं पवमान जनिमानिः द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥६

ए ष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः नवते मदिन्तमः ।
क्रोलन्नूर्मिरुपामिव ॥७

य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं
वर्मीव धृष्णवा रुज ॥८॥ (५-११)

हे सोम ! अत्यन्त मधुर, कर्म वाले, पूज्य और हर्षप्रद तुम इन्द्र के हर्ष करने वाले होओ ॥१॥ हे सोम ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हमें बहुत-सा अन्न प्रदान करो और अन्तरिक्ष स्थित मेध को वृष्टि के लिये खोलो ॥२॥ हे ऋत्विजों ! अश्व के समान वेगवान्, स्तुत्य, जलों के प्रेरक, तेजप्रेरक, पात्रों में फैले हुये सोम का अभिषव करते हुये वसतीवरी जलों से सिंचित करो ॥३। देवताओं की कामना वाले ऋत्विजों ने शक्तिप्रदायक सहस्र धार वाले, धन-धारक सोम का दोहन किया ॥४॥ जो धनों का, गौओं का, भूमियों का और मनुष्यों का लाने वाला है, वह सोम ऋत्विजों द्वारा अभिषुत हुआ है ॥५॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त दीप्तियुक्त देवताओं को जानते हो उनके अमृतत्व के लिये शब्द उत्पन्न करते हो ॥६॥ अत्यन्त आनन्ददायक इधर-उधर जाता हुआ अभिषुत सोम छन्ने से धाररूप में कलश में टपकता है ॥७॥ यह सोम अन्तरिक्ष में मेघों के भीतर असुरों के रोके हुये प्रवाहमान जलों को अपने बल से छिन्न-भिन्न करता है । असुरो द्वारा चुराई

हुई गौओं और अश्वों को यह सोम सब ओर से व्याप्त करता है। हे साम ! इन राक्षसों का नाश करो ॥८॥

—:०:—

(तृतीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—भरद्वाज., वसिष्ठ', वामदेवः, शुनः शेपः, गृत्समदः, अमहीयुः, आत्मा। देवता—इन्द्रः, वरुणः, पवमानः, सोम., विश्वेदेवाः अन्नम्। छन्द—बृहतीः, त्रिष्टुप्ः, गायत्री, जगती।)

इन्द्र ज्येण्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः।
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१

इंद्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक।२

यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः।
इंद्रस्य रन्त्यं वृषत् ॥३

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथादित्य व्रते वयं तवानःगसो अदितये स्याम ॥४

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः
पृथिवी उत द्यौः ॥५
इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥६
स न इंद्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित् परिस्रव ॥७
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥८
अहिमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९॥
(६-१)

हे वज्रहस्त, श्रेष्ठ ठोड़ी वाले इन्द्र! जिस अन्न की हम कामना करते हैं, जिसे द्यावापृथिवी पूर्ण करती है, उस अत्यन्त बलप्रद प्रशंसनीय और तृप्तिकारक अन्न को हमें प्रदान करो ।।२।। जो इन्द्र सब प्राणियों के ईश्वर और सब प्रकार के पार्थिव धनों के स्वामी हैं, वह दानशील यजमान को सब प्रकार के धन को प्रदान करते हैं। वही इन्द्र हमारी ओर सब प्रकार के धनों को प्रेरित करें ।।२।। जिन तेजस्वी इन्द्र की हवि स्तोत्र वाली है, वह इन्द्र दानशील यजमान के निमित्त स्वर्ग में कामना के योग्य हैं, अतः इन्द्र का दान अत्यन्त श्रेष्ठ और अपरिमित है ।।३।। हे वरुण! शिर में बँधे पाश को ऊपर की ओर, पांवों में बँधे पाश को नीचे की ओर और मध्यम पाश को अलग करके ढीली करो। फिर हम तुम्हारे कर्म के कारण दुःखरहित और अपराध-

रहित हों ॥४॥ हे सोम ! छन्ने से छनते हुये तुम रणक्षेत्र में भी सहायक हो । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और स्वर्ग हमें धन आदि से प्रवृद्ध करें ॥५॥ हे देवगण ! इस एकमात्र विशिष्ट गुण वाले सोम को अभीष्टवर्धक करो और मुझे फलवर्षक क्रिया वाला बनाओ ॥६॥ हे सोम ! तुम हमें धन प्राप्त कराने वाले हो । हमारे पूज्य इन्द्र, वरुण और मरुद्गण के लिये धार सहित क्षरित होओ ॥७॥ इस सोम के द्वारा सब अन्नों को पाकर हम उचित प्रकार से बांटते हैं ॥८॥ मैं अन्न देवता अन्य देवताओं से तथा सत्य रूप ब्रह्म से भी पूर्व जन्मा हूँ । जो मुझ अन्न को अतिथियों को देता है, वही सब प्राणियों की रक्षा करता है । जो लोभी दूसरों को नहीं खिलाता, मैं अन्न देवता उस लोभी का स्वयं भक्षण कर लेता हूँ ॥९॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—श्रुतकक्षः, पवित्रः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, प्रथः गृत्समदः, नृमेधपुरुमेधौ । देवता—इन्द्रः, पवमानः, विश्वेदेवाः, वायुः । छन्द—गायत्री, जगतीः, त्रिष्टुपः, अनुष्टुप् ।)

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।
परुष्णीषु रुशत् पयः ॥१

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो
गर्भमादधुः ॥२

इंद्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इंद्रो वज्री हिरण्ययः ॥३

इंद्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषुच ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४

प्रथश्च यस्य सप्रथश्चनामानुष्टुभस्य हविषाः हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा
वसिष्ठः ॥५

नियुत्वान् वायवा गह्ययं शक्रो अयायि ते ।
गंतासि सुवन्तो गृहम् ॥६

यज्जायथा अपूर्थ मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥७॥ (६-२)

हे इन्द्र ! काले, लाल तथा विचित्र रंग वाली गौओं में चमकते हुये श्वेत दूध को तुमने स्थित किया है। यह तुम्हारा सामर्थ्य ही है ॥१। उषा और आदित्य में सम्बन्धित सोम स्वयं प्रकाशित होता है और वृष्टिकारक मेघरूप से बल और अन्नदान की इच्छा से शब्द करता है। देवताओं ने अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से इसे उत्पन्न किया है ॥२॥ इन्द्र ही रथ में योजित हर्यश्वों को एकत्र करने वाले, वज्रधारी और सुवर्ण-भूषणों से सुशोभित रहते हैं। ३॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बलवान् होने के कारण किसी का प्रभुत्व नहीं मानते। हमको अपनी श्रेष्ठ रक्षाओं से सहस्रों धन-लाभ वाले संग्रामों में रक्षित करो ॥४॥ वसिष्ठ पुत्र प्रथ और भारद्वाज-पुत्र सप्रथ हैं। मुझ वसिष्ठ ने अनुष्टुप् छन्द युक्त हवि को और रथन्तर साम को धाता देवता से और तेजस्वी विष्णु से प्राप्त किया ॥५॥ हे वायो ! तुम अपने वाहनों पर चढ़कर आगमन करो। यह सोम तुम्हारे लिये ग्रहण

किया है क्योंकि तुम सोमाभिषवकर्त्ता यजमान के पास जाते हो ।।६।। अपूर्व और धनयुक्त इन्द्र ! जब तुम वृत्र हनन के लिये प्रकट हुये, तब तुमने पृथिवी को दृढ़ किया और स्वर्ग को भी स्थिर किया ।।७।।

तृतीय दशति

(ऋषि–वामदेवः, गौतम , मधुच्छन्दाः, गृत्समद , भरद्वाजोः,
वार्हस्पत्यः, हिरण्यस्तूप , विश्वामित्र., देवता–प्रजापतिः,
पवमानः, सोमः, अग्निः, रात्रिः, बैश्वानरः विश्वेदेवाः,
लिङ्गोताः, इन्द्रः, आत्मा । छन्द–अनुष्टुप्.,
त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, पक्ति ।)

मयि वर्च्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।

परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव द्दंहतु ।।१

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि
धिष्व ।।२

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमातनोरुर्वान्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।।५

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।४

ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविभुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५
समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥६
आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्संति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥७
प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विवथा जातवेदते वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते
चारुरग्नये ॥८
विश्वे देवा मम श्रृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च
मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा
मदेम ॥९
यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रति मुच्यताम् ।
यशस्व्यास्या संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१०॥
इंद्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥११
अग्निरस्मि जंमना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि
सर्वम् ॥१२

पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्य्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति
देवाननमुपमादमृष्वः ॥१३॥ (६-३)

परमेष्ठी स्वर्ग के तेज के समान मेरे शरीर में ब्रह्म तेज वृद्धि करें और यज्ञ सम्बन्धी हवि को बढ़ावें ॥१॥ हे शत्रु-नाशक सोम! तुम्हें दुग्ध और हविरन्न प्राप्त हों। तुम अपने अमरत्व के लिये बढ़ते हुये स्वर्ग में हमारे सेवनीय अन्नों को धारण करते हो ॥२॥ हे सोम! तुमने पृथिवी पर स्थिर सब औषधियाँ उत्पन्न की। तुमने वृष्टिजल और गवादि पशुओं को उत्पन्न किया। तुमने अन्तरिक्ष को विस्तृत कर अपनी ज्योति से अन्धकार को भी नष्ट कर डाला है ॥३॥ यज्ञ के पुरोहित सज्ञक होता और रत्नो के धारण करने वाले अग्नि की मै स्तुति करता हूँ ॥४॥ हे अग्ने! तुम्हारे स्तोता आंगरसों ने स्तुति साधक शब्दों को वाणी में जाना और इक्कीस स्तोत्र रूप छन्दों को भी जाना। उन स्तुतियों को जानती हुई प्रजा ने उषाकाल मे स्तुति की तब यश की वाणियाँ उत्पन्न हुई ॥५॥ वृष्टिजल पृथिवी में गिरते हैं और भूमि के जल में मिल जाते है तब वह जल नदी रूप होकर समुद्र में स्थित बड़वानल को तृप्त करते हैं। जलों के पौत्र अनल के निकट सभी शुद्ध जल प्राप्त होते हैं ॥६॥ कल्याण-मयो रात्रि सम्मुख आ रही है वह चन्द्रमा की रश्मियो के साथ भले प्रकार सम्बन्ध स्थापित करती हुई विश्व को शयन कराने वाली होती है ॥७॥ हे वैश्वानर! तुम्हारा तेज अभीष्टवर्धक,

हविरन्न वाला और दीप्तिमान है । मैं उस तेज की स्तुति करता हूँ । इन सर्वज्ञाता अग्नि के लिये स्तोताओं को पवित्र करने वाली मङ्गलमयी स्तुति सोम के समान निकलती है ।।८।। सभी देवता मेरे यज्ञ को स्वीकार करें । अपान्नपात् अग्नि और द्यावा-पृथिवी मेरे स्तोत्र पर ध्यान दें । हे देवताओं ! मै त्याज्य वचनों को नहीं कहता हूँ, श्रेष्ठ स्तोत्र का ही उच्चारण करता हू । अतः हम तुम्हारे प्रदत्त कल्याण में ही आनन्द पावें ।।६।। हे देव ! मुझ स्तोता को द्यावापृथिवी का यश प्राप्त हो । इन्द्र, बृहस्पति और आदित्य सम्बन्धी यश को भी मैं प्राप्त करूँ । मै इस यश से हीन न होऊँ । मैं सदा श्रेष्ठतापूर्वक बोलने वाला बनूँ ।।१०।। मै इन्द्र के महान् पराक्रमो को कहता हूँ । उन्होंने मेघ को विदीर्ण कर जलों को गिराया और पर्वतों से बहने वाली नदियों के तटों को बनाया ।।११।। मै अग्नि जन्म से ही सर्वज्ञाता हूँ । घृत मेरा चक्षु है और अमृत रूप से मेरे मुख मे है । मैं विश्व का रचयिता प्राण हूँ । मै तीन रूप से स्थित हूँ और अन्तरिक्ष का स्वामी हूँ । आदित्य भी मै हूँ । अग्नि मै हूँ और हव्यवाहक भी मै हूँ । जन्म लेते ही ज्ञानी हूँ ।।१२।। अग्नि पृथिवी के मुख स्थान की रक्षा करते हैं । सूर्य के मार्ग अन्तरिक्ष की भी रक्षा करते हैं । मरुद्गण और यज्ञ की भी अग्नि रक्षा करते है ।।१३।।

चतुर्थ दशति

(ऋषि—वामदेवः, नारायणः । देवता—अग्निः, ऋतुः, पुरुषः, द्यावापृथिवीः, इन्द्रः, आत्मन आशीः, गौः । छन्द—पंक्तिः अनुष्टुप्ः, त्रिष्टुप् ।)

भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयि वर्च्चो दृशेऽदाः ।।१

सहस्तन्न इंद्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु
शत्रून्त्सहना कृधो नः ॥११
सहर्षभाः सहवत्सा इदेत विश्व रूपाणि बिभ्रती-
द्व्यूघ्नीः ।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः
सुप्रपाणा इह स्त ॥१२॥ (६-४)

हे अग्ने ! तुम्हारी जिह्वा रूप ज्वालाऐं हवि-भक्षण करती हैं। हे धन-प्रापक अग्ने ! तुम हमे अन्न सहित उपभोग्य धन और तेज प्रदान करो ॥१॥ वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, वर्षा शरद, हेमन्त और शिशिर सभी ऋतुऐं रमणीय होती हैं ॥२॥ विराट् पुरुष सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र और सहस्रो चरणों वाले हैं। वह पृथ्वी को सब ओर से लपेट कर दशांगुल रूप हृदय मे स्थित हैं ॥३॥ वही त्रिपाद पुरुष संसार के गुण-दोषों से पृथक् रहता हुआ अपने एक पद को बारम्बार प्रकट करता है। फिर वह अनेक रूप से व्याप्त होकर ससार में रम जाता है ॥४॥ यह विश्व पुरुष ही है। उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होने वाला जगत पुरुष ही है। सब प्राणी इस पुरुष के चतुर्थांश हैं। इसके तीन पाद अविनाशी और प्रकाश रूप में स्थित हैं ॥५॥ इस पुरुष का सामर्थ्य ही ससार का आधार है। वह स्वयं उस महिमा से भी महान् है जिससे यह सब देवत्व का ईश्वर हुआ है। क्योंकि वह प्राणियों के कर्म-फल-भोग के निमित्त कारणावस्था का अति-क्रमण कर प्रत्यक्ष विश्व के रूप मे हुआ है ॥६॥ उस आदि

पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई । उससे देहाभिमानी देवता रूप जीव उत्पन्न हुआ । वही विराट् पुरुष देहधारी रूप से प्रकट हुआ । फिर पृथ्वी और प्राणियों के देह की सृष्टि हुई ।।७।। हे द्यावापृथिवी ! तुम पालन करने वाले को मैं जानता हूँ । तुम सब ओर से अपरिमित धन आदि की वृद्धि करो । हमारे लिये कल्याण रूप होकर हमें पापों से मुक्त करो ।।८।। हे इन्द्र ! तुम्हारी मूँछें हरे वर्ण की हैं। तुम्हारे अश्वों का भी हरा रग है। मेधावी-न तुम्हारी भले प्रकार स्तुति करते हैं ।।९।। जो तेज सुवर्ण में है, जो तेज गौओं में सत्यस्वरूप ब्रह्म में है, हम उसी तेज से सम्पन्न होने की कामना करते हैं ।।१०।। हे इन्द्र ! हमें उन शत्रुओं का नाश करने वाला ओज प्रदान करो । क्योंकि तुम महान् बल के स्वामी हो। हमारे लिये सत्य के समान धन और बल देते हुये हमारे शत्रुओं को हमे हानि पहुँचाने वाले कार्यों में असफल करो ।।११।। हे गौओ ! तुम सब रूपों वाली होकर वृषभों और बछड़ों सहित प्रातः-सायंकाल में वृद्धि को प्राप्त होओ । यह लोक तुम्हारे वास योग्य हो और जल तुम्हारे पीने योग्य हो ।।१२।।

पञ्चम दशति

(ऋषि—शत वैखानसाः, विभ्राट् सौर्य; कुत्सः, सार्पराज्ञीः, प्रस्कण्वः काण्वः । देवता—अग्निः । पवमानः सूर्यः । छन्द—गायत्री, जगती, त्रिष्टुप् ।)

अग्न आयूंषियिवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।।१

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रु-
तम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजा पिपर्त्ति
बहुधा वि राजति ॥२
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च ॥३
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥६
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥७
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥९

प्रत्यंग देवानां विशः प्रत्यङ्ङु देषि मानुषान् ।

प्रत्यंग विश्वं स्वर्दृशे ॥१०

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्त जनां अनु

त्वं वरुण पश्यसि ॥११

उद् द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।

प्रश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ।।१३

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य

णोचिष्केशं विचक्षण ॥१४॥ (६=५)

हे अग्ने ! तुम हमारे अन्नों की वृद्धि करते हो । अतः हमारे लिये अन्न-बल प्रेरित करो । श्वास के समान दुष्ट स्वभाव वाले राक्षसों को हमसे दूर करो ।।१।। अत्यन्त तेजस्वी सूर्य ने यजमान में बाधा रहित अन्न की स्थापना की । वह सूर्य सोमयुक्त मधु पान करें । सूर्य ही वायु द्वारा प्रेरित होकर अपनी रश्मियों से संसार का स्पर्श करते है और वर्षा आदि से प्रजाओं को पुष्ट करते हैं ।।२।। देवताओं का तेज, मित्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं के चक्षुरूप सूर्य उदयाचल में पहुँचे । उन्होंने द्यावा-

पृथिवी और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया। वही स्थावर-जगम के जीवात्मा हैं। ३। गमनशील यह सूर्य उदयाचल का अतिक्रमण कर पूर्व में सब प्राणियों की माता पृथिवी को, पिता स्वर्ग को और अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है ॥४॥ इन सूर्य की दीप्ति वायु को ऊपर ले जाकर अधोमुख करती हुई शरीर में प्राणरूप से रहती है। ऐसे तेज वाला सूर्य अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है ॥५॥ दिन की तीस घड़ी तक सूर्य रश्मियों से दीप्त होता है, तब वेदवाणी सूर्य के निमित्त सब मुखो में धारण की जाती है ॥६॥

सबके प्रकाशक सूर्य के उदित होने पर तारागण रात्रियों के सहित चोरों के समान छुप जाते हैं ॥७॥ अग्निया के समान दीप्ति वाले सूर्य को दिखाने वाली रश्मियाँ सब प्राणियों को क्रमपूर्वक देखती हैं ॥८॥ हे सूर्य! तुम उपासकों को तारते हुये सब प्राणियों को देखते हो। तुम चन्द्रमा आदि ज्योतियों को प्रकाश देते हो। अतः हे सूर्य! तुम ससार को प्रकाशित करते हुये सुशोभित होते हो ॥९॥ हे सूर्य! तुम देवताओं के अभिमुख होकर उदित होते हो तथा दर्शन के लिये हे पवित्र करने वाले वरुणात्मक सूर्य! तुम सब प्राणियों को पुष्ट करते हुये जिस प्रकार से इस लोक को प्रकाशित करते हो, हम तुम्हारे उस प्रकाश की स्तुति करते हैं ॥१०॥ हे सूर्य! तुम दिनों को, रात्रियों से नापते हुये और देहधारियों को प्रकाशित करते हुये स्वर्ग और अन्तरिक्ष को भी व्याप्त करते हो ॥१२॥ सूर्य ने शुद्ध करने वाली, रथ को

गिरने न देने वाली सप्त रश्मियों को अपने रथ में योजित किया। उन रश्मियों द्वारा ही यह यज्ञ को प्राप्त होते हैं ॥१३॥ हे सूर्य! यह सप्त रश्मियां तुम्हें वहन करती हैं। तुम रथारूढ़ का तेज ही केश के समान है ॥१४॥

॥ इति षष्ठः प्रपाठकः षष्ठोऽध्यायश्चः समाप्त ॥

॥ सामवेद-सहितायां पूर्वार्चिक समाप्त ॥

—.०:—

अथ महानाम्न्यार्चिकः

विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥१

आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽन्नांशुः ।
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्रद्युम्नाय न इषे ॥२

एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
शविष्ठ वज्रिन्नृ ञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि
पिब मत्स्व ॥३

विदा राये सुवीर्यं भवो वाजाना पतिर्वशाँ अनु ।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥४

यो महिष्ठो मघोनाम् अंशुर्न शोचिः ।
चिकित्वो अभि नो नये न्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥५

ईशे हि शक्रस् तमूतये हवामये जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषःक्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६

इंद्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥७

पूर्वस्य यत्तो अद्रिवोऽशुर्मदाय ।

सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ यशस्यते ।

वशो हि शक्रोनूनं तन्यव्यं संन्यसे ॥८

प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रबावहै ।

शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥९

एवाह्येऽऽऽव । एवाँ ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।

एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॥१०

हे इन्द्र ! तुम सब कुछ जानते हो । अतः मार्ग-निदर्शन कर दिशाओं को बताओ । हे पूर्ण शक्तिशाली । समस्त प्रजाओ में बसने-बसाने वाले, हमें उपदेश दो ॥१॥ हे त्रैलोक्य स्वामिन् । हे चैतन्य ! परम आनन्द को प्रेरित करने वाली रश्मियों के समान स्तुतियो द्वारा अभीष्ट धन दो ॥२॥ हे सामर्थ्यवान्, दाता और पूज्य ! तुम धन, ज्ञान, शक्ति, तेज, बल तथा अन्न के लिये हमको समर्थ करो और स्वय आनन्दमय बनो ॥३॥ हे त्रैलोक्य-नाथ ! श्रेष्ठ धन के लिये हमें समर्थ बनाओ । तुम ज्ञान और धन के स्वामी, पूज्य एवं समर्थ हो ॥४॥ सब ऐश्वर्यवानों में सबसे बड़ा दाता वह सूर्य के समान कान्तिवान् है । हे सर्वज्ञ ! ज्ञान और बल के लिये हमें बढ़ा, मनुष्य उसी की स्तुति करते है ॥५॥ वह परमेश्वर ही सर्व समर्थ है । उस सर्व विजयी को रक्षा के लिये स्मरण करते हैं । वह द्वेष-भावों का नाशक, ज्ञान कमशक्ति वाला सत्यरूप और महान् है ॥६॥ उस अपराजित को ऐश्वर्य के लिये स्मरण करें । वह हमारे बैरियों को नाश करने वाला है ॥७॥ हे अखण्ड ज्ञानरूप ! पहिले से तुम्हारी किरणें

परमानन्ददायिनी हैं। सबको वास देने वाले! हमें सुख दो। तुम्हारा पोषकरूप प्रशंसित है। हे समर्थ! तुम सबको वशीभूत करते हो। हे स्तुत्य! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥८॥ हे विघ्नों के नाश करने वाले! हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे वीर तुम हमारे आत्मा के मित्र और सेवा करने के योग्य अद्वितीय हो ॥९॥ हे इन्द्र तुम इस प्रकार परमेश्वर हो। हे अग्ने! तुम प्रकाशरूप हो। हे सर्वैश्वर्ययुक्त! तुम निश्चय ही ऐश्वर्यवान् हो। हे पूषन! तुम पोषक हो। हे सर्वदेव! दिव्य गुण सम्पन्न पदार्थों! तुम ईश्वरीय गुणों से युक्त ऐसे ही हो ॥१०॥

॥ इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥

—:o:—

उत्तरार्चिकः

प्रथम प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्ध)

(ऋषि—काश्यपो देवलो वा·, काश्यपो मारीच·, शतं वैखानसाः, भरद्वाज·, विश्वामित्रा जमदग्निर्वाः, इरिम्बिठि·, विश्वामित्रो गाथिनः, अमहीयुरागिरसः, सप्तर्षयः, उशना काव्य, वसिष्ठः, वामदेवः, नोधा गौतम·, प्रगाथ , मधुच्छन्दाः, गोरवीति , अग्निश्चाक्षुषः, अन्धीगुः श्यावश्वि., कविर्भार्गव , शयुर्बार्हस्पत्य. सोभरिः, नृमेध ।। देवता—पवमान सोम·, अग्नि , मित्रावरुणौः इन्द्रः, इन्द्राग्निः, ।। छन्द—गायत्रीः बार्हत प्रगाथ त्रिष्टुप्, काकुभः प्रगाथ. उष्णिक्, आनुष्टुभः प्रगाथः जगती ।

उपास्वै गायता नरः प मानायेन्द्वं ।

अभि देवां इयक्षते ।।१

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणा अशिश्रयुः ।

देवं देवाय देवयुः ।।२

स नः पवस्व शं गवे श जनाय शमर्वते ।

शं राज नोषधीभ्यः ।।३।१।।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शक्रा गवाशिरः ॥१
हिंवानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥२
ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे ।
पवस्त सूर्यो दृशे ॥३॥२
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१
अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
आवावशंत धीतयः ॥२
अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्ययोनिमा ॥३॥३॥ (१-१)

हे मनुष्यो ! देवताओं के लिये यज्ञ करो । शुद्ध होकर पात्र में गिरते हुये सोम की स्तुति गाओ ।।१।। हे दिव्य गुण वाले देवताओ ! अपने इच्छित इस पोषक रस को साधक गो दुग्ध के साथ मिश्रित कर पीते हैं ।।२।। हे ज्योतिर्मान परमेश्वर ! तू हमारे लिये गवादि पशु-धन, प्रजा-जन, अश्वादि सेना के अंगो व प्रताप के धारक पदार्थों और औषधियों को प्रफुल्लित कर ।।३।। अत्यन्त तेजस्विनी कान्ति से, शब्दयुक्त धारा से स्वच्छ हुआ सोम गो-दुग्ध से मिश्रित किया जाता है ।।४।। साधको द्वारा यत्न से प्राप्त शक्तिशाली सोम हितकारी हुआ प्राप्त होता है, जैसे संघर्ष

के लिये शूरवीर युद्धभूमि में घुसते हैं ॥२॥ हे उज्वल सोम! तू उत्तम उन्नत होता हुआ कल्याण के लिये अन्तरिक्ष से गिरता है ॥३॥ हे क्रान्तदर्शी सोम शुद्ध करते समय तेरी कामना करने वालों को सम्पन्न करने की इच्छुक तेरी धारायें अश्वों के घुड़साल से निकलने के समान वेगवता होती हैं ॥१। मधुर रस टपकाये जाने वाले कलश मे अँगुलियाँ सोम को पुनः-पुनः शुद्ध करती है ॥२॥ टपकते हुये सोम रस कलश में जाते हैं। जैसे दुधारु गाय अपने थान पर जाती हैं, वैसे ही यह सोम यज्ञस्थान को प्राप्त होते हैं ॥३॥ (३) ॥

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवासमि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३॥४
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१
उरुशंसा नमोवृधा मह्नादक्षस्य राजथः ।
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
पात सोममृतावृधा ॥३॥५
आ याहि सुषुमा हि त इंद्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥१

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२
ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥३॥६
इंद्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥१
इंद्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥२
इंद्रमग्नि कविच्छा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥७॥ (१-२)

हे अग्ने ! तुम अज्ञान आदि का भक्षण करने और ज्ञान का प्रकाश करने के लिये यज्ञ को प्राप्त हो। दिव्य गुणों के प्रदाता बने तुम मेरे हृदयासन पर विराजो ॥१॥ हे सुन्दर अग्ने ! पूर्व कथित गुणों से युक्त तुम्हे समिधा और घी से प्रदीप्त करते हैं। हे तरुण ! तू अधिक प्रकाशित हो ॥२॥ हे अग्ने ! तू महान् समर्थ है, हमको सुनने योग्य सुन्दर ज्ञान प्राप्त कराने वाला हो ॥३ (४) ॥ हे मित्र, हे वरुण ! हमारी इन्द्रियों के घर रूप देह को प्रकाशयुक्त ज्ञान-रस से सींचो और उत्तम रस से हमारे पारलौकिक स्थानों को भी सिंचित करो ॥१॥ अत्यन्त पवित्र कर्मवाले मित्र और वरुण ! तुम विविध प्रशंसा योग्य हवि रूप अन्न से महती स्तुतियों द्वारा अपने तेज से प्रकाशित हो ॥२॥ दृढ़ संकल्प वाली अग्नि को अन्तःकरण में प्रज्वलित करने वाले ज्ञानियों से स्तुत्य तुम मर्त्य-स्थान में विराजो ! हे कर्म फल देने

वाले मित्र, वरुण ! तुम हमारे द्वारा सिद्ध किये इस सोम का पान करो ।।२ (५) ।। हे इन्द्र ! मेरे यज्ञ को प्राप्त हो । मैंने सोम सिद्ध किया है इसे पान करता हुआ हृदयासन पर बिराज ।।१।। हे इन्द्र ! मन्त्र रूप अश्व तुझे वहन करें और तू हमारे यज्ञ को प्राप्त हुआ स्तोत्रों पर ध्यान दे ।।२।। हे इन्द्र ! हम ब्रह्मज्ञानी सोम रस को सिद्ध करके तुझ सोम-पान करने वाले को स्तुति द्वारा बुलाते हैं ।।३ (६) ।। हे इन्द्र और अग्ने ! सिद्ध किये हुये सोम के लिये हमारी स्तुतियों से प्राप्त होओ और हमारे भक्तिभाव से निवेदित इस सोम का पान करो ।।१।। हे इन्द्र, अग्ने ! तुम उपासक को मुक्ति प्राप्त करने में सहायक हो । तुम्हें इन्द्रियों को जागृत रखने वाला यज्ञ-साधक सोम प्राप्त होता है । हमारी स्तुतियों से आकर्षित हुये तुम इस शुद्ध सोम का पान करो ।।२।। इस यज्ञ-साधन सोम से प्रेरित मैं अभीष्टदाता इन्द्र और अग्नि की पूजा करता हूँ । वे मेरे सोम-याग से सन्तुष्ट हों ।।३ (७) ।।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रं शर्म महि श्रवः ।।१

स न इंद्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित् परि स्रव ।।२

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि म नुषाणम् ।
सिषासन्तो वनामहे ।।३।।८।।

पुनान. सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्यय ।।१

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।

आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः
।।२।।६

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाज-
मर्ष ।

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्न-
यन्ति ।।१

स्वायुधः पवते देव इदुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो
धरुणः पृथिव्याः ।।२

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपोच्यां गुह्यं
नाम गोनाम् ।।३।।१०।। (१-३)

हे सोम ! तू श्रेष्ठ रस का उत्पादक, आकाश में स्थित, बल-युक्त आनन्द स्वरूप, बहुत अन्नों से युक्त यजमानों द्वारा ग्राह्य है ।।१।। हे ऐश्वर्यदाता सोम ! तू हमारे लिये काम्य है । इन्द्र, वरुण मरुद्गण के स्रवित हो ।।२।। हे सोम ! मनुष्यों को प्राप्य इन सब यज्ञ-साधनों को सरलता से प्राप्त करते हुये हम तुम्हारी सेवा के लिये स्तवन करते हैं ।।३ (८) ।। हे शुद्ध किये जाते हुये सोम ! तू अपनी तरलधारा से पात्र मे जाता है । तू ऐश्वर्यदाता, तरल, स्वच्छ, स्वर्ण के समान दमकता हुआ यज्ञ-स्थान में स्थित हो ।।१।। हर्ष प्रदायक, आह्लादक स्वर्गीय आनन्द-रस को टपकाता हुआ सोम हृदय रूप अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है। फिर तू ऋत्विजों द्वारा धोया हुआ कर्मवान् यजमानों को अन्न प्राप्त

कराता है ॥२ (९) ।। हे सोम ! हमारे यज्ञ में शीघ्र आकर द्रोण कलश में विराज होताओं द्वारा शोधित हविरूप अन्न को प्राप्त हो। स्नान से स्वच्छ हुये अश्व के समान अपनी लम्बी अँगुलियों से ऋत्विज तुम्हे शुद्ध करते है ॥१॥ उत्तम अन्न युक्त, दानवों का नाशक, विघ्नों से रक्षा करने वाला बलवान आकाश-पृथिवी का धारक सोम सिद्ध किया जाता है ।।२॥ बुद्धिमान् अनुष्ठानकर्त्ता, परम ज्ञानी, साधक ऋषि ही इन इन्द्रियों मे स्थित जो परमानन्द रूप दुग्ध है उसे यत्नपूर्वक प्राप्त करता है ।।३ (१०) ।।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनव. ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्हशमोशानमिन्द्र तस्थुष ॥१

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निद्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे
॥२॥११॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृध सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥१
कस्त्वा सत्यो मदाना मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥२
अभी षु ण सखानामविता जरितृणाम् ।
शतं भवास्यूतये ।।३॥१२

त वो दस्ममृतोषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्स न स्वसरेषु धेनव इंद्र गार्भिर्नवामहे ॥१
द्युक्ष सुदानु तविषोभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्त्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥१३॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१

न य दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता
जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥१४॥ (१-४)

हे वीर इन्द्र ! जैसे बिना दुही गायें बछड़ों की ओर रँभाती हैं, वैसे हम विश्व के स्वामी तुम सर्वेश को पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं ॥१। हे इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य कोई दिव्य लोक या पृथिवी लोक का वासी नहीं है, न कभी हुआ न होगा । अश्व-गवादि की कामना वाले हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।।२(११)।। सतत वृद्धि को प्राप्त वीरेन्द्र, किस तृप्तिकारक पदार्थ अथवा किस यत्न या किस अनुष्ठान से हमारा सखा होवे।।१।। आनन्द-दायक पदार्थों मे कौन सा पदार्थ श्रेष्ठ है ? इन्द्र को आनन्दमद में रमाने वाला सोम-रस शत्रु के ऐश्वर्य को नष्ट कराने वाला है ॥२॥ हे इन्द्र ! तू मित्र साधकों की रक्षा करने वाला हमें सैकड़ों प्रकार के रक्षा-साधनों को देता हुआ प्राप्त हो ।।३ (१२) बछड़ों को पुकारती हुई गौओं के समान हे ऋत्विज, यजमानों ! सूर्य के समान प्रकाशित शत्रुओं को भगाने वाले, सोम-पान से आनन्दित इन्द्र का यश-गान करो ।।१।। हम सूर्य लोक के निवासी उत्तम दानी, बलवान, सोमादि से तृप्त, पालक इन्द्र से सन्तान और ऐश्वर्य सैकड़ों गवादि, अन्न-धन माँगते हैं ।।२ (१३)

हे ऋत्विजो ! तुम सोम-यज्ञ में वेग वाले अश्वों युक्त ऐश्वर्य देने वाले इन्द्र की, रक्षा के लिये उपासना करो। जैसे बालक अपने अभिभावक को पुकारता है वैसे ही मैं साधक अपना हित करने वाले इन्द्र को बुलाता हूँ ॥१॥ सुन्दर चिबुक और नासिका वाले इन्द्र को युद्ध मे दुष्ट प्राप्त नहीं कर सकते। वह इन्द्र सोम के आनन्द के लिये सोम सिद्ध करने वाले साधक को ऐश्वर्य देता है, हम उस इन्द्र की स्तुति करते है ॥२॥ (१४)

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इंद्राय पातवे सुतः ॥१
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२
वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः
पर्षि राधो मघोनाम् ॥३ ।१५
पवस्व मधुसत्तम इद्राय सोम क्रतुवित्त मो मदः ।
महि द्युक्षतमो मद ॥१
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतश. ॥२।१६
इंद्रमच्छ सुता इमे वृषण यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुत ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२

अस्यदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम्

वज्रं च बृषणं भरत् समप्सुजित् ॥३॥१७

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।

अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥१

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।

इंदुरश्वो न कृत्व्यः ॥२

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।

यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥३॥१८

अभि प्रियाणि पवते चनोहिते नामानि यह्वो

अधि येषु वर्धते

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नभि रथं विष्वञ्चरुहद्विचक्षणः ॥१

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो

अस्या अदाभ्य. ।

दधाति पुत्रः पित्रोरपोच्या नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः

॥२

अव द्युतान कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ

हिरण्यये । अभी ऋतस्य दोहना अनूषताभि त्रिपृष्ठ

उषसो वि राजसि ॥३॥१९॥ (१-५)

हे सोम ! तू इन्द्र के लिये सिद्ध किया गया सुस्वादिष्ट आनन्द दायिनी धारा से टपक ॥१॥ रोग-व्याधि रूप राक्षसो का हननकर्त्ता सोम स्वर्ण कलश में शुद्ध किया रखा है ॥२॥ हे इन्द्र ! तू अत्यधिक ऐश्वर्य एवं विभिन्न पदार्थों का देने वाला है,

शत्रुओं से हमको धन प्राप्त करो ।।३ (१५) ।। हे सोम ! अत्यन्त मधुर रस देने वाला तू पूज्य, उज्ज्वल और सुख-बर्द्धक है। इन्द्र के लिये इस पात्र में स्थित हो ।।१।। हे सोम ! अभीष्टवर्षक इन्द्र तुझे पीता हुआ बलवान हो जाता है। तेरे बल से वह शत्रुओं के धन को वश में कर लेता है जैसे अश्व शीघ्रता से युद्ध भूमि को प्राप्त होता है ।। २ (१६) ।। शीघ्रता से निकल कर पात्रो में टपकता हुआ शुद्ध सोम-रस अभीष्टवर्षक इन्द्र को प्राप्त हो ।।१।। बल के लिये सेव्य और संस्कारित यह सोम इन्द्र के लिये पात्रों में एकत्रित हुआ विजयेच्छुक इन्द्र को चेतना देता है जैसे कि वह इन्द्र लोकों को चैतन्य करता है ।।२।। इस सोम के आनन्द में रमा हुआ इन्द्र धनुष को ग्रहण करता हुआ जलवर्षक अभीष्ट देता है ।।३ (१७) ।। हे स्तुति करने वाला ! जिसके सेवन से विजय निश्चत होती है ऐसे सोम के हर्षित बना देने वाले सिद्ध रस से कुत्ते और उसके समान लोभियों को भगाओ ।।१।। संस्कृत, कर्म साधक सोम पाप शोधक धाराओं से ऐसे प्रवाहित होता है जैसे वेग के साथ अश्व भागता है ।।२।। हे मनुष्यों ! दोषों को जलाने वाले सोम का सर्व कार्यों को सिद्ध करने वाली बुद्धि से यज्ञ के लिये आदर करो ।।३ (१८) ।। हितकर सोम संसार को तृप्त करने वाले जलों को शुद्ध करने वाला है। यह अन्तरिक्ष में स्थित जलों से बढ़ता और सूर्य के रथ पर चढ़ा हुआ सब को देखता है ।।१।। सत्य रूप यज्ञ के मुख्य प्रवक्ता के समान शब्द करने वाला सोम मधुर रस को प्रवाहित करता है। इसका प्रयोक्ता अहिंसक हुआ दिव्य अव्यक्त रूप को धारण करता है ।।२।। दीप्ति युक्त सोम संस्कारित हुआ शब्द पूर्वक कलश में गिरता है तब साधक उसकी स्तुति करते है। वह सोम यज्ञ को प्रकाशित करता है ।।३ (१९) ।।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥२२
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्र योनिं कृणवसे ॥२

न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते ।
अथा दुवो वनवसे ॥३।२१
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वज्रिञ्चित्रं हवामहे ॥१
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इंद्र सानसिम् ॥२।२२
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥१
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥३॥२३ (१-६)

हे स्तुति करने वालों ! तुम यज्ञ में प्रदीप्त हुये अग्नि की स्तुति करो । हम भी उन अविनाशी सर्वज्ञ अग्नि की मित्र के समान प्रशंसा करें ॥१॥ अन्न–बल के पुत्र अग्नि की स्तुति करे । यह अग्नि मनोरथ पूर्ण करने वाला, संग्रामों रक्षक, वृद्धि करने वाला एवं हमारी सन्तानों का रक्षक हो ॥२ (२०)॥ हे अग्ने ! इन उत्तम प्रकार से उच्चारित स्तुतियों को सुनो तथा अन्य देवताओं की स्तुतियाँ सुनते हुयेभी सोम-रस से पुष्ट होओ ॥१। हे अग्ने ! तुम्हारा मन जिस यजमान के प्रति आकर्षित है, उसके यहां उत्तम अन्न, बल धारण कराते हो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हारे तेज से नेत्रों की ज्योति नष्ट न हो । तुम यजमानों के रक्षक हो अतः उनके द्वारा की हुई सेवाओं को ग्रहण करो ॥३ (२१) ॥ हे वज्रिन् ! तुमको सोम से पुष्ट करते हुये हम रक्षा के लिये तुम्हे बुलाते हैं, उसी प्रकार, जैसे ऐश्वर्य प्रदाता गुणवान को सब बुलाया करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! हम रक्षा के लिये तुम्हारे आश्रय मे उपस्थित हैं । तुम शत्रु को पछाड़ने वाले युवा रूप से आकर उत्साह दो । तुम सबके रक्षक के हम मित्र रूप से तुम्हारे उपासक हैं ॥२ (२२) ॥ हे स्तुत्य इन्द्र ! तुमसे सभी अभीष्ट पदार्थ याचना करते हुये प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार जैसे अंजलि से जल उछालते हुये व्यक्ति निकट वालों को खेल-खेल में भिगो देते हैं ॥१॥ हे वज्रिन् । हे शूरवीर ! जैसे नदियों के जल से ही समुद्र महान् बनता है, वैसे ही स्तुति करने वाले अपने स्तोत्रों से ही तुम्हें बढ़ाते हैं ॥ २ ॥ उस गतिमान इन्द्र के रथ में बचन मात्र से ही अश्व जुड़ जाते हैं । इन्द्र के स्थान को

द्रुत गति से जाते हुये अश्वों को स्तुति करने वाले अपने स्तोत्रों से उत्साहित करते हैं ॥३॥ (२३) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋषि—श्रुतकक्षः, वसिष्ठः, मेधातिथिप्रियमेधो., इरिम्बिठिः, कुसीदी काण्व्यः, त्रिशोकः काण्वः, विश्वामित्रः, मधुच्छन्दाः, शुनःशेपः, नारदः, अवत्सारः, मेध्यातिथिः, असितः काश्यपो देवलो वा, अमहीयुराङ्गिरसः त्रित आप्त्यः, भरद्वाजाद्यः सप्तऋषयः, श्यावाश्वः, अग्निश्चक्षुषः, प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता—इन्द्रः, उषाः, अश्विनौः, पवमानः, सोमः । छन्दः—आनुष्टुभः प्रगाथः, गायत्रीः, उष्णिक्ः बार्हत प्रगाथः, अनुष्टुप् ।)

पान्तमा वो अन्धसः इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणनाम् ॥
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां सनश्रुतम । इन्द्र इति
ब्रवीतन ॥२
इन्द्र इन्नो महोना दाता वाजना नृतुः ।
महाँ अभिज्ञवा यमत् ॥३॥१
प्रं व इंद्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने

शंसेदुक्थं सुद्रानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥२
त्व न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥२

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥२
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥३
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥२
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥४॥ (२-१)

हे ऋत्विजो ! सोम-पान करते हुये इन्द्र की अनेक स्तुतियाँ करो। वह इन्द्र सब शत्रुओं का हनन-कर्त्ता, शत-कर्मा, धन-दाता होने से महान् है ॥ १ ॥ हे ऋत्विजो ! यज्ञों में अनेकों द्वारा बुलाये गये, स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य इस सनातन देव का इन्द्र नाम से यश-गान करो ॥२॥ स्तोताओं को पशु-धन दाता इन्द्र हमें भी ऐश्वर्य-दाता हो। वह महान् इन्द्र साक्षात ऐश्वर्य प्रदान करे ॥३ (१) ॥ हे स्तुति करने वालो ! सोम पान करने वाले इन्द्र के लिये आनन्द-दायक स्तोत्रों का गान करो ॥१॥ हे साधक ! उत्तम दान और सत्य धन वाले इन्द्र के लिये साम को

समर्पण करने वाला अन्य व्यक्ति स्तोत्रों का उच्चारण करता है, वैसे ही तू भी, हमारे साथ, स्तोत्रों को गा ॥२॥ हे इन्द्र ! तू हमको अन्न चाहने वाला हो। हे पराक्रमी ! गवादि धन और सुवर्ण आदि के लिये सिद्ध कर ॥३ (२) ॥ हे इन्द्र ! तुम्हे अपना समझने वाले मित्र प्रयोजनीय विषयों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। हमारी सन्तति भी तुम्हारा स्तवन करती है। १। हे वज्रिन् ! तुम कर्मों के स्वामी के लिये नवीन यज्ञ में अन्य स्तोत्रों को नहीं कहता। केवल तुम्हारी ही स्तुति करता हूँ ॥२॥ सोम का शोधन करते हुये साधक रक्षा चाहते हैं। वह उसे स्वप्नावस्था से निकाल कर जागृत करते हैं। इसी लिये निरालस्य देवगण सोम को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं ॥३ (३) ॥ सोम-रस चाहने वाले इन्द्र के लिये संस्कृत सोम की हमारी वाणियां स्तुति करें। फिर स्तोतागण उस सोम की पूजा करें ।।१।। जिस अधिक कांति वाले इन्द्र के लिये सात होता मन्त्रोच्चार करते है, सोम के सिद्ध होने पर हम उसका आह्वान करते हैं ।।२।। दिव्य इन्द्रियों, दीप्ति और आयु-वर्द्धक यज्ञ का जिससे बिस्तार होता है, उसी यज्ञ को हमारी स्तुतियां बढ़ावें ॥३ (४) ॥

अयं त इंद्र सोमो निपूतो अधि वर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिव ॥१

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
आखंडल प्र हूयसे ॥२

यस्ते श्रृंगवृषो णपात् प्रणपात कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥५॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं स गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥१
विद्मा हित्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
तुविमात्रमवोभिः ॥२
न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
भीमं न गाॅ वारयन्ते ॥३॥६
अभि त्वा वृषभा सूते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
मा की ब्रह्मद्विष वनः ॥२
इह त्वा गोपरीणस महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥३॥७
इदं वसो सुतामन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन् ररिमा ते ॥१
नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
अश्वो न सिक्तो नदीषु ॥२
त ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥८॥ (२-२

हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये यह सोम वेदी मे बिछे कुशों पर शोधित किया गया है । तुम इस समय यहाँ आकर रस रूप सोम से जहाँ हवन होता है, वहाँ इसका पान करो ॥१॥ प्रासद्ध

किरणों वाले, पूज्य इन्द्र ! तुम्हें आनन्दित करने के लिये यह सोम सिद्ध किया है। इसलिय हमारी उत्तम स्तुतियों से यहां आकर साम पान करो ।।२।। सर्व श्रेष्ठ सुख वर्षक, रक्षक और सरलता से पीने योग्य सोम के प्रति इस यज्ञ में ध्यान लगाओ ।।३ (५)।। हे इन्द्र ! महान भुजाओ वाले तुम हमको अद्भुत धन को दाहिने हाथ से ग्रहण कराओ ।।१।। हे इन्द्र ! बहुत पराक्रमी, देय ऐश्वर्य वाले महान् रक्षण-साधन युक्त तुम्हें हम जानते हैं ।।२।। हे वीर तुम दानशील को देवता या मनुष्य कोई भी देने से रोकने वाला नहीं है। उसी प्रकार, जैसे बैल को घास खाने से कोई नही रोकता ।।३ (६) ।। हे अभीष्ट दाता इन्द्र ! सोम के शुद्ध होने पर तुम्हें उसके पीने के लिये बुलाता हूँ। उससे तुम तृप्त को प्राप्त होओ ।।१।। हे इन्द्र ! पालन करने की इच्छा वाले मूर्ख तुम्हें कष्ट न दें। उपहास करने वाले ब्रह्म द्वेषियों से तुम अपनी सेवा मत कराओ ।।२।। हे इन्द्र ! धन के निमित्त इस यज्ञ में तुम्हें गो दुग्ध युक्त सोम-रस भेंट करके आनन्दित करें। तुम मृग द्वारा तालाब के जल को पीने के समान उस सोम का पान करो ।।३ (७) ।। हे व्यापक इन्द्र ! इस शोधित ! सोम का पान करो जिससे तुम्हारा पेट भरे। किसी से न डरने वाले ! तुम्हें यह सोम अर्पित है ।।१।। ऋत्विजों ने तृण आदि दूर करके इसे सिद्ध किया है। यह पत्थरों से कूट कर निचोड़ा हुआ, छान कर जल भावना से शोधन किया गया है ।।२।। हे इन्द्र ! उस शोधित सोम को पुरोडाश के समान गोदुग्धादि से मिश्रित कर तुम्हारे लिये सुस्वादु बनाया है। अतः उसको पीने के लिये तुम्हें इस यज्ञ में बुलाता हूँ ।।३ (८) ।।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा स्य गिर्वणः

यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥९
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ॥१
पुरूतमं पुरूणामीशान वार्याणाम् । इन्द्र सोमे सचा
सुते ॥२

स घा नो योग आ भुवत स राये स पुरन्ध्या ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥३॥१०
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय
इन्द्रमूतये ॥१

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥२
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥३॥११
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतु पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२
तमु हुवे वाजसाताय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्

भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥१२॥ (२-३)

हे ऐश्वर्य स्वामी, स्तुत्य इन्द्र! तुम बलवान हुये क्रम से संस्कारित इस सोम का शीघ्र पान करो ॥१॥ हे इन्द्र! जो सोम तुम्हारे लिये पाषाणों से शुद्ध किया जाता है, उसके सिद्ध होने पर अपने शरीर को उसके लिये प्रेरित करो। उस सोम से तुम्हे आनन्द प्राप्त होता हो ॥२॥ हे इन्द्र! वह सोम तुम्हारे दोनों पार्श्वों में भले प्रकार रम जाय। तुम्हारे शिर आदि देह में व्याप्त हुआ धन के निमित्त तुम्हारी भुजाओं को समर्थ करे ॥ २ (६) ॥ हे स्तोताओं! मित्रो! यहा आकर बैठो और इन्द्र के लिये सामगान द्वारा प्रशंसित करो ॥१॥ ऋत्विजो! सोम के संस्कार में योग देते हुये शत्रु-नाशक इन्द्र को सब मिल कर मनाओ ॥२॥ वह इन्द्र ज्ञान से समर्थ हुआ हमारे मे पुरुषार्थ धारण करावे। वह धन प्राप्ति, बुद्धि बृद्धि में सहायक होता हुआ देय ऐश्वर्य के साथ प्रकट हो ॥३ (१०) ॥ हम सभी मित्र प्रत्येक संघर्ष में विघ्नापहारक इन्द्र को अपनी रक्षा के लिये बुलाते है ॥१॥ सनातन स्थान से अनेकों को प्राप्त होने वाले इन्द्र का आह्वान करता हूँ। हमारे पूर्वजों ने भी तुम्हारा आह्वान किया था ॥२॥ यह इन्द्र यदि हमारी बुलाहट को सुने तो स्वयं ही रक्षा साधनों एवं अन्नादि ऐश्वर्यों सहित हमारे पास आ जाय ॥३ (११) हे इन्द्र! संस्कारित सोम को पीने पर तुम बढ़ाने वाले बल की प्राप्ति के लिये साधक को शुद्ध करते हो। तुम निश्चय ही महान् हो ॥१॥ वह इन्द्र रक्षक रूप से दिव्यताओं मे स्थित हुआ साधकों को बढ़ाने वाला, कर्म फलदायक, विजेता है, उसी का हम आह्वान करते हैं ॥२॥ इसी इन्द्र का अन्न दायक यज्ञ में आह्वान करता हूँ। हे इन्द्र! तुम आनन्द की इच्छा से हमारे पास आकर वृद्धिकारक मित्र के समान बनो ॥३ (१२)॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२।१३
प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिववत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च स भक्तेन गमेमहि ॥२॥१४
इमा उ वा दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिवतं सोम्यं मधु ॥२॥१५

(२-४)

हे ऋत्विजो ! तुम्हारे लिये इन स्तुतियों से बल के पुत्र, चैतन्य, श्रेष्ठ यज्ञ-कर्मों में प्रयुक्त, दूत रूप अग्नि का आह्वान करता हूँ ॥१॥ वह विश्व-पोषक, उत्तम अन्न वाला, यज्ञ-योग्य श्रेष्ठकर्मा अग्नि देवताओं को आह्वान कराने वाला शीघ्र गमन करे । साधकों की हवियाँ अग्नि को प्राप्त हों ॥२ (१३) ॥ सूर्य-लोक की पुत्री उषा को आकर अन्धकार मिटाते सबने देखा । वह अपने दर्शन से ही रात के अँधेरे को दूर कर देती है । प्राणियों को उत्तम प्रेरक उषा प्रकाश देने वाली है ॥१॥ सबका प्रेरक सूर्य, किरणों को एक साथ आविर्भूत करता है । हे उषे ! तेरे और सूर्य के प्रकाश को पाकर हम अन्न से सम्पन्न हों ॥२ (१४)॥

हे अश्विनीकुमारो ! सूर्य के प्रकाश की इच्छुक यह प्रजायें तुम्हें बुलाती हैं। यह साधक भी रक्षा के निमित्त तुम्हारा आह्वान करता है। तुम सब स्तोताओं के निकट जाते हो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अद्भुत धन-धारक हो। इस धन को साधकों के निमित्त दो। इस कार्य को करते हुये सोम के मधुर रस का पान करो ॥२ (१५)॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥१
अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥१६
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥१
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण
वावृधे ॥२
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे ।
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥३॥१७
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे ।
पवमान विदा रयिम् ॥१
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥२
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ॥३॥१८ (२५)

सोम के सनातन रूप का ध्यान कर सहस्रों मनोरथों को पूर्ण करने वाले पेय रस को ज्ञानी जन निचोड़ते हैं ॥१॥ यह सोम के समान सब कर्मों को देखने वाला है। यह तीन अहोरात्रों को प्राप्त हुआ आकस्थ सात प्रवाहों में व्याप्त होता है ॥२। शुद्ध किया जाता यह सोम सूर्य के समान सब भुवनों के ऊपर विराजता है ॥३ (१६)॥ यह दिव्य सोम सनातन रीति से संस्कार किया हुआ देवों के लिये प्रयुक्त हुआ दमकता है ॥१॥ पूर्ववत् स्तोत्रों द्वारा साधिक यह सोम दिव्य गुणवाला, मेधाशक्ति युक्त हुआ साधक द्वारा गुणों में बढ़ता है ॥२॥ पूर्ववत् ही पात्रों को सोम-रस से पूर्ण करता हुआ शब्दवान् सोम इन्द्रादि को अपने निकट बुलाता है ॥ ३ (१७) ॥ हे सोम ! हमारे अभीष्ट पदार्थों को हमारे पास लाओ। हमारे शत्रुओं को भयभीत करो। शत्रुओं के धन को हमें प्राप्त कराओ ॥ १ ॥ उत्तम प्रकार से उत्पन्न, गो दुग्ध आदि से संस्कारित सोम इन्द्रादि देवों को प्राप्त करता है ॥२ हे मनुष्यों ! इन्द्रादि देवों की उपासना के इच्छुको ! यजमान के लिये इस शुद्ध किये जाते हुये सोम के गुणों का बखान करो ॥३ (१९)॥

प्र सोम सो, विपश्चितोऽपा नयन्तो ऊर्मय ।

वनानि महिषा इव ॥१॥

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।

वाज गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

सुता इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।

सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥१९॥

प्रसोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अशाः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोश मधुश्चुतम्
॥१
आ हर्यता अर्जु नो अत्के अव्यत प्रिय' सूनुर्न यर्ज्यः ।
तमो हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥२०
प्र सोमासो मदच्युत श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥५
आदी हसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥२
आदो न त्रितस्य योषणो हरि हिन्वन्त्यद्रिभि. ।
इंदुमिन्द्राय पीतये ॥३॥२१
अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्र पर्येषि विश्वतः ।
मधोर्धारा असृक्षत ॥१
पवते हर्यतो हरिरतिह्वरॉसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥२
प्र सुन्वानायान्धसं मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधस हता मख न भृगवः ॥३॥२२॥(२-६)

मेधावी, वृद्धि को प्राप्त सोम जलो को प्राप्त होते हैं, जैसे बड़े मृग घोर वन को प्राप्त होते हैं ॥१। धूमिल दी प्रवान् सोम अमृत रूप धार से पात्रों में गिरता है ॥२। संस्कारित सोम इन्द्र, वायु, वरुण और मरुद्गणों के निमित्त प्राप्त हो ॥३ (१९) ॥ हे सोम ! तू देवताओं के पीने को, सिंधु के

जल के पूर्ण होने के समान पूर्ण होता है। तू जागृत तत्वों से युक्त हुआ लता के अंशों से मधुर रस प्रवाहित करता कलश में जा ।१। चाहना योग्य शिशु के समान श्वेत वर्ण का सोम दिखाई पड़ने पर सिद्ध किया जाता है ।।२ (४) । आनन्द प्रवाहित करने वाला साम शुद्ध होने पर हमारे अन्न और कीर्ति के लिये यज्ञ में प्राप्त होता है ।।१।। यह सोम हम के समूह में गति से प्रवेश करने के समान सब साधकों की बुद्धि को नियन्त्रित करता है। वह सोम गो-घृतादि से युक्त किया जाता है ।।२।। और इस सोम को इन्द्र के पान करने योग्य होने को साधक की उँगलियाँ प्रेरित करती हैं ।।३ (२१) ।। हे सोम ! दिव्य कामनाओं वाला तू इस धार से टपकता हुआ शब्द पूर्वक छनने के लिये प्रवृत्त हो। फिर तेरी धारायें तरंगित करने वाली हो जाती है ।।१।। इच्छा करने योग्य साम साधकों को सन्तान, यश प्राप्त कराने के लिये वेग से छनता हुआ निकलता है ।।२।। शुद्ध किये जाते हुये सोम के शब्द को कर्मों में बाधा देने वाला न सुने। हे उपासकों ! कर्म रहित लोभी कुत्ते को यज्ञ के पास मत फटकने दो ।।३ (२२) ।।

द्वितीयः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि— जमदग्निः, अमहीयुः, कश्यप, भृगुवर्रुणिजमदग्निवर्ाः, मेधातिथिः, काण्व, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, वसिष्ठ, उपमन्युर्वासिष्ठः, शयुर्बार्हस्पत्यः, प्रस्कण्वः, काण्वः, नृमेधः, नहुषो मानव सिकतानिवावरी, पृष्णयोऽजा, श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा, जेता माधुच्छन्दस । देवता— पवमानः सोमः, अग्निः, मित्रावरुणौ, इन्द्र, इन्द्राग्नी। छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, बार्हतः प्रगाथः अनुष्टुप्, जगती ।)

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥१

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
पवस्व विश्वचर्षणे ॥२

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥३॥१

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥१

यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥२

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥३॥२

वृषा सोम द्युमां असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥१

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
स त्वं वृषन् वृषेदसि ॥२

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥३

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वर्दृशम् ॥१

यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥३॥४

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥१

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृडय ॥२

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥३॥५॥ (३-१)

हे सोम ! विभिन्न रक्षा-साधनों सहित हमारी स्तुतियों को सुनता हुआ उनके शब्दों पर ध्यान दे ॥१॥ हे सर्वद्रष्टा सोम ! तू वाणी में प्रेरणा उत्पन्न करता हुआ हृदयस्थ आनन्द रस से मिल ॥२॥ हे सोम ! तुम्हारी महिमा के निमित्त यह भुवन स्थित हैं । देवगण को तृप्त करने वाली गौयें तुम्हारे लिये ही उपस्थित होती हैं ॥३ (१) ॥ हे सोम ! सिद्ध किया हुआ तू अभीष्टवर्षक है । तू पवित्र हुआ हमें यशस्वी बनाओ । सब शत्रुओं का नाश करो ॥१-२ ॥ हे सोम ! इस यज्ञ मे तुम्हारे मित्र-भाव की प्राप्ति के लिये हम साधक एकत्र हुये हैं । संघर्ष के इच्छुक वैरियों को हम भगावें ॥२॥ हे सोम ! अपने शत्रुनाशक आयुधों से शत्रु की भर्त्सना करते हुये हमारी रक्षा करो ॥३ (२)॥ हे सोम ! तू अभीष्टवर्षक और तेजस्वी है । हे सोम के स्वामी ! तुम मनोरथों को पूर्ण करते हुये मनुष्यों के हित मे कार्य करते

हो ॥१॥ हे अभीष्टवर्षक सोम ! तुम्हारा बल और सुख वर्षा सामर्थ्य से युक्त है । तुम सिद्ध किये हुये सुखों की वर्षा करो ॥२॥ हे अभीष्टवर्षक ! तू अश्व के समान शब्द करता हुआ पशु-धन और ऐश्वर्य का देने वाला है ॥३ (३) । हे सोम ! तू सत्य हो। अभीष्ट फलों का वर्षक है । अतः हम सब देवों के दर्शन, श्रवण योग्य तेज से तेजस्वी हुये तुझे यज्ञों मे बुलाते हैं ॥१॥ हे ऋत्विजो के द्वारा सिद्ध किये जाते हुये सोम ! जब तुझे जलों से सींचते हैं तब तू हृदय-कलश मे विद्यमान होता है ॥२॥ हे उत्तम आयुध वाले सोम ! तू देवताओं को सुख देता हुआ हमे भी वीर पुत्रादि से युक्त कर हमारे इस यज्ञ मे आकर सुशोभित हो ॥३(४) । हे सोम ! हम साधक तुम्हारे टपकते हुये मित्र भाव के लिये प्रार्थना करते हैं ।१॥ हे सोम ! तेरी यह लहरें बहकर छानने के वस्त्र मे उठती हैं, उनमे हमें आनन्दित कर ।२॥ हे सोम ! विश्व का अधीश्वर होता हुआ सिद्ध हुआ तू हमे धन-अन्न और वीरता युक्त सन्तति प्रदान कर ॥३ (५) ॥

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतम् ॥१
अग्निमग्नि हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२
अग्ने देवा इहा वह जज्ञानो वृक्तवर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥३॥६

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
या जाता पूतदक्षसा ॥१
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।

पर कृपा करो। इस यज्ञ में हवि लेने वाले देवों को बुलाओ। तुम हमारे लिये पूजा के योग्य हो ॥३ (६) ॥ हम स्तोता सोम-पान करने को यज्ञस्थान में प्रकट होने वाले मित्र और वरुण देव को बुलाते हैं ॥१॥ साधक पर कृपा करने वाले सत्य वचन से प्राप्य कर्म-फल बढ़ाने वाले प्रकाश के पालनकर्त्ता उन मित्र और वरुण को बुलाता हूँ ॥२॥ वरुण और मित्र सब रक्षा साधनों से युक्त हुये हमारे रक्षक हों। वे दोनों हमें बहुत-सा ऐश्वर्य दें ॥३ (९) गान योग्य वृहत् साम से गायकों ने इन्द्र का स्तवन किया। होताओं ने मन्त्रोच्चार द्वारा तथा अध्वर्युओं ने वाणियों से इन्द्र को मनाया ॥१॥ वज्र और सुवर्ण कान्ति से सुशोभित इन्द्र के वचन मात्र से कर्म रूपी घोड़े ज्ञानेन्द्रिय से मिल जाते हैं ॥२॥ हे इन्द्र! प्रबल तेजस्वी रक्षा-साधनो से युक्त हुआ तू सघर्षों में हमारा रक्षक हो ॥२॥ यह इन्द्र दर्शन के निमित्त सूर्य को, उसके मण्डल में प्रतिष्ठित करता है। उस सूर्य की रश्मियाँ मेघ को प्रेरित करती हैं ॥४ ८) ॥ रक्षा के लिये तत्पर इन्द्र अग्नि को बढ़ाने वाले हवि और सुन्दर स्तुति को प्रेरित कर कर्मशील वाणियों से स्तवन करते हैं ॥१॥ उन इन्द्र और अग्नि की रक्षा प्राप्त करने को ज्ञानीजन स्तुति करते हैं और क्लेशों में फँसे हुये पुरुष अन्न के लिये उन्हे मनाते हैं ॥२॥ धन की इच्छा से स्तुति करना चाहते हुये हम यज्ञ-अनुष्ठान के लिये हे इन्द्र और अग्ने! उन स्तुतियों द्वारा तुम्हे पुकारते हैं ॥२ (९ ॥

वृषा पवस्व धारया। मरुत्वते च मत्सरः।
विश्वा दधान ओजसा ॥१

तं त्वा धर्त्तारमोण्योः पवमानः स्वर्दृशम्।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२

अया चित्तो विपानया हरि॰ पवस्य धारया ।
युजं वाजेषु चोदय ॥३॥१०
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत
द्याम ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा श्रण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षषि
वाचमेमाम् ॥१
रसाय्य पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः
॥२
एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम् ।
परि वर्ण भरमाणो रुशंतं गव्युर्नो अर्ष
परिसोम सिक्तः ॥३॥११॥ (३-३)

हे सोम ! तुम साधकों का अभीष्ट फल देते हुये द्रोण कलश में धार रूप से प्रविष्ट हो । फिर सर्व ऐश्वर्य दाता जिस इन्द्र के मरुत सहायक है, उसको हम तुम्हे अर्पित करें तो आनन्द देने वाले बनो ॥१॥ हे सिद्ध हुये सोम ! आकाश पृथिवी के धारक, सर्व दर्शक, बली तुम्हें प्रेरित करता हूँ, अन्नादि ऐश्वर्य प्रदान करो ॥२॥ हे साम मेरी अँगुलियों द्वारा संस्कारित तू हरे रंग का धार से कलश में जाता हुआ मित्र रूप इन्द्र को संघर्षों में आनन्द दे ॥३ (१०) ॥ गौओं को देखकर शब्द करने वाले बैल के समान स्तुतियों से लक्ष प्राप्त होता है ॥१॥ सुस्वादि गो दुग्धादि से मिलकर मधुर हुआ सोम रस भाव को प्राप्त होता है। जलों से सिंचित, शुद्ध, धार रूप में इन्द्र के लिये प्राप्य है।

।।२।। हे हर्षयुक्त सोम ! टपकता हुआ, मेघ को वर्षा के लिये प्रेरित करता हुआ कलश में जा और श्वेत वर्ण धारण करता हुआ गोदुग्ध की इच्छा कर ।।३ (११)।।

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वा वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ।।१
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे
।।२।।१२

अभि प्रवः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ।।१
शतानीकेव प्रजिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्ररसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः
।।२।।१३

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ।।१
मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तनीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः
तवश्रवास्युपमान्यक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ।।२।।१४
(३-४)

हे इन्द्र ! हम स्तोता अन्न-प्राप्ति के लिये स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं । अन्य मनुष्य भी तुम्हे रक्षा के लिये बुलाते हुये संघर्ष उपस्थित होने पर पुकारते हैं ।।१ । हे वज्रिन् ! शत्रुओं को ताडना देने वाले तेरा हम स्तवन करते हुये ऐश्वर्य माँगते है ।।२ (१२) ।। पशु आदि धनों से ऐश्वर्यवान् इन्द्र हम स्तोताओं को सहस्रों धन देता है । उस इन्द्र को जैसे तुमसे बने वैसे उसकी उत्तम प्रकार से अर्चना करो ।।१।। जैसे शक्तिवान

पुरुष शत्रु सेना पर आक्रमण करता है, वैसे ही इन्द्र यजमान के नष्ट करने वाले पर आक्रमण करता हुआ उन्हें मारता है। परम ऐश्वर्यशाली इस इन्द्र के दिये धन यजमानों के पास स्थायी रहते हैं ॥२ (१३) ॥ हे वज्रिन्! तुम्हें हवि देने वाले यजमान साम पान कराते हैं। तुम मेरे स्तोत्र को इस यज्ञ में सुनो ॥१॥ सुन्दर चिबुक वाले! स्तुत्य इन्द्र! तुम्हारी सेवा करने वाले उपस्थित हैं। तुम सोम से तृप्त हो। सोमों के शुद्ध होने पर अन्न प्राप्त हो ॥२ (१४) ॥

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा ।१
जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषातिरश्वसा असि ॥२
सम्मिश्लो अरुषो भुव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥३॥१५
अयं पूषा रयिर्भगः सोम पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमसः कृण्वते पथः पवमानास इंदवः ॥२
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥३॥१६
वृषा मतीनाँ यवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशा
असिष्यदत् । त्रितस्य नाम जनयन्मध क्षरन्निन्द्रस्य वायु
सख्याय वर्धयत् ॥२

अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोक-
कृत् अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते
चारु मत्सरः ॥३॥१७ (३-५)

हे सोम ! देवताओं की कामना और राक्षसों का नाश करने वाला तुम्हारा हर्ष-दायक रस है उसके सहित पात्र में प्रविष्ठ हो ॥१॥ हे सोम ! तुम शत्रु-नाशक होते हुये संग्रामसेवी हो। साधक को गौ-अश्वादि के दाता हो ॥२॥ हे सोम ! तुम सुन्दर गौओ के दूध से मिश्रित, बाज के समान शीघ्र ही अपने स्थान (कलश) को प्राप्त हुये उज्ज्वल होते हो ॥३ (१५)॥ सर्व पोषक, आराध्य, धन-कारण सोम शुद्ध हुआ, पात्र मे स्थित हुआ प्राणियों का पालक और आकाश-पृथिवी को अपने तेज से प्रकाशित करता है ? ॥१॥ परम प्रिय उत्कृष्ट वाणियाँ स्पर्धा करती हुई स्तुतियाँ करती हैं। तब, सोम के हर्ष के लिये स्तुति करती हुई वाणियों से प्रशंसित प्रसिद्ध शुद्ध सोम टपकता रहता है ॥२॥ हे सोम ! इस शक्तिमान् रस को दुग्धादि से मिलाने के लिये हमें दो। जो रस चारों वर्णों को प्राप्य है उससे हम धन माँगते है ॥३ (१६)॥ स्तोताओं को अभीष्ट दाता दिवस, उषा काल, आकाश, जल आदि को बढ़ाने और चेतना देने वाला प्रशंसित सोम इन्द्र के हृदय में प्रविष्ट होने की इच्छा से कलशों में स्थित होता है ॥१॥ सनातन मेधावी सोम पवित्र होकर कलशों

में जाने के लिये सब ओर प्रवाहित होता है। वह त्रिलोक्य व्याप्त जलों को उत्पन्न करता और मित्र-भाव की वृद्धि करता और स्रवता है ॥२॥ वर्षक होने से लोको का कर्त्ता, सोम शुद्ध होता हुआ उषा को प्रकाशित करता और जलों से समृद्ध होता है। यह सोम हृदयस्थ होने को उत्सुक हुआ इन्द्रियों को दुहता हुआ मग्न करता है ॥३ (१७) ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्य मनः ॥१
एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र न. सचा ॥२
मो षु ब्रह्मे व तन्द्रयुर्भु वो वाजाना पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३।१८
इन्द्र विश्वा अवावृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतम रथीना वाजाना सत्पति पतिम् ॥१
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्
॥३॥१९॥ (३-६)

हे इन्द्र! तू संघर्ष काल में शत्रुओं को नष्ट करने की इच्छा वाला होता है। क्योंकि तू वीर और धीर है, अतः स्तुतियों से प्रसन्न करने योग्य है ॥१॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! सर्व देवों को हवि से पुष्ट करने वाले यजमान को गवादि धन देते ही हो,

अतः हम साधकों को भी धनादि देकर कर्मवान् बनाइये ॥२॥ हे अन्न-बल के स्वामी इन्द्र ! कर्म-रहित प्रमादी ब्राह्मण के समान तुम मत हो। इस शुद्ध गो-दुग्धादि भावित सोम-पात्र को प्राप्त कर सुखी कर सुखी हो ॥ ३ (१८) ॥ हमारी सभी स्तुतियों ने समुद्र के समान व्यापक, श्रेष्ठ रथी, अन्नों के अधीश्वर, सत्पथ गामियों के रक्षक इन्द्र की पुष्टि की ॥१॥ हे बल-रक्षक इन्द्र तुम्हारे सख्य भाव में मग्न हम अन्न युक्त हों और शत्रुओं से भय न माने। युद्ध विजेता, अपराजित तुम्हें, अभय प्राप्त करने के लिये मनाते हैं ॥२॥ इन्द्र तो अनादि काल से धन-दान करता आया है। इसलिये यह यजमान भी ऋत्विजों को गो-अन्नादि धन दक्षिणा में देता है तब इन्द्र की रक्षण शक्ति बहुत- सा धन देकर भी कम नहीं होती ॥३॥ (१९) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

ऋषि—जमदग्निः, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभार्गवो वा, कविर्भार्गवः, कश्यप. मेधातिथिः, काण्व., मधुच्छन्दा वैश्वामित्र, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, सप्तर्षयः, पराशरः, पुरुहन्माः, मेध्यातिथिः, काण्वः, वसिष्ठ, त्रित., ययातिर्नाहुषः पवित्रः, सोभरि, काण्वः, गोषूक्तयश्वसूक्तिनो काणयनौ, तिरश्ची.। देवता—पवमान, सोम, अग्नि, मित्रावरुणो, मरुत इन्द्रश्चः, इन्द्राग्नी, इन्द्रः,। छन्द—गायत्री, बार्हत प्रगाथ त्रिष्टुप्ः, बृहतोः, अनुष्टुप्ः, जगती, काकुभः प्रगाथः, उष्णिक्।

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशव ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥१
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
त्मना कृण्वन्तो अर्वत ॥२

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इडासस्मभ्यं संयतम् ॥३।१

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अन्तरिरक्षेण यातवे ।।१

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ॥२

आ न इन्द्रो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
बहा भगत्ति मूतये ।।३।।२

तं त्वा नृम्णानि विभ्रतं सधस्थेषु महो दिव.
चारुं सुकृत्ययेमहे ।।१

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रत मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२

अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिव ।
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥४

विश्वस्मा इत्स्वर्हशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोप मृतस्य विर्भरत् ।।५।।३

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्ज जनाय गिर्वण ।

हरे सृजान आशिरस् ॥२

पुनानो देववं तय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।

द्युतानो वाजिभिर्हित ॥३।४॥ (४-१)

छन्ने की ओर वेग से जाता हुआ यह सोम सब सौभाग्यों के लिये ऋत्विजों द्वारा सुसिद्ध होता है ॥१॥ अन्न–बल का दाता सोम अनेक दोषों को दूर करता हुआ हमारी सन्तानों और पशुओं को सुख देता ॥२॥ हमारी गौओं के और हमारे लिये दृढ़ अन्न-धन प्रदाता हुये सोम हमारी सुन्दर प्रार्थनाओं को सुनते हैं ॥३ (१)॥ मनुष्यों के यज्ञ-कर्मों मे तरल सोम स्तुतियों के साथ ही ऊपर से कलश में गिरते हैं ॥१॥ हे सोम ! दिव्य गुण पान करने के लिये शाधित किया गया, तू शत्रु को ताड़न करने वाले बल को हमे प्रदान कर ॥२॥ हे सोम ! सैकड़ों गौओं और घोड़ों के समूहयुक्त ऐश्वर्य के हमको प्रदाता बनो ॥३ (२) ॥ हे सोम ! आकाशस्थ धनों को हमारे लिये धारण करते हुये तुम्ह कल्याण रूप को उत्तम कर्मों द्वारा चाहते हैं ॥ ॥ उग्र रोगों का नाशक, प्रशमनीय गुणों का करने वाला, हर्ष–दायक, सैकड़ो की उन्नति करने वाला सोम हमको सुखी करे ॥२॥ हे श्रेष्ठकर्मा सोम ! ऐश्वर्य को प्राप्त होने वाले तुम्हे आकाश तत्वों से बाधा रहित बना कर पत्ते प्राप्त करते हैं ॥ ३ (३) ॥ कर्म-द्रष्टा, अभीष्टदायक सोम फल को प्रेरित करता हुआ उत्तम महिमा वाला होता है ॥४॥ जल-प्रेरक, यज्ञ-रक्षक, सब देवगण के लिये समान रूप से होने वाले सोम ! उत्तम पत्तों में प्राप्त हुये ॥५ (३) ॥

ऋत्विजों द्वारा शोधित सोम ! तू हमारे लिये धार युक्त हुआ पात्र में गिर तथा पशुओं को भी प्राप्त हो ॥१॥ वाणी द्वारा स्तुत्य हरित वर्ण वाले सोम ! दूध में डालकर शुद्ध किया जाता हुआ तू साधकों को अन्न-धन प्राप्त कराने वाला बन ॥२॥ हे सोम ! हवि-धारक यजमानों से दीप्त यज्ञ के लिये शुद्ध हुआ हितकारी तू इन्द्र के स्थान को प्राप्त हो ॥३ (४) ॥

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।

हव्यवाड् जुह्वास्य' ॥१

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।

तस्य स्म प्राविता भव ॥२

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।

तस्मै पावक मृडय ॥३॥५

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।

धियं घृताची साधन्ता ॥१

ऋतेन मित्रावरुणावृता वृधावृतस्पृशा ।

क्रतुं बृहन्तमाशाथ ॥२

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।

दक्षं दधाते अपसम् ॥३॥६

इन्द्रेण स हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा

मन्दू समानवर्चसा ॥१

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥२

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥३॥७

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्व पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥१

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृडात ईदृशे ॥२

हथो वृत्राण्यार्या हथो दासाति सत्पती ।
हथो विश्वा अप द्विषः ॥३॥८ (४-२)

मेधावी गृहस्थ का रक्षक युवा हविवाहक अग्नि आह्वानीय अग्नि से मिलकर उत्तम प्रकार से प्रज्ज्वलित होता है ।।१।। हे अग्ने ! जो हविदाता देवताओं को हवि प्राप्त कराने वाले तुम्हारी उपासना करता है उसके तुम अवश्य रक्षक हो ।।२।। हे अग्ने ! जो देव-यजन करने वाला हवियुक्त यजमान तुम्हारे पास आकर उत्तम कर्म करता है, उसे सुखी बनाओ ॥३ (५)।। बल वाले मित्र और हिंसकों के भक्षक वरुण को इस यज्ञ में हवि देने के लिये आह्वान करता हूँ । वे दोनों पृथ्वी पर जल पहुँचाने वाले कर्म में सिद्धहस्त हैं ।।१।। हे मित्र और वरुण ! तुम सत्य और यज्ञ को पुष्ट करते हो । इस साँगोपांग सोम याग को तुम सत्य से पूर्ण करते हो ।।२।। मेधावी, उपकार के लिये उत्पन्न, यजमान के यहाँ स्थित मित्र और वरुण हमारे कर्म और बल को दृढ़ करने वाले हैं ।२ (६) ॥ सदा प्रसन्न तेजस्वी मरुद्गण

निडर इन्द्र के साथ सबको दर्शन दें ।।१।। वर्षा ऋतु के पश्चात् होने वाले अन्न जल के लिये यज्ञ-धारण मरुद्गण मेघों को पुनः प्रेरित करते हैं ।।२ । हे इन्द्र ! तुमने दृढ़ स्थान को भेदने वाले, वाहक मरुद्गणों के साथ गुफा में गौओं को प्राप्त किया ।।३ (७)।। उन इन्द्र और अग्नि को बुलाता हूँ जिनका पूर्व काल में किया हुआ पराक्रम ऋषियों द्वारा स्तुत्य है । वे दोनों साधकों के हिंसक नहीं हैं, अतः हमारी रक्षा करें ।।१।। महाबली, शत्रु-नाशक इन्द्र और अग्नि को हम बुलाते हैं । वे इस संघर्ष मे हमें सुख दें ।।२।। हे इन्द्र और अग्ने ! तुम कर्मवानों के संकट दूर करते हो । सत्पुरुषों के रक्षक तुम कर्महीनों के उपद्रवों को शत्रुओं सहित नष्ट करते हो ।।३ ८) ।।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ।।१
तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ।।२
नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रय ।।३।९
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनोषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ।।१
सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ।।२।।

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति। इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं-जनया पुरन्धिम् ॥३॥१० (४-३)

गतिमान् मन वाले, हर्षप्रदायक, तरल सोम कलश के ऊपर छन्ने पर गिर कर रस निकालते हैं ॥१॥ शुद्ध होता हुआ दिव्य सत्यरूप सोम धार बनकर कलश मे जाता और प्रेरित हुआ वह मित्र और वरुण के लिये निकलता है ॥२॥ ऋत्विजो द्वारा शोधित, इच्छा करने योग्य विशेष द्रष्टा दिव्य अन्तरिक्षस्थ सोम इन्द्र के लिये शुद्ध किया जाता है ॥ ३ (९) ॥ यजमान साम रूप तीन वाणियो को बोलता हुआ यज्ञ-धारक सोम की कल्याण करने वाली वाणी बोलता है। गौयें बछड़ों को प्राप्त होने स्थान पर सोम को दुग्ध युक्त बनाने के लिये प्राप्त होती है, तब अभीष्ट वाले साधक स्तवन करते हैं ॥१॥ तृप्तकारक धेनु सोम की इच्छा करती है। स्तोता सोम की स्तुति करते है संस्कारित सोम को ऋत्विज शुद्ध करते है। हमारे द्वारा बोले गये मन्त्र को बढ़ाते हैं ॥२॥ हे सोम! पात्रो में सीचा जाने वाला तू हमारे कल्याण को हर्षप्रदायक रूप से इन्द्र के हृदय मे प्रवेश करो ॥३ (१०) ॥

यद्याव इन्द्र ते शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ट शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे-
वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२॥११

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृषनबर्हिष ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिन. ।
कदा सुत तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाज दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशगरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥१२

तरणिरित्सिषासति वाज पूरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूत नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥१

न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्त रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं—
यत्पार्ये दिवि ॥२॥१३ (४।४)

हे इन्द्र! आकाश-पृथ्वी भी तुम्हारी समता नहीं कर सकते, हे वज्रिन्! हजारों सूर्य भी तुम्हारे प्रकाश से समता नहीं कर सकते ॥१॥ हे अभीष्ट पूरक इन्द्र! तुम अपने बल से हमको पूर्ण करते हो। हे वज्रधर! हमारा पालन करो ॥२(११)॥ हे इन्द्र! जल के समान नम्र हुये तुम्हें प्राप्त करते हैं। हे व्यापक इन्द्र! सिद्ध सोम की प्राप्ति पर स्तोता तुम्हारी स्तुति उच्चारण करते और सोम के लिये तृषित हुआ तू हर्षयुक्त कब आवेगा? ॥२॥ हे चतुर साधकों को अन्न-धन देने वाले इन्द्र! सुवर्ण धन और गवादि को हम माँगते हैं ॥३ (१२)॥ शीघ्रकर्मा बुद्धिमान पुरुष कर्मों द्वारा अन्न प्राप्त करता है। अनेकों द्वारा स्तुत्य इन्द्र

को मैं उपयुक्त करता हूँ ॥१॥ धन दाताओं के लिये बुरे शब्द नहीं कहे जाते। धन देने वाले की प्रशंसा न करने वाले को धन नहीं मिलता। हे धनिक इन्द्र! सोम संस्कार के समय देय धन को सुन्दर स्तुति गाने वाला ही तुम से प्राप्त करता है। २ (१३)॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥१

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।
मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥२

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥३॥१४

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥१

इंदुरिन्द्राय पवत इति देवासोअब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥२

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥३॥१५

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्तनूर्नतदामो अश्नुते श्रृतास इद्वहंतः सं तदाशत ॥१
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चतो अस्य ततवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवःपृष्ठमधि रोहति तेजसा ॥२

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः
पितरो गर्भ मा दधुः॥३ ॥१६॥ (४-५)

ऋत्विजगण तीन वेद-वाणियों को बोलते हैं । दुधारु धेनु रंभाती हैं । हरे रंग का सोम शब्द को करता हुआ कलशों में जाता है ॥१॥ यज्ञों की निर्मात्री स्तुतियाँ आकाश से शिशु-रूप सोम को पवित्र करती हुई लाती हैं ॥२॥ हे सोम ! धन वाले चारों पदार्थों को हमारे लिये दो तथा सहस्रों अभीष्टों को सिद्ध करो ॥३ (१४)॥ अत्यन्त मधुर, हर्षयुक्त, संस्कारित सोम इन्द्र के लिये प्राप्त होते हैं । हे सोमो ! तुम्हारे रस इन्द्रादि को प्राप्त हों ॥१॥ इन्द्र के लिये सोम कलशों में गिरता है । स्तोता कहते हैं कि स्तुति–पालक बलवान विश्वेश्वर सोम स्तुतियों से पूजा जाता है ॥२॥ स्तुति-प्रेरक धनेश, इन्द्र का मित्र, रूप रस सहस्रो धार वाला सोम कलश में जाता है ॥३ १५॥ हे मंत्रेश ! तेरा शोधित अङ्ग विस्तृत है । तू शरीर को प्राप्त होता है । व्रतो से न तपा हुआ शरीर व्याप्त नहीं होता । परिपक्व होने पर ही वह मुझे चख पाता है । शत्रु-तापक सोम का शुद्ध अंग उच्चता को प्राप्त है । इसकी दीप्ति अनेक प्रकार स्थित होती है । इसका शीघ्र प्रभावकारी रस यजमान का रक्षक होता है ॥१॥ उषा वाला सूर्य प्रकाशवान है । जल वर्षक सब लोकों में वर्षा करता हुआ अन्न चाहता है । रचयिता इस सोम शक्ति से संसार को रचता हुआ मनुष्यों को दृष्टा पालक पितरों द्वारा गर्भ धारण कराता है ॥ ३(१६) ॥

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥१

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्नयाहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्
॥२।१७

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१
येन ज्योतीष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य वर्हिषो वि राजसि ॥२
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥३॥१८
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धिः महाँ असि ॥१
यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२
तमु ष्टवाम यं गिर इद्रमुक्थ्यानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३।१६॥(४-६)

हे स्तोताओ ! तुम परम दान देने वाले, यज्ञ-कारण, महान् तेजस्वी अग्नि की प्रार्थना करो ॥१॥ धन-अन्न वाले यशस्वी प्रदीप्त अग्नि, पुत्र-युक्त अन्न को यजनकर्त्ता को देता है। इस अग्नि के द्वारा हम सुमति को प्राप्त करें ॥२(१७)॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे अभीष्टपूरक, शत्रु नाशक, लोक रचयिता रूप और सोम-पीने से उत्पन्न आह्लाद की सब प्रशंसा करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! जिस शक्ति से तुमने आयु वाले वैवस्वत मनु के लिये

सूर्यादि के तत्वों को प्रकाशित किया, उसी शक्ति से हर्षित हुये तुम सुशोभित होते हो ।। २ ।। हे इन्द्र ! तुम्हारे प्रसिद्ध पराक्रम की मन्त्र ज्ञाता ऋषि प्रशसा करते हैं। तुम जलों के प्रति मेघ को वश में रखने वाले हो ।।३ (१८) ।। तुमको हवि देकर उपासना करने वाले ऋषि के आह्वान को सुनो और हे इन्द्र ! हमको श्रेष्ट पुत्र तथा गवादि पशु युक्त धन देकर पूर्ण बनाओ, क्योंकि तुम महान् हो ।।१।। जो पुनः पुनः अत्यन्त नूतन स्तुतियों को तुम्हारे लिये रचता है, उस स्तोता को तुम सनातन सत्य से वृद्धि को प्राप्त हुई बुद्धि दो ।।२।। हम पूर्वोक्त इन्द्र का ही स्तवन करते हैं। जिस इन्द्र की वृद्धि का कारण हमारी स्तुतियाँ हैं, उसके अनेक पराक्रमों की प्रशंसा करते हुये हम अर्चन करते हैं ।।३ (१६) ।।

तृतीय प्रपाठक

(प्रथमोऽर्धः)

(ऋषि—अकृष्टा माषाः, अमहीयु. मेध्यातिथिः, बृहन्मतिः, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वाः, सुतभर आत्रेयः गृत्समदा गोतमो राहुगणः, वसिष्ठः, दृढच्युत आगस्त्यः सप्तर्षयः, रेभः काश्यपः, पुरुहन्माः, असित; काश्यपो देवलो वाः, शक्तिः, उरुः, अग्निश्चीक्षुषः, प्रतर्दनो देवोदासिः, प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः गृहपतियविष्ठो सहसः सुतो तयोर्वान्यतरः, भृगुः । देवता—पवमानः सोमः, अग्निः, मित्रावरुणौः इन्द्रः, इन्द्राग्नि । छन्द्र—जगती, गायत्री, बार्हतः प्रगाथः अनुष्टप्, जगनी, बृहती, काकुभः प्रगाथः, उष्णिक्, त्रिष्टुप,)

प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्र न्
पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषि-
षाण वेधसः ॥१

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति
केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु
सीदति ॥२

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि
यन्ति केतवः ।
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य
राजसि ॥ ३१

पवमानो अजीज नद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
बृहत् ॥१

पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।
वि वारमव्यमर्षति ॥२

पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ३॥२

प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१

सुविस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् ।

साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिण. ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्ववत् सोम वीरवत् ॥४
पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषा सूर्यो न रश्मिभिः ॥५
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वत ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥३॥(५-१)

हे सोम ! तेरी तृप्तिदायक धारायें दूध से मिली कलश को प्राप्त होती हैं। ऋषियों द्वारा सेवित तुम्हें जो ऋत्विज शुद्ध करते हैं, वह तुम्हारी धाराओं को ऊपर से पात्रों में डालते हैं ॥१॥ संस्कारित सोम की किरणें सर्वत्र फैलती हैं। जब वह शुद्ध किया जाता है तब पात्रों में भरा जाता है ॥२॥ हे सर्वद्रष्टा सोम ! तेरी शक्तिमान किरणें सब देवताओं को प्रकाशित करती हैं। हे व्यापक स्वभाव वाले ! तू रस निचुड़ने पर पवित्र होता है ॥३ (१)॥ शुद्ध हुआ सोम वैश्वानर ज्योति को आकाश के समान प्रकट करने वाला हुआ ॥१॥ हे उज्ज्वल तरल रूप सोम ! तेरा रस दुष्टों को वर्जित है। वह शुद्ध हुआ पात्रों को पूर्ण करता है ॥२॥ हे सोम ! शुद्ध किया जाता तू बलदायक उज्ज्वल रस से युक्त है और व्यापक तेज को देखने की शक्ति देने वाला होता है ॥३ (२)॥ जलों के समान वेगवान, उज्ज्वल, गतिमान, काले धब्बे वाली त्वचा को हटाते हुये जो सोम पात्रों में स्थित हुये उनका हम स्तवन करते हैं ॥१॥ सुन्दर रूप से प्राप्त हुये सोम

को राक्षसों के बन्धन से बचने को प्राप्त होते हैं। हम कर्म-रहित दुष्टों के दमन में समर्थ हों ॥२॥ वर्षा के शब्द के समान संस्कृत सोम का शब्द रस गिरने के समय सुनाई देता है। उस बलशाली सोम का प्रकाश अन्तरिक्ष में घूमता है॥३॥ हे पात्र स्थित सोम! तुम गौ, अश्व, सन्तान और सुवर्ण वाले बहुत से धनों को प्रदान करने वाले होओ ॥४॥ हे विश्वदृष्टा सोम! अपने रस से आकाश-पृथ्वी को भर दो जैसे सूर्य दिन को अपनी रश्मियों से भर देता है ॥५॥ हे सोम! हमको सुखी बनाने वाली धार को पृथ्वी के जलों में आविष्ट कर सर्वत्र प्रवाहित करो ॥६ (३)॥

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।

यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥१

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।

वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।

विचक्षाणो विरोचयन् ॥४

आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।

इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६।४

हिन्वन्ति सूरमुस्रय· स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दु महोयुवः॥ १

पवमान रुचारुचा देव देवेभ्य मुत. ।
विश्वा वसून्या विश ॥२

आ पवमान सुष्टुति वृष्टि देवेभ्यो दुव. ।
इषे पवस्व संयतम् ॥३॥५॥ (५—२)

हे महती बुद्धि वाले सोम ! देव-प्रिय धार रूप से इन्द्रादि के निकट शीघ्र प्राप्त होओ ॥१॥ संस्कार-रहित यजमान को संस्कारित करता हुआ उसे अन्न प्राप्त कराने वाली वर्षा का कारण-भूत हो ॥२॥ दिव्य लोक में मन्द गति वाला सोम ऊपर से डाला जाकर शुद्ध होता हुआ जल रूप में टपकता है ॥३॥ सिद्ध सोम उज्ज्वल हुआ सर्वदर्शक बनकर देवताओं को दीप्त करता हुआ बल सहित प्राप्त होता है ॥४॥ सिद्ध सोम दूर और पास के देवताओं को रस पान कराता हुआ मधु के समान छाना जाता है ॥५॥ कर्म प्रेरणा वाली बन्धुभाव से मिली हुई अँगुलियां सोम को शुद्ध करने की इच्छा वाली हुईं, सोम को पात्रों में भरती हैं ॥१॥ तेज से दमकते हुये सोम ! तू देवताओं के लिये शुद्ध किया गया हमको बहुत-सा धन दिलाने वाला हो ॥ २ ॥ हे सोम ! उत्तम स्तुत्य वर्षा को देव-परिचर्या के लिये प्राप्त कराओ । हमें अन्न प्राप्त कराने को ठीक प्रकार से वर्षा करो ॥३ (५) ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः
शुचिः ॥१

त्वामग्ने अंगिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं
वने वने ।

स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः
सहसस्पुत्रमंगिरः ॥२

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे
समिन्धते ।

इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय
सुक्रतुः ॥३।६

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥१

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आशाते ॥२

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥३॥७

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥१

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद्विदच्छर्यणावति ॥२

अत्राह गोरमन्वत् नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चंद्रमसो गृहे ॥३॥८

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि । १

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनत गिरः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥२

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
मा नो रीरधतं निदे ॥३।८॥ (५।३)

यजमान की रक्षा करने वाला, महाबली अग्नि, लोक-कल्याण के लिये प्रकट हुआ । फिर घृत से प्रदीप्त आकाशगामी तेज से युक्त ऋत्विजों के लिये प्रकाशवान हुआ ॥१॥ हे अग्ने ! ऋषिगण गुफाओं में वृक्षों द्वारा तुम्हें प्राप्त करते हैं । तुम मथे जाने पर प्रकट हुये को बल का पुत्र कहा जाता है । २॥ कर्मवान् ऋत्विज, यजमानों द्वारा आगे किये अग्नि को तीन स्थानों मे प्रज्वलित करते हैं । फिर वह अग्नि देवताओं को आह्वान करने वाला यज्ञ के लिये प्रतिष्ठित किया जाता है ।।३ (६) ॥ सत्य की वृद्धि करने वाले मित्र और वरुण देवों के लिये यह सोम सिद्ध किया है अतः वे इस यज्ञ में पधारें ॥१॥ ईश्वर के अनुगत मित्र और वरुण सहस्र-स्तम्भ वाले उत्तम सभा मंडप में पधारें ॥२॥ सब के शासक, घृतभोजी, अदिति पुत्र, धनाधिपति वह मित्र-वरुण हवि को यजमान के लिये सेवन करते हैं ॥३(७)॥ अनुकूल विचार वाले इन्द्र ने दधीचि की अस्थियों से नव्वे संघर्षों में आठ सौ दस राक्षसों को मारा ॥१॥ पर्वतों में स्थित दधीचि के सिर की कामना करते हुये इन्द्र ने उसे जाना और उससे राक्षसों को नष्ट किया ॥२॥ चन्द्र मंडल में सूर्य की किरणें हैं, वे अन्तर्हित हुईं रात्रि के समय प्रतिबिम्बित होती हैं । यह इन्द्र जानता है ॥३(८ ॥ हे इन्द्र और अग्ने ! तुम्हारे लिये मेघ के समान यह

मुख्य स्तुतियाँ, स्तुति करने वालों ने रचीं ।।१।। हे इन्द्र और अग्ने ! स्तुति करते वालों की प्रार्थना पर ध्यान दो। तुम ईश्वर रूप होते हुये हमारे कर्मों का फल प्रदान करो ।।२।। हे कर्म की प्रेरणा करने वाले इन्द्र और अग्ने ! हमें दीन मत बनाओ। शत्रु द्वारा हिंसा के लिये और मेरी निन्दा के लिये मुझ पर अधिकार न करो ।।३ (९)।।

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ।।१
सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रिय ।
पवमानो अदाभ्यः ।।२
पवमान धिया हितोऽभि योनि कनिक्रदत् ।
धर्मणा वायुमारुहः ।३।१०
तवाह सोम रारण सख्य इन्द्रो दिवेदिवे ।
पुरूणि वभ्रो नि चरन्ति मामव परिधी रति तां इहि ।१
तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो वभ्रऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्य परः शकुना इव पप्तिम ।२।११
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ।१
आ योनि मरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
ध्रुवे सदसि सीदतु ।.२
नू नो रयि महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ।।३।१२।। (५-४)

हे पाप-नाशक सोम ! तू बल और हर्ष को उत्पन्न करने वाला देवताओं के लिये पात्र में जा ॥१॥ कामनाओं का वर्षक उज्ज्वल स्वस्थान को प्राप्त, तृप्ति कर, सिद्ध, सोम देवताओं को प्राप्त हुआ सुशोभित होता है ॥ २ ॥ हे सोम ! हमारी अँगुलियों से सिद्ध हुआ तू शब्द सहित वायु वेग से पात्र में जा ॥३ (१०)॥ हे स्रवित सोम ! तुम्हारे मित्र-भाव में लगा हुआ मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हारे सख्य भाव को प्राप्त हुये अनेक दैत्य बाधक हो गये हैं, उनका नाश करो ॥ १ ॥ हे सोम ! मैं दिन रात तुम्हारी मित्रता चाहता हुआ तुझ दीप्तमान को प्राप्त करूँ ॥ २ (११) ॥ संस्कार किया जाता सोम हिसकों को प्रबल होता है। हम उसकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ सोम के कलश में स्थित होने पर अभीष्ट-वर्षक इन्द्र शोधित सोम को प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे पात्र मे प्रविष्ट होने वाले सोम ! हमें शीघ्र ही बहुसंख्यक धन को प्रदान कर ॥ (१२) ॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा य ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा । १
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमाँ यां
ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३।१३
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः
सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्र मोजिष्ठं तरसंतरस्विनम् ।१

नेमि नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।

सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विन समृक्वभिः ।।२

समु रेभासो अस्वरन्निन्द्र सोमस्य पीतये ।

स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ।।३।१४

यो राजा चर्षणीना याता रथेभिरघिन्गु ।

विश्वासा तरुता पृतनानां ज्येष्ठ यो वृत्रहा गृणे ।।१

इंद्रं त शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।

हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो ।

महान्देवा न सूर्यः ।।२।१५।। (५-५)

हे इन्द्र ! सोम-पान करो, वह तुम्हारे लिये आनन्ददायक हो। पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम तुम्हें आनन्दित करे ।।१।। हे इन्द्र ! तेरे योग्य हर्षप्रदायक सोम, जिसे पीकर राक्षसों का नाश करते हो, तुम्हारे लिये आनन्ददायक हो ।।२।। हे इन्द्र ! उत्तम जितेन्द्रिय पुरुष तुम्हारी जिस स्तुति रूप वाणी को कहता है, उस वाणी को स्वीकार कर यज्ञशाला में अन्न रूप हवि ग्रहण करो ।।३ (१३) ।। सभी संघर्षों को मिटाने वाले इन्द्र को साधक-गण एकत्रित हुये, स्तुतियों द्वारा सूर्य रूप इन्द्र का आह्वान कर विघ्न और शत्रुओं के नाश के लिये उस महाबली इन्द्र का स्तवन करते है ।।१।। हे स्तुति करने वालो ! किसी से भी वैर न करने वाले तेजस्वी तुम स्तुति और कर्म करने वाले हो। अतः इन्द्र की उत्तम प्रकार से स्तुति करो ।।२।। सोम को पीने के लिये स्तोता

इन्द्र की स्तुति करते हैं। जब वह वृद्धि करने की इच्छा करता है तब रक्षा-साधनों से पूर्ण होता है ॥३ (१४)॥ मनुष्यों के स्वामी इन्द्र की गति को कोई नहीं रोक सकता। मैं उस शत्रु-नाशक का स्तवन करता हूँ ॥१॥ हे शत्रु-नाशक इन्द्र की उपासना करने वाले यजमान! रक्षा के लिये इन्द्र की हवि दे। वह शत्रु के प्रति तीक्ष्ण और तुम पर अनुग्रह करने वाला महान है ॥२(१५)॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयासि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥२

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।
वीत्यर्ष पनिष्टये ॥३।१६

त्वं ह्यांग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥१

येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२।१७

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पावमानः कनिक्रदत् ॥१

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्त मत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥२

असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥३।१८

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता
दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्य्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो. ॥१
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणा
महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः
पवित्रमत्येति रेभन् ॥२
प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिर
स्तोमान पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृ जनेमावराण्या
तिष्ठिति वृषभो गोषु जानन् ॥३।१६॥(५-६)

कर्म साधक बुद्धि का दाता मेधावी सोम पाषाणों से निष्पन्न अध्वर्युओं द्वारा प्राप्तव्य है ॥१॥ सब हवियों में उत्तम वह सोम यज्ञ की वृद्धि करने वाला विश्व नियता सूर्य मण्डल और पृथिवी को प्रकाशित करने वाला है ॥२॥ हे सोम ! बैर-रहित उपासक द्वारा मनुष्य के सेवन के लिये पर्याप्त तू स्तुति के लिये यहाँ आ ॥३ (१६) ॥ हे दिव्य सोम ! तू शीघ्र शब्दवान हुआ अमरत्व को प्राप्त कराने वाला हो ॥१॥ श्रेष्ठ ऋषि जिस सोम से यज्ञ के द्वार को खोलता है, ऋत्विज जिस सोम से इन्द्रादि को सुख देता है वह सोम श्रेष्ठ जल युक्त अन्नों को, यजमान को प्राप्त करावे ॥ २ (१७) ॥ सिद्ध होता

हुआ सोम ऊन के छन्ने में अपने धार से जाता हुआ स्तोत्र को प्राप्त हुआ शब्द कराता है ॥ १ ॥ ऋत्विज गण जल में क्रीड़ा करते हुये सोम को अंगुलियों से शुद्ध करते और कलश में जाते हुये सोम की स्तुतियों द्वारा प्रशसा करते हैं ॥२॥ यजमानों को अन्न की इच्छा करने वाला सोम, युद्ध में छोड़े जाने वाले अश्व के समान छोड़ा गया, शब्द करता हुआ पात्रों मे स्थित होता है ॥३ (१८) ॥ बुद्धि का जनक, आकाश का नियता पृथिवी को विस्तार देने वाला, अग्नि और सूर्य का प्रकाशक, इन्द्र और विष्णु को भी प्रकट करने वाला सोम पात्रों में जाता है ॥१॥ ऋत्विज-श्रेष्ठ ब्रह्म परम मति से पद योजना करने वाले सोम को शब्द करते हुये छानते हैं ॥ २ ॥ प्रवाहित नदी जैसे शब्द समूह को प्रेरित करती है, उसके समान सोम मन के प्रिय शब्दों प्रेरणा देता है। वह विजय के ज्ञान वाला पराक्रम को प्राप्त कराता है ॥३ (३ ॥

अग्नि वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥
अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥२
अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥३॥२०
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥१॥
न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
न किष्ट्वान मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥२॥

इंद्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठ नमस्यता सहः ॥३॥२१
इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
पिवा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१
इन्द्र जठरं नव्य न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वार्नोप त्वा मदा सुवाचो अस्थु ॥२
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद बल भृगुर्न ससाहे शत्रून्
मदे सोमस्य ॥३।२२ (५-७)

हे ऋत्विजो ! बलवानों के मित्र, लपटों से वृद्धि को प्राप्त हुये अग्नि को प्राप्त करो ॥१॥ बढ़ई जैसे अपने कार्यानुकूल काष्ठों को प्राप्त होता है वैसे यह अग्नि हमको प्राप्त हो और हम इस अग्नि के विज्ञाता हुये यशस्वी बनें ॥२॥ सब देवताओं में यह अग्नि ही मनुष्य के वैभव को प्राप्त होता है । वह अग्नि हमें अन्नों के साथ मिले ॥३ (२०) ॥ हे इन्द्र ! आनन्ददायक प्रशंसनीय, जो अन्य मादक द्रव्यों के समान अहितकर नहीं हैं, ऐसे संस्कारित सोम का पान करो । यज्ञशाला में स्थित सोम की उज्ज्वल धारायें तुम्हें प्राप्त होने को झुकती हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य कोई रथी नहीं है, तुम्हारे समान बलवान भी कोई नहीं है, उत्तम अश्व-पालक भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता ॥२॥ हे ऋत्विजो ! इन्द्र की शीघ्र पूजा करो, उत्तम मन्त्रोच्चार द्वारा यह शुद्ध सोम इन्द्र के लिये आनन्द देने वाले बनें, फिर उस अत्यन्त प्रशंसित इन्द्र को प्रणाम करो ॥३ (२१)॥ हे वीर्यवान इन्द्र ! मेरे द्वारा दी गई हवियों को आकर ग्रहण करो । तुम आनन्द प्राप्ति की इच्छा करते हुये इस

संस्कारित, चेतनाप्रद सोम का पान करो॥ १ ।। हे इन्द्र ! इस संस्कारित मधुर सोम के स्तुत्य दिव्य गुण और आह्लाद तुम्हारे समीप उपस्थित हैं। तुम स्वर्ग तुल्य अपने उदर को इससे भर लो ।।२।। हे युद्ध मे धीर इन्द्र ! मित्र के समान शत्रु का संहार करते हुये, दुष्टों के बल को हटाते हुये, सोम की तरङ्ग में साहसी कर्म करने वाले हो ॥३ (२२) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

ऋषिः— अकृष्टा माषाः, सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजास्त्रय: ऋषिगणाः कश्यपः, असितः काश्यपो देवलो वा, अवत्सारः, जमदग्नि अरुणी वैतहव्याः, उरुचक्रिरात्रेयः कुरुसुतिः काण्वः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वाः, सप्तर्षयः, गोतमो राहूगणः, ऊर्ध्वसद्मा, कृतयशाः, त्रितः, रेभसूनू काश्यपौ, मन्युर्वासिष्ठः, वसुश्रुत आत्रेयः, नृमेधः । देवता— पवमानः सोमः, अग्निः, मित्रावरुणोः, इन्द्रः, इन्द्राग्नी। छन्दः—जगती, गायत्री, बृहतीः पङ्क्तिः, काकुभः प्रगाथः, उष्णिक्, अनुष्टुप, त्रिष्टुप् ॥

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इंदो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं
त्वा नर उप गिरेम आसते ॥१॥
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२॥
ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इंदो हरितः सुपर्ण्यः।

तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं ।
पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३॥१
पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥१
केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥२
जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
क्रन्दन् देवो न सूर्यः ॥३॥२
प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इंदवः ।
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥१

अभि गावो अधन्विषुरापो प्रवता यतीः ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥२
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३
इन्द्रो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥५
पवस्व बृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥६
शुचि पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।
देवावीरघशंसहा ॥७॥३॥ (६॥१)

हे सोम ! तू गो, धन, सुवर्ण प्राप्त कराने वाला, धारक, जलों में स्थित, पात्र मे प्रविष्ट हो। तुम वीर, विश्व ज्ञाता को यह ऋत्विज वाणी से पूजा करते है ।।१।। हे सिद्ध होते हुये अभीष्ट वर्षक सोम ! तू सब लोको में मनुष्य का साक्षी-रूप सर्वत्र व्याप्त है। हमारे लिये टपक। हम ऐश्वर्य युक्त हुये जीवन-धारण में समर्थ हों ।।२।। हे सोम ! तू सबका स्वामी हुआ सब भुवनों को प्राप्त होता है। तेरे मधुर, दीप्त जल को प्राप्त कर तेरे कर्म में स्थित हों ।।३ (१) ।। हे विश्व-द्रष्टा सोम ! शोधित हुये तेरी धारायें सूर्य-रश्मियों जैसी चमकती हैं ।। १ ।। हे सोम ! रसवाहक तू चेतनाप्रद हमारे सब रूपों को शुद्ध करता हुआ विभिन्न धनों का देने वाला है ।। २ ।। हे सोम ! प्रकाशित सूर्य के समान उत्पन्न तू पवित्रे मे जाकर ध्वनि को प्रेरित करता है ।।३ (२) ।। हे दीप्त तरल सोम ! प्राप्त हुआ गोदुग्धादि से मिलकर जलो मे भाषित होता है ।।१।। नीचे को जाते हुये गतिमान सोम जलों के समान छन्ने को प्राप्त हों शुद्ध होकर इन्द्र को तृप्त करते हैं ।।२।। हे सस्कारित सोम। तू इन्द्र के लिये आह्लादक हुआ पवित्रे मे पहुँचता और ऋत्विजों द्वारा ग्रहण किया जाता है ।।३।। हे सोम ! तू पाषाणो से निष्पन्न हुआ छन्ने में जाता है तब इन्द्र के उदर का भरने वाला होता है ।।४।। हे सोम ! मनुष्यों को आनन्दप्रद तू सुसंस्कारित होकर स्तवन के योग्य बन ।।५।। हे सोम ! मन्त्रों द्वारा स्तुत्य तू पवित्रताप्रद और महान है। शत्रु के नाश मे भी प्रसिद्ध है ।।६।। सुसिद्ध मधुर, सोम स्वयं शुद्ध और अन्यो का भी शोधक है। देवताओं को तृप्त करने वाला वह पाप और राक्षसों के नाश करने वाला बताया जाता है ।।७ (३)।।

प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ।।१

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥२

परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥३

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥६

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७।४

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव ।
विश्वा च सोम सौभगा ॥१

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२

उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥३

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥४।५

यास्ते धारा मधुश्च्युतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥१

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वारण्यव्यया ।
सो दन्नृतस्य योनिमा ॥२

त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अंगिरोभ्यः ।
वरिवोविद् घृतं पयः ॥३।६ (६-२)

देवताओं के पान करने योग्य सोम छन्ने को प्राप्त हुआ शत्रुओं को सहने वाला, संघर्षी और हिंसा करने वालों का प्रतीकार करता है ॥१॥ संस्कारित सोम स्तोताओं को गौ-अन्न आदि का देने वाला है ॥२॥ हे सोम ! हमारी प्रार्थना से शोधा गया तू हमें मन करके सब धन और अन्न का दाता हो ॥३॥ हे सोम ! हवि देने वाले हम साधकों को यश, धन और अन्न प्रदान कर ॥४॥ यश-निर्वाहक, सस्कारित, महान् सुकर्मा सोम ईश्वर के समान हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है ॥५॥यज्ञ-निर्वाहक वह सोम जल-भावना से संस्कार किया गया पात्रों मे रक्खा जाता है ॥६॥ हे सोम ! यज्ञ के समान दान का इच्छुक तू स्तोताओं को वीरता प्रदान करता हुआ छन्ने पर गिरता है ॥७(४)॥ हे सोम ! हमें बार बार सिद्ध हुई रस धार से युक्त कर और सब सौभाग्यों का प्रदाता बन ॥१॥ हे सोम ! तेरा अन्न रूप स्तवन तेरे लिये ही उत्पन्न हुआ है, तू हमारे यज्ञ मे तृप्त करने वाला हो ॥२॥ हे सोम ! हमको गाय-अश्व दिलाने वाला तू अत्यन्त शीघ्र अन्न रूप वर्षा कर ॥३॥ हे शत्रु-विजेता सोम ! तू जिन्हें जीतता या जिनके द्वारा नहीं जीता जाता वह तू धारा युक्त वर्षा कर ॥४ (५)॥ हे सोम ! तेरी मधुर रस वाली धारायें रक्षा के निमित्त उत्पन्न

की जाती हैं उन धारों से छन्ने में जा ।।१।। हे सोम ! तू गिरता हुआ छन्ने में जाता है, अतः इन्द्र के लिये पेय बन ।।२।। हे परम स्वादिष्ट सोम ! हमको अभीष्ट धन दिलाने वाला तू अग-अग को दिव्य बनाने के लिये दूध के समान सार रूप से बरस । ३(६)।

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्न-
मासनि ।।१

वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वि तिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्योऽयथा पृथक् शर्द्धास्यग्ने अजरस्य
धक्षतः ।।२

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्नि होतारं परिभूतरं
मतिम् । त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो—
वृणते नान्यं त्वत् ।।३।७

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ।।१

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च ।
वयं वां मित्रा स्याम ।।२

पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथा सुत्रात्रा ।
साह्याम दस्यून् तनूभिः ।।३।८

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपय. ।

करने वाले तुम दोनों द्वेष न करने वालों का स्तवन करें। हम तुम्हारी मित्रता प्राप्त करें और उत्तम अन्न तथा निवास वाले हों ॥२॥ हे मित्र और वरुण ! तुम हमारी रक्षा करो और श्रेष्ठ पदार्थों से पोषण करो। हम पुत्रादि से युक्त हुये शत्रुओं को वश में करें ॥३ (८) ॥ इन्द्र ! तू पात्र में सुरक्षित सोम को पीकर बल से उन्नत हुआ, चिबुक को कम्पित कर ॥१॥ हे स्पर्धायुक्त इन्द्र ! शत्रु नाश में तुम्हें तत्पर जानकर आकाश और पृथिवी दोनों तुमसे प्रसन्न होते है ॥२॥ चार दिशा, चार कोण और आकाश इन नौओं स्थानों में व्यापक होने वाले यज्ञ को बढ़ाने वाली प्रार्थना आदि न्यून हो तो उसे मैं पूर्ण करता हूँ ॥३ (९)॥ हे इन्द्र और अग्ने ! यह स्तोता तुम्हारे प्रशंसक हैं। हे सुख दाताओ, इस सिद्ध किये गये सोम का पान करो ॥१॥ प्रेरणा वाले इन्द्र और अग्ने ! तुम हवि देने वाले यजमान के लिये प्रकट हुये हो। उसके हवि रूप अश्वों पर चढ़कर यज्ञ स्थान में पधारो ॥२॥ हे प्रेरणा वाले इन्द्र और अग्ने ! इस सिद्ध सोम का पान करने को उन अश्वो पर चढ़े हुये आओ ॥३ (१०)॥

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।

सीदन्योनौ वनेष्वा ॥१

अप्सा इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२

इदं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३।११

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१

अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥२।१२

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
तन्नः पुनान आ भर ॥१

वृषा पुनान आयूषि स्तनयन्नधि वर्हिषि ।
हरिः सन्योनिमासदः ॥२

युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपतो ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥३।१३॥ (६-४)

हे सोम ! अत्यन्त तेजस्वान् तू अपने ही लिये पर्वतों पर उत्पन्न होता है । तू शब्द करता हुआ कलशों की ओर जा ।१॥ जलों में प्राप्य सोम इन्द्र, वायु, वरुण, मरुद्गण और विश्वव्यापी विष्णु के लिये पात्र को प्राप्त हो ।।२॥ हे सोम ! तू हमारे पुत्र को और हमें अन्न, धन आदि का प्रदाता बने ॥३ (११) ॥ सिद्ध कर्त्ता ऋत्विजों द्वारा निष्पन्न होता हुआ सोम छन्नों में वेग से जाता है ॥१॥ गोघृतादि से युक्त हुआ सोम कलश में टपकता हुआ प्राप्त होता है । यह सोम शक्ति और हर्ष के लिये निष्पन्न होता है ॥२ (१२)॥ हे सोम ! सब प्रकार प्रशसित पार्थिव और दिव्य धन है उसे पवित्र करता हुआ हमें दे ॥१॥ प्रजाओं की आयु को शुद्ध करता हुआ, अभीष्टवर्षक, शब्दवान हुआ सोम

कुशों पर अपने स्थान को प्राप्त हो ॥२॥ हे सोम ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही सबके अधीश्वर, गो-पालक और ऐश्वर्यों के स्वामी हुये कर्मों के पाषक हो ॥३ (११)॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्
॥१

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिदः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि
ते वसु ॥२

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी क हनः क वसौ—
दधोऽस्मा इन्द्र वसौ दधः ॥३॥१४

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा—
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं—
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु-
स्वराज्यम् ॥३॥१५॥ (६-५)

हे शत्रुनाशक इन्द्र ! हर्ष और बल के लिये स्तोताओं द्वारा अधिक पुष्ट किये गये तुझे छोटे बड़े संघर्षों में अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं ॥१॥ हे रण-कुशल इन्द्र ! तू अकेला ही असंख्य सेना के समान है, अतः शत्रुओं के धन का अपहारक है। स्तोता के धन को बढ़ाने वाला सोम निष्पन्नकर्त्ता का धन-दाता है ॥२॥ संघर्ष उपस्थित होने पर हे इन्द्र ! तुम अपने मदमत्त अश्व को जोड़ कर अपने विद्वेषी को नष्ट करो। अपने उपासक को धन में स्थित कराओ ॥३ (१४) ॥ सुस्वादु मधुर सोम रस को श्वेत गौऐं पीकर इन्द्र के साथ शोभित होती हैं। अभीष्ट वर्षक इन्द्र के साथ प्रसन्नता से अनुगत हुई इन्द्र के आश्रय मे रहती हैं ॥१। इन्द्र की संगति वाली गौऐं इन्द्र के पेय सोम में अपना दूध मिलाती है। इससे पुष्ट और शक्ति सम्पन्न हुआ इन्द्र शत्रुओं पर वज्र चलाने मे समर्थ होता है ॥२॥ उत्तम गौऐं इन्द्र के पराक्रम को अपने दूध से पुष्ट करती हैं। युद्ध में शत्रुओं का इन्द्र वीरता बताने के वीर कर्म का ज्ञान प्रेरित करती हैं ॥३ (१५) ॥

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमा सदत् ॥१

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् ।
स्वदन्ति गाव पयोभिः ॥२

आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय ।
मधो रसं सधमादे ॥३॥१६

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।
वि कोशं मध्यमं युव ॥१

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः
॥२।१७

प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१

उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद् गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३।१८

पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
इंद्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तर ॥१

त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥३।१९

इंदुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इंवन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यराति वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य
राजा ॥१

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इंदुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२

अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत
सानो अव्ये ।।३।।२०(६-६)

पर्वतोत्पन्न सोम शक्ति और हर्ष के लिये शुद्ध किया जाता है और बाज के वेग समान अपने स्थान को प्राप्त करता है ।।१।। देवताओं से स्तुत्य सुन्दर, अन्न रूप शुद्ध जलों में धोये हुये सोम को वे गौएँ सुस्वादु बनाती हैं।। २ ।। फिर इस सोम-रस को अमरत्व प्राप्त कराने के लिये ऋत्विज उपयुक्त करते हैं, उसी प्रकार, जैसे रण क्षेत्र को अश्व सुशोभित करते है ।। ३ (१६) ।। हे स्तुत्य सोम ! देवताओं के काम्य हवि रूप अपने रस को नीचे गिरा और अन्तरिक्ष से मेघों को वर्षा करने को प्रेरित कर ।।१।। हे बली सोम ! पात्रों में छाना हुआ तू प्रजा-धारक गुण वाला यजमान के लिये कर्मों की प्रेरणा कर और अन्तरिक्ष से मेघ वर्षा कर ।।२(१७)।। सचेष्ट सोम अपने धारक रस को प्रेरित करता हुआ प्रिय हवियों में व्याप्त आकाश और भू-मण्डलों में स्थित होता है ।।१।। जब पाषाण के समान दृढ़ फलकों में सोम को प्राप्त किया तब गायत्री आदि सात छन्दों द्वारा ऋत्विज उसकी स्तुति करते हैं ।।२।। सोम अपनी धार से सोम गानों में धनदाता इन्द्र को प्रेरित करे। उत्तम कर्म वाला याज्ञिक इन्द्र का स्तवन करता है ।३ (१८) ।। हे सोम ! शुद्ध हुआ तू इन्द्र, विष्णु तथा अन्य देवगण के लिये अत्यन्त मधुर हुआ, पुष्टि के लिये टपक ।।१।। हे तरल सोम ! तुझे वस्त्र में छानने के निमित्त अगुलियाँ उसी प्रकार छूती हैं जैसे नव-जात वत्स को धेनु चाहते हैं ।।२।। हे साधक सोम ! तू पृथिवी और आकाश का धारक है शुद्ध होता हुआ कवच रूप हो ।। ३ (१९) ।। गतिमान रस सम

सोम इन्द्र को बल की प्रेरणा करता हुआ सुख पूर्वक होता है। बलेश सोम याज्ञिकों को धन देता हुआ शत्रुओं को नष्ट करता है ॥१॥ पाषाणों से निष्पन्न किया जाता सोम हर्ष प्रदायक धार से निकलता है। इन्द्र के प्रति सख्य-भाव वाला इन्द्र के लिये ही बरसता है ॥२॥ धारक, व्रती, तरल सोम कलश में गिरता और इन्द्रादि देवों को पुष्ट करता है ॥३ (२०) ॥

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं
स्तोतृभ्य आ भर ॥१
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२
ओभे सुश्चद्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इष
स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥२१
इंद्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥२
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वाऽरगच्छो रोचनं दिवः ।

देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे ॥३॥२२

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१

आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२

इंद्रमिद्धरी वहतोऽप्रति धृष्टशवसम् ।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥२३(६-७)

हे अग्ने ! तुम अजर को हम प्रदीप्त करते हैं। जब तुम्हारी दीप्ति आकाश में व्याप्त होती है तब तुम हमको अन्न देने वाले होते हो ॥ १ ॥ उत्तम सुखदायक, शत्रुओं को दमन करने वाले, जगत पालक, हवि-वाहक अग्नि के निमित्त हवि को होमते हैं। हे अग्ने ! हम स्तुति करने वालों को अन्न प्रदान करो ॥२॥ बलेश, पालक इन्द्र ! हवि-युक्त दोनाओं को पचा लेने वाले तुम यज्ञों मे हमें फलों से पूर्ण करते हो। हमको अन्न प्रदान करो ॥३ (२१) ॥ हे स्तोताओ ! वर्षा द्वारा अन्न के कर्ता और स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले इन्द्र की साम-गान द्वारा प्रार्थना करो ॥१॥ हे इन्द्र ! हे शत्रुओं के तिरस्कारक ! हे सूर्य को अपने तेजों से तेजस्वी बनाने वाले ! तुम विश्व रूप, दिव्य रूप वाले और महानों में भी महान् हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने तेज से सूर्य को प्रकाशित करते हो, तुम्हारे तेज से ही दिव्य लोक भी प्रकाशित है। सभी देवगण तुम्हारे मित्र-भाव की कामना करते हैं ॥३ (२२) ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये यह सोम शुद्ध किया रखा है। हे पराक्रम वाले ! तुम शत्रु को वश करने वाले इस यज्ञशाला में पधारो। सूर्य द्वारा अन्तरिक्ष को पूर्ण

करने के समान, तुम्हे सोम-पान द्वारा उत्पन्न सामर्थ्य पूर्ण करे ॥१॥ हे इन्द्र ! हमारे मन्त्रों से जुड़े हुये अश्वों वाले इस रथ पर चढ़। सोम निष्पन्न करने वाला पाषाण अपने आकर्षण शब्द से तेरे मन को हमारी ओर प्रेरित करे ॥ २ ॥ जो किसी के द्वारा तिरस्कृत न हो सके, ऐसे इन्द्र को ऋषियों की स्तुतियाँ यज्ञ स्थान में पहुँचाती हैं ॥३ (२३) ॥

॥ षष्ठोऽध्यायः समाप्त ॥

—:o:—

चतुर्थः प्रपाठकः

प्रथमोऽर्धः

(ऋषि— अकृष्टा माषाः, सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजाश्च, कश्यपः, मेघातिथिः, हिरण्यस्तूपः, अवत्सारः, जमदग्नि, कुत्स आङ्गिरसः वसिष्ठः, त्रिशोकः, काण्वः, श्यावाश्वः सप्तर्षयः अमहीयुः, शुन शेप आजीगर्ति, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, मान्धाता यौव-नाश्वः गोधाः, असितः, काश्यपौ देवलौ वाः, ऋणञ्चयः, शक्तिः, पर्वतनारदौः, मनु, सांवरणाः, बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा. भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः, वामदेवः। देवता—पवमानः सोमः, अग्निः, आदित्यः, इन्द्रः, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः। छन्द—जगती, गायत्री, बार्हत, प्रगाथः, पङ्क्तिः, उष्णिक्, अनुष्टुपः, त्रिष्टुपः, ।

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१
अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धु-भिर्वृषा ॥२
अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३॥१
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥१
शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥२
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥३॥२
पवस्व देववीरति पवित्रे सोम रंह्या ।
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।

आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण दिद्युते ॥६
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तये महे ॥८
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥९
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥१०॥३ (७–१)

यज्ञ-प्रकाशक सोम दिव्य रस का वर्षक, पालक, फलोत्पादक, ऐश्वर्यवान्, हर्षप्रदायक और इन्द्र द्वारा सेवन किया गया है। उसका रस आकाश-पृथिवी में छिपे धन को यजमानों के लिये प्रकट करता है ॥१॥ दिव्य गुणों का स्वामी, शतधार,

बुद्धि बढ़ाने वाला, बली, हरित सोम रस शब्द करता हुआ कलश में जाता है। वह अभीष्ट पूरक मित्र के समान हितैषी होता है ।।२।। हे सोम ! तू जलों से पूर्व संस्कारित हुआ आहु-तियों से अन्तरिक्ष में जाता है। शत्रुओं का अन्न प्राप्त करने के लिये उत्तम अश्वों वालों द्वारा निष्पन्न होता है ।।३ (१)।। बली, दमकते हुये एवं गतिमान सोम का यजमान, गवादि पशु एवं सन्तान प्राप्ति की इच्छा से रस निचोड़ते हैं ।।१।। यज्ञेच्छा वालों द्वारा अपने हाथों से शोध कर सुशोभित किये गये सोम छन्ने में पवित्र होते हैं ।।२।। वह सोम हवि देने वाले यजमान को दिव्य और पार्थिव धनों की वर्षा करे ।। ३ (२) ।। हे देवताओं द्वारा इच्छित ! तू वेगवान् हुआ अभीष्टवर्षक हो और इन्द्र को प्राप्त हो ।।१।। हे सोम ! उपासक को अभीष्ट फलदाता एव धारक हुआ तू हमको असख्य अन्न-धन दिलाता हुआ स्थित हो ।।२।। निचोड़ी हुई सोम-धार आह्लादक अमरत्व से युक्त हुई पात्र को पूर्ण करती है ।।३।। हे सोम ! तू गो दुग्धादि से मिश्रित होने पर गुणयुक्त बहुत से जलों के सार रूपों को ग्रहण करता है ।।४।। दिव्य रसों को प्रवाहित करने वाला काम्य सोम जल-योग से पुनः पुनः शुद्ध किया जाता है ।।५।। अभीष्टपूरक, हरित, महान, मित्र के समान दिखाई देने वाला सोम शब्द करता हुआ सूर्य की सी दीप्ति वाला होता है ।।६।। हे सोम ! तेरे बल से ही कर्म की प्रेरणा देने वाली स्तुतियां रची जाती हैं। स्तुतियों की उन वाणियों के लिये तुमको सिद्ध किया जाता है ।।७।। हे सोम ! तुझे महान् प्रशासित बनाने के निमित्त हम तुझे लोक-नियंता से पीने का निवेदन करते है ।।८।। हे सोम ! यज्ञ का सनातन आत्मा तू हमें गवादि देने वाला तथा अन्नों का देने वाला है ।।९।। हे

सोम ! वर्षक मेघ के समान हमारे लिये इन्द्र के सेव्य पुरुषार्थ बढ़ाने वाले रस की अमृत रूप से वर्षा कर ॥१० (३) ॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१

सना ज्योतिः सना स्वार्विश्वा च सोम सौभगा ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७

अभ्यार्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८

त्वां यज्ञैरवीवृधन पवमान विधर्मणि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९

रयिं नश्चित्र मश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१४०।
तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धस. ।
तरत्स मन्दी धावति ॥१
उस्रा वेद वसूनां मर्त्तस्य देव्यवसः।
तरत्स मन्दी धावति ॥२
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥३
आ ययोस्त्रिशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥४।५
एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।
मदिन्तमस्य धारया ।।१
अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाज परि स्रव ॥२
उत नो गोमतोरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥३।६

हे संस्कारित सोम! हमारे यज्ञ में पूज्य देवगण का सेवनीय हो और विघ्नकारियों को हरो ॥ १ ॥ हे सोम! हमको तेजस्वी बना। सभी स्वर्गीय सुखों को हमें प्रदान करता हुआ कल्याणमय बना ॥२॥ हे सोम! हमको हमारे यज्ञ का फल दे, शत्रुओं का नाश कर, हमको कल्याणमय बना ।।३।। हे सोम को संस्कारित करने वाला! इन्द्र के पीने को सोम को पवित्र करो,

फिर हमको कल्याणमय बनाओ ।। ४ ।। हे सोम ! तू अपनी रक्षाओं से हमको सूर्य की उपासना को प्रेरित कर और हमें कल्याणमय बना ।।५।। हे सोम ! तेरे द्वारा प्रदत्त ज्ञान से तेरे आश्रित हुये हम चिरकाल तक सूर्य को देखने वाले हों । तू हमें कल्याण का भागी बना ।।६।। हे श्रेष्ठ साधक साधन सम्पन्न सोम ! आकाश पृथिवी के ऐश्वर्य को हमें प्रदान करता हुआ सुख का भागी बना ।।७।। हे बली सोम ! युद्धो में शत्रुओं को जीतने वाला तू कलश में रह । फिर हमें सुख का भागी बना ।।८।। हे शुद्ध होते हुये सोम ! अनेक फल वाले यज्ञों के साधन रूप स्तोत्रों मे यजमान द्वारा बढ़े हुये तुम हमको सुख के भागी बनाओ ।।९।। हे सोम ! हमारे लिये विविध ऐश्वर्यों का दाता हो और हमें सुख का भागी बना ।। १० (४) ।। देवताओं को प्रसन्न करने वाला सोम छन्ने से धार रूप में गिरता है तथा स्तुति करने वालो को मुक्त करने वाला होता है ।। १ ।। सर्व ऐश्वर्य दायिनी सोम धारायें यजमान की रक्षक, देवगण को आनन्द देने वाली, स्तोताओ को पाप से बचाने वाली छन्ने में से गिरती हैं ।।२।। सहस्रों धनों को हम ग्रहण करें, वह धन हमको शुभ हों । दिव्यानन्द वाला सोम हमारा रक्षक हो ।।३।। हे सोम हमको वस्त्रादि शुभ हों । दिव्यानन्द वाला सोम पापों से बचावे ।।४ (५) ।। दिव्यानन्द दायक रसों से युक्त यह सोम स्तुतियों से पुष्ट बल के लिये पात्र में स्थित होते हैं ।।१।।

हे सोम ! देवताओं के सेवनार्थ गोदुग्धादि को पवित्र करता हुआ तू पात्रों में जाता और सुख-वर्षक होता है ॥२॥ हे सोम ! ऋषि द्वारा स्तुत्य तू हमको गवादि से युक्त कर और सब अन्नों का प्रदाता हो ॥३ (६) ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा
रिषामा वयं तव ॥१
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा
वयम् ।
जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा
वयं तव ॥२
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहु-
तम् ।
त्वमादित्यां आ वह तान् ह्यु३श्मस्यग्ने सख्ये मा
रिषामा वयं तव ॥३।७ (७-२)
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।
अर्यमणं रिशादसम् ॥१
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे ।
इयं विप्रा मेधसातये ॥२
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।
इषं स्वश्च धीमहि ॥३।८
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

वसु स्पार्ह तदा भर ॥१
यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥२
यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्ह तदा भर ॥३॥६
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इंद्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२
इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नाद्रभिर्नरः ।
इंद्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥१० (७-३)

पूज्य अग्नि के प्रति अपनी बुद्धि से स्तोत्र-पाठ करते हैं। इस अग्नि की भले प्रकार प्रार्थना करने में हमारी वृद्धि कल्याणरूपिणीहै। हे अग्ने! तुम्हारे मित्र हुये हम किसी के द्वारा हिंसित न हों ॥१॥ हे अग्ने! तुम्हारे यज्ञ की समिधाओं को एकत्रित करते हैं। तुम्हारे लिये हवियाँ देते हैं। तुम हमारे यज्ञादि कर्मों के साधक बनो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त होने पर हमें कोई मार न सके॥ २॥ हे अग्ने! तुम्हें यह उत्तम प्रकार से प्रदीप्त करें। तुम हमारे कर्मों के साधक होओ। तुम सब देवताओं को यज्ञ-स्थान में लाओ। उसका इस समय हम आह्वान करते हैं ॥३ (७)॥ हे मित्र और वरुण! सूर्योदय काल में तुम

शत्रु-भक्षकों की प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥ हमारी यह स्तुति अखण्ड बल दिलाने वाली हो। हे विप्रो ! इन स्तुतियो को यज्ञ-प्राप्ति के निमित्त करो ॥ २ ॥ हे वरुण ! हे मित्र ! हम स्तोता ऋत्विजों सहित ऐश्वर्यवान् हों। अन्न, धन और स्वर्गीय सुख को प्राप्त करें ।।३ (८) ॥ हे इन्द्र ! सब शत्रुओं को मारो। शत्रुओं को ललचाने वाले धन को हमें दो ।।१। हे इन्द्र ! जिन असंख्य धनों को मनुष्य बहुत समय से जानता है उन इच्छित धनों को प्रदान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! विचलित, अचल, विचारवान मनुष्यों को जो धन तुम देते हुये आये हो वह इच्छित धन हमें प्रदान करो ॥३ (९) हे इन्द्राग्ने ! तुम दानो यज्ञ में यजन करने योग्य हो। यज्ञ कर्मों में पवित्र हुये तुम हमारी स्तुतियों पर ध्यान दो ॥१॥ शत्रु नाशक, कभी परास्त न होने वाले इन्द्र और अग्ने ! मेरी स्तुतियों को सुनो ॥२॥ हे इन्द्र और अग्ने ! ऋत्विजो ने तुम्हारे निमित्त अमृत रूप सोम को निचोड़ कर पात्रों में रखा है, उसके लिये मेरी स्तुति पर ध्यान दो ॥३ (१०)॥

इंद्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥१

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।

सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।

पवमानस्य मरुतः ॥३।११

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

रयिं पिशग बहुलं पुरुस्पृह् पवमानाभ्यर्षसि ॥१

पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।

देवाना सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि

॥२।१२

एतमु त्य दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।

समादित्येभिरख्यत ॥१

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।

सं सूर्यस्य रश्मिभि ॥२

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।

चारुर्मित्रे वरुणे च ॥३।१३ (७–४)

हे सोम ! अत्यन्त मधुर पूज्य यज्ञ के लिये मरुद्गणों के साथी इन्द्र के लिये वर्षन हो ॥१॥ हे सोम ! तुझ धारक को विद्वान साधक शोधन कर्म द्वारा सुशोभित करते है ॥२। हे ज्ञानी सोम ! तेरे संस्कारित रस को मित्र, अर्यमा, वरुण मरुद्गण पान करें ॥३ (११ ॥ हे सुन्दर हाथों से सिद्ध किये सोम ! तू शब्द करता हुआ पात्र में जाता है । तुम साधकों को बहुत-सा स्वर्णादि ऐश्वर्य देने वाले हो ॥१॥ अभीष्ट देने वाला संस्कारित सोम सबका शोधक है । गो दुग्ध और घृतादि से युक्त हुआ दिव्य गुणों वाला होता है ॥२(१२)॥ जिस सोम की जननी समुद्र है उसका दश

अँगुलियाँ शोधन करती हैं। यह सूर्य से सगठित करता है ॥१॥ निष्पन्न सोम कलश के साथ इन्द्र को प्राप्त होता है तथा वायु से मिलकर सूर्य किरणों में व्याप्त होता है ॥२॥ हे सोम ! तू मधुमय मगलदायक हमारे यज्ञ मे भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुण के निमित्त वर्षणशील हो ॥३ (१३) ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् ।
ऋणोरक्ष न शचोभिः ॥३।१४

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि॥१
उप न. सवना गहि सोमस्य सोमपा. पिब ।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥२

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥३।१५

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीना सम्राजं चर्षणीनाम्
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१
दीर्घ ह्यङ्कुशं यथा शक्ति विभर्षि मन्तुमः ।

पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२
अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा
जनित्र्यजीजनत् ॥३॥१६ (७-५)

जिन गौओं को पाकर हम अन्न वाले सुख भोगते हैं। हमारी वे गौऐं इन्द्र के प्रसन्न होने पर घृत-दूध वाली और पुष्ट हों ॥ १ ॥ हे धारक इन्द्र ! तू हम पर कृपा-बुद्धि से हमारा अभीष्ट अवश्य ही हमको दिलावे ॥२॥ हे इन्द्र ! स्तोताओं द्वारा काम्य धन, उन पर कृपा करने के निमित्त लाकर दो ॥ ३ ॥ (१४)॥ उत्तम कर्मों के कर्ता इन्द्र को हम अपनी रक्षा के निमित्त नित्य बुलाते हैं। उसके निमित्त दोहन को सुन्दर गौओं को नित्य टेरते हैं ॥ १ ॥ हे सोम पायी इन्द्र ! सोम-पान के लिये यहाँ आओ। तुम्हारी प्रसन्नता से ही गौऐं प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हम उत्तम बुद्धि वाले होकर तुम्हे जाने। तुम हमसे अन्य किसी पर अपना रूप प्रकट न करो ॥३ (१५) ॥ हे इन्द्र ! आकाश पृथिवी दोनो को तू पूर्ण करने वाला है. इससे वह उत्तम माता कहलाई है ॥ १ ॥ हे ज्ञानी इन्द्र तुम शक्तिवान् और ऐश्वर्यशाली हो। तुम्हें उत्पन्न करने वाली माता अदिति महान् है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मनुष्यों के शत्रुओं का बल मिटाओ। हमारी हिंसा करने वाले को धराशायी करो । तुम अदिति पुत्र हो, इसलिये तुम्हारी वह माता महान् है ॥३(१६)॥

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥१
त्वं विप्रस्त्व कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥२
त्वं विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥३।१७
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यम्णा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्र मवसे महे ॥२।१८
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥१
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२
अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥३।१९
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इष मस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥३।२०
अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र
धान्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्
॥१
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धू नवद्रणाय ॥२
महोमे अस्य वृषनाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने व वधात्रे ।
अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो
अचेतः ॥३।२१ (७-६)

पाषाणों में शब्द करता हुआ सोम छन्ने में टपकता है। वह हर्ष-प्रदायक सबका पोषक है ॥१॥ हे सोम ! तू तृप्तिप्रदायक बुद्धिवर्द्धक और अन्नज रस को देने वाला तथा शक्तिप्रदायक पदार्थों में धारक है ॥२॥ हे सोम ! सब देवता परस्पर प्रीति रखते हुये तुझे पीते है । तू शक्तियुक्त पदार्थों का धारक और अभीष्ट-दायक है ।।३ (१७) जो सोम धनों, दुधारू गायों, अन्नों, उत्तम सन्तान और वैभव को देने वाला है, उसे ऋत्विज शोधते हैं ॥१॥ हे सोम ! तेरे जिस रस को इन्द्र, मरुद्गण, अर्यमा, भग देवता पान करते हैं, उसके द्वारा रक्षार्थ मित्र, वरुण और इन्द्र को उपयुक्त करते हैं ॥२ (१८) ॥ हे मित्रो ! तुम देवताओं के हर्ष

के लिये रसयुक्त सोम का स्तवन करो ॥१॥ रक्षक, आनन्दप्रद, स्तुत्य सोम जलों में सिंचित होता है। जैसे गोवत्स गौओं द्वारा सींचा जाता है ॥२॥ यह सोम बल-वृद्धि का साधन है। यह देवताओं के सेवनार्थ शुद्ध किया गया मधुर गुणों से युक्त है ॥३ (१६) ॥ देवताओं को मित्र समान शोधित सोम स्वर्गीय आनन्द वाला हमारे कलश में आवे ॥१॥ शुद्ध, बुद्धिवर्द्धक दधि-घृत युक्त सोम सूर्य के समान, पात्रों में दर्शनीय होता है ॥२॥ गो-दुग्ध में दर्शनीय, पाषाणों से निष्पन्न धन दायक यह सोम हमको अन्नदाता है ॥३ (२०) ॥ हे सोम ! इस शुद्ध करने वाली धार से धन की वर्षा कर। इस सोम के शुद्ध होने पर सूर्य भी वायु-वेग वाला हुआ। अति बुद्धिमान इन्द्र मुझ सोम प्राप्त करने वाले को कर्मवान् पुत्र प्राप्त करावे ॥१॥ हे सोम ! सबके श्रवण योग्य तू हमारे पवित्र यज्ञ में आ। तू सहस्रों धनों को हमें देने वाला हो ॥२॥ वाण वर्षा और शत्रु का पतन करना यह दोनों कर्म सोम द्वारा सिद्ध होते हैं। हे सोम ! शत्रुओं को मिटाकर याज्ञिकों को अभय दे ॥३ (२१) ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे।

सखिभ्यः ॥३।२२

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥२
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥३
॥२३

प्र वोऽर्चोप ॥१॥२४ (७-७)

हे अग्ने ! यजन योग्य तुम हमारे निमित्त-रक्षक और सुख देने वाले हो ॥ १ ॥ व्यापक, अन्न युक्त सबका अग्रगण्य अग्नि दीप्तिमान हुआ हमको धनदायक हो ॥२॥ हे तेजवान, प्रकाशित अग्ने ! सुख और पुत्रादि के निमित्त तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ ३ (२२) सब भुवन हमको शीघ्र सुखकारी हों। इन्द्र और विश्वेदेवा मेरे अभीष्ट को पूर्ण करें ॥ १ ॥ अन्य देवताओं के साथ इन्द्र हमारे यज्ञ, देह और सन्तान को सिद्ध मनोरथ बनावें ॥२॥ अदिति पुत्र मित्रादि, मरुद्गण सहित इन्द्र हमारे निमित्त गुण वाली औषधियों को सम्पन्न करें ॥३ (२२)॥ हे यजमानो ! तुम निकट से इन्द्र की उत्तम प्रकार से पूजा करो ॥१ (२४) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋ—वृषगणो वासिष्ठः, असितः काश्यपो देवलो वा, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा, भरद्वाजो बार्हस्पत्य, यजत आत्रेयः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, सिकता निवावरी, पुरुहन्मा, पर्वतनारदौ शिखण्डिन्यावत्सरसौ काश्यपो वा, अग्नयो धिष्ण्यः, ऐश्वराः, वत्सः काण्वः, नृमेधः, अत्रिः । देवता—पवमानः सोमः, वैश्वानरः, मित्रावरुणौः, इन्द्रः, इन्द्राग्नी, अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, बार्हतः प्रगाथः उष्णिक्, द्विपदा विराट्, अनुष्टुप् ।)

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति
महिव्रतः शुचिबन्धु पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ।१

प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः
अंगोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्ष वाणं प्रवदन्ति
साकम् ॥२

स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा कीडन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृंगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृजः॥३

प्र स्वा नासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥४

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरासः कारिणामिव ॥५

राजानो न प्रशस्तिभि. सोमासो गोभिरंजते ।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥६

परि स्वानाम इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥७

आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम्
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
वृष्णो हरस आयवः ॥९

समीचीनास आशत होता नरः सप्तजानयः ।

पदमेकस्य पिप्रतः ॥१०

नाभा नाभि न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।

कवेरपत्यमा दुहे ॥११

अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।

सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२॥१ (८-१)

ऋषि-समान स्तुति करने वाला स्तोता इन्द्रादि देवताओं से प्रकट होने का निवेदन करता है । विविध बल वाला सोम संस्कार होने पर शब्दयुक्त हुआ पात्रों को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ शत्रुओं के सताये हुये ऋषिगण अभिषव शब्द पर ध्यान देते हुये यज्ञशाला में गए । मित्र स्तोताओं ने शत्रुओं को न सहन होने वाले सोम के निमित्त वाण सजाये ॥ २ ॥ वह सोम अपनी गति को अन्तरिक्ष में प्रेरित करता है उसकी गति का अनुमान कठिन है । वह अपने तेज को फैलाता हुआ दिन में हरित और रात्रि में उज्ज्वल दिखाई देता है । रथो के समान शब्द करता हुआ यजमानो के लिये पराक्रमों का देने वाला होता है ॥ ४ ॥ युद्ध को जाते हुये रथों जैसा यज्ञगामी सोम ऋत्विजो के बाहुओं में स्थित होता है ॥५॥ स्तुतिओं के राजा के समान, ऋत्विजा से यज्ञ के समान सोम का गोघृतादि से संस्कार होता है ॥६॥ स्वच्छ किया जाता सोम वाणी युक्त हुआ मधुर रस युक्त धार से वर्षणशील होते है ॥७॥ इन्द्र के पीने को सोम उषा का विस्तार करते हुये शोधन- काल में शब्द करते हैं ॥ ८ ॥ सोम को प्राप्त करने वाले

स्तोता, सोम से यज्ञद्वारों का उद्घाटन करते हैं ॥ ९ ॥ उत्तम जाति के सोम को पूर्ण करते हुये स्तोता कर्मानुष्ठान में लीन होते हैं ॥१०॥ नेत्रों द्वारा, सूर्य दर्शन के निमित्त यज्ञ-नाभि सोम को अपनी नाभि में स्थापित करता हुआ उसकी तरङ्गो को पूर्ण करता हूँ ॥११॥ उत्तम बल वाला इन्द्र नेत्रों द्वारा अपने प्रिय अध्वर्युओं द्वारा हृदयस्थ हुये सोम को देखता है ॥१२ (१) ॥

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजना ॥१

प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।
हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२

प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने ।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।
स्वर्वाजी सिषासति ॥४

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५

अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
रेभो वनुष्यते मती ॥६

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।

रणा यो अस्य धर्मणा ॥७

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः ।

विदाना अरस्य शक्मभिः ॥८

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।

श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।

पातन्मा पुरुस्पृहम् ॥१२॥२ (८-२)

यजमान और देवताओं के सम्बन्धों को जानते हुये सोम कर्मों मे यज्ञ-मार्ग से प्रयुक्त होते हैं ॥ १ ॥ हवियों में प्रशसित सोम जलों का मर्दन करता हुआ अपनी धार वर्षाता है ॥२॥ हवियों मे श्रेष्ठ सोम वाणी का उत्पादक, अभीष्टपूरक और अहि-सक हुआ यज्ञस्थ जल में शब्द करता है ॥३॥ सोम से बल शुद्ध होता है । वह जब स्तोत्रों से बढ़ता है, तब अन्नवान इन्द्र यज्ञ मे भाग लेने के लिये अपने बल-भाग को उपयुक्त करता है ॥४॥ कर्म कर्ता ऋत्विज सोम को प्रेरित करते है तब वह वर्षणशील हुआ राजा के समान यज्ञ बाधाओ को नष्ट करता है ॥५॥ देव-

प्रिय हर। सोम जलों में मिश्रित हुआ छनता है। शब्द करता हुआ सोम स्तुति द्वारा ग्रहण किया जाता है ॥६॥ सोम को सिद्ध करने के कार्यों को क्रीड़ा रूप से करने वाला यजमान वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों को प्राप्त करता है ॥७॥ जो यजमान अपने सोम की तरङ्गो को मित्र, वरुण भग देवताओं के निमित्त करते हैं वे सोम के ज्ञाता यजमान सुखों का उपभोग करते हैं ॥८॥ हे आकाश-पृथिवी के अधीश्वरो! तुम दिव्यानन्द वाले सोम के लाभ के निमित्त हमको अन्न, पशु आदि युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ॥९॥ हे सोम! हम याज्ञिक नत मस्तक हुये तेरे बल को चाहते हैं। तेरे बल सुखोत्पादक, धन दाता, रक्षक और अभीष्ट प्राप्ति के लिये अनेकों द्वारा कामना किया जाता है ॥१०॥ हे हर्ष प्रदायक सोम! हे सर्व सेव्य! तेरी आराधना और सेवा करते हैं। तू बुद्धि युक्त, स्तुत्य, रक्षक और अनेकों द्वारा काम्य है ॥ ११ ॥ हे उत्तम प्रज्ञा वाले! धन, ज्ञान और रक्षा के निमित्त हम तेरी प्रार्थना और उपासना करते हैं ॥ १२ (२) ॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ
जातमग्निम्।
कविं संम्राजमतिथिं जनानामा सन्नःपात्रं जनयन्त
देवाः ॥१
त्वां विश्वे अमृ तंजायमानं शिशु न देवा अभि सं नवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहा वमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३
प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा।

महिक्षत्नावृतं बृहत् ॥१

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्नं देवेषु ॥३।४

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥३।५

तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१

य इद्ध आ विवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥२

ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः ।
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥३।६ (८-३)

आकाश के मूर्धा रूप, यज्ञार्थ सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न अतिथि के समान पूज्य, देवताओं में मुख्य वैश्वानर अग्नि को

अरणियों द्वारा प्रकट किया गया ॥ १ ॥ हे अमृत रूप अग्ने अरणियों से उत्पन्न तेरी सब स्तोता बालक के समान प्रशंसा करते हैं। तू आकाश पृथिवी के मध्य जब प्रदीप्त होता है तब यजमान दिव्य गुण-प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ यज्ञ-नाभि, धन के घर महान आहुति युक्त अग्नि की याज्ञिकगण उत्तम प्रकार प्रार्थना करते हैं। यज्ञों का निर्वाहक, अग्नि मन्थन द्वारा प्रकट होता है ॥३ (३) हे ऋत्विज ! तुम मित्र वरुण की विस्तृत स्तुति करो और वे दोनों तुम्हारे यज्ञ मे पधारें ॥ १ ॥ मित्र और वरुण दोनों ही सबके अधिष्ठाता, जलोत्पादक, ज्योतिमान् सर्व देवों में श्रेष्ठ है। उनका स्तवन करो ॥२॥ मित्र और वरुण पार्थिव और दिव्य धनों को देने वाले हों। हे देवद्रव ! देवताओ में भी तुम्हारे महिमावान बल की प्रशंसा करते है ॥ ३ (४) ॥ हे अद्भुत प्रतिभा वाले इन्द्र ! इस यज्ञ-कर्म मे आकर ऋत्विजों द्वारा शुद्ध इस सोम को अपनाओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हमारी उपासना से प्रेरित इस निष्पन्न सोम वाले ऋत्विज के वेद वर्णित स्तोत्रों को यहाँ आकर ग्रहण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! इन स्तोत्रों को सुनने के लिये शीघ्र ही पधारो। हमारे हवि रूप अन्न के धारक बनों ॥३ (५) ॥ जिस अग्नि को प्रचण्ड ज्वालायें सब बनों को घेर कर भस्मीभूत कर काले कर देती हैं, उसी अग्नि का स्तवन करो ॥ १ ॥ इन्द्र के लिये प्रज्वलित अग्नि में हवि देने वाला, इन्द्र से अन्न सुख के लिये वर्षा रूप जलों को प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों को हवि देने के लिये हमें बल देने वाला अन्न और द्रुतगामी अश्व प्रदान करो ॥३ (६)

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न

प्र मिनाति संगिरम्।

मर्यं इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना
पथा ॥ १

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः॥२

आ नः सोम संयतं पिप्युषी मिषमिन्दो पवस्व
पवमान ऊर्मिणा ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवी-
र्यम् ॥३।७

न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्ट धृष्णुमोजसा ॥१

असाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥२।८
(८-४)

सोम इन्द्र के उदर में स्थित होता हुआ मित्र रूप से बर्तता है । तरुणियों को प्राप्त होने वाले पुरुष के समान सोम जलों को प्राप्त करता है ॥१॥ हे सोम ! ध्यानी, स्तुति करने वाले, यज्ञ-कर्मों को करते और सोम को शोधते हैं । गौऐं इस सोम को देखती हुई अधिक दूध देने वाली होती हैं ॥२॥ हे प्रकाशित सोम ! तू शुद्ध हुआ हमारे सग्रहीत अन्न को अपने रस से शुद्ध कर । वह अन्न मधुर हुआ सुन्दर सशक्त पुत्र को देने वाला है ॥३(७)॥ वृद्धिदायक, शत्रु तिरस्कारक इन्द्र को यज्ञ-कर्म से अनुकूल करने

वाला वैरियों से हिंसित नहीं होता ॥१॥ परम पराक्रमी इन्द्र की स्तुति करता हूँ, जिसके प्रकट होने पर गौऐं, बकरियाँ और आकाश-पृथ्वी के सभी जीव शिर झुकाते हैं ॥२ (८) ॥

सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
देवाव्यां मदमभि द्विशवसम् ॥२
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३-९
प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः॥२
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभि सुतः
॥३।१०
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥१
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥३।११ (८-५)

हे मित्रो ! सोम की स्तुति गाओ। पिता द्वारा शिशु को सुशोभित करने के समान हवि आदि पदार्थों से सोम को सजाया जाता है ॥१॥ हे ऋत्विजो ! साधक, दिव्य गुण-रक्षक हर्षप्रदायक बल-बर्द्धक सोम को जलों में मिश्रित करो ॥२॥ वेग प्राप्त करने के निमित्त, देवताओं के पीने को, मित्र-वरुण के लिये सुख दायक बनने के लिये सोम को शुद्ध करो ॥३ (९) ॥ पराक्रमी, अनेक धार वाला सोम छनकर अनेक धारों से टपकता है ॥१॥ असंख्य वीर्य वाला जलों से स्वच्छ किया गया, गोघृतादि से मिश्रित सोम क्षरित होता है ॥ २ ॥ हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा नियमपूर्वक शोधित और पाषाणों से निष्पन्न तू इन्द्र के उदर रूप कलश को प्राप्त हो ॥३ (१०) ॥ दूर या समीप के स्थानों में शोधे जाने वाले सोम, इन्द्र के निमित्त होते हैं, वह हमको अभीष्टदाता बने ॥१॥ जो सोम दूर या समीप के कर्म प्रधान देशो मे, नदियों के निकट उत्पन्न होते और संस्कार किये जाते हैं, वह हमारा मनोरथपूर्ण करने वाले हो ॥२॥ वर्षणशील निष्पन्न सोम हमारे लिये वर्षा और सन्ततिदाता हो ॥३ (११) ॥

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।
अग्मे त्वां कामये गिरा ॥१

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।
समत्सु त्वा हवामहे ॥२

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।
वाजेषु चित्रराधसम् ॥३।१२

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥१

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥२
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३।३

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्या भर ॥१
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावन ॥२
यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३।१४ (८-६)

हे अग्ने ! उपासक, इच्छित स्तुतियों द्वारा तेरे मन को सूर्य लोक से भी खींच लाता है ॥१॥ हे अग्ने ! तू मम-दृष्टि वाला सब दिशाओं का ईश्वर है । संघर्षों में रक्षा के निमित्त तेरा आह्वान करते हैं ।। २ ॥ संघर्ष बल के लिये, रक्षा के लिये स्तुत्य धनवान् अग्नि का आह्वान करते हैं ॥ ३ (१२) ॥ हे असख्य-कर्मा इन्द्र ! हमको अन्न, बल प्रदान कर । शत्रु नाश वीर पुत्र का दाता हो ॥१॥ हे इन्द्र ! तू पिता के समान पालक और माता के समान धारक है । हम तुझ से सुख माँगते हैं ॥२॥ स्तुति

करने वालों से बलवान् हुये,यजमानों द्वारा स्तुत्य बल की कामना से स्तवन करते हुये, उत्तम ऐश्वर्य भी मांगते हैं ।। ३ (१३) ।। हे वज्रिन् ! जो धन तुम दे सकते हो, वह मेरे पास नहीं है । हे इन्द्र ! हमको वह धन प्रदान करो ॥१॥ हे इन्द्र ! जिस अन्न को तुम श्रेष्ठ मानते हो, वह अन्न हमे प्रदान करो । २ ।। हे इन्द्र ! स्तुत्य एवं विख्यात मन से दृढ़ अन्न को तुम हमारे लिये देने वाले हो ।। ३ (१४) ।।

पञ्चमः प्रपाठक

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि—प्रतर्दनो दैवोदासि, असितः, काश्यापो देवलो वाः, उचथ्य', अमहीयुः, निध्रुवि, काश्यप, वसिष्ठः, सुकक्ष', कविः, देवातिथिः काण्वः, भर्ग.' प्रागाथ, अम्बरीष', ऋजिश्वा चः, अग्नयो धिष्णया ऐश्वराः उशना काव्य', नृमेधः, जेता माधुच्छन्दसः, । देवता—पवमानः सोम., अग्निः, इन्द्र' । छन्द—त्रिष्टुप् गायत्री जगती बार्हतः प्रगाथः अनुष्टुप्, पङ्क्ति, उष्णिक् ।।

शिशु जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भि. काव्येन कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति
रेभन् ॥१

ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षा सहस्रनीथः
पदवीःकवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु
राजति ष्टुप् ॥२

उत्पन्न शिशु के समान सबको प्रफुल्लित करने वाले सोम को मरुद्‌गण शोधते हैं। फिर वह स्तुतियों द्वारा शब्द करता हुआ कलश में पहुँचता है ॥१॥ समदर्शी, सर्वसेवी, स्तुत्य, परम पूज्य सोम सूर्य लोक की इच्छा वाला स्तुत्य हुआ इन्द्र को प्रकाशित करता है ॥ २ ॥ प्रशंसित सामर्थ्यों का दाता, जल प्रेरक, अन्तरिक्ष की इच्छा वाला सोम चन्द्रलोक को जाता है। ॥३ (१) इन्द्र की शक्ति को बढ़ाने वाला यह सोम इन्द्र को प्रसन्न करने वाले रसों की वर्षा करता है ॥ १ ॥ हे शोभित सोमो ! तुम वायु और अश्विनीकुमार को प्राप्त हुये हमें वीर बनाओ ॥ २ ॥ हे सोम ! तू हृदय को इन्द्र की उपासना के लिये प्रेरित कर। मैं देव-यजन के साधन यज्ञ को कर रहा हूँ ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुझे दस अँगुलियाँ शोधती और होता तृप्त करते हैं तथा स्तोता हर्ष प्रदायक बनाते हैं ॥४॥ हे सोम! छन्ने में शोधा जाता तू देवताओं को मग्न करने के लिये गोघृतादि से युक्त किया जाता है ॥ ॥ कलशों में निचोड़ा जाता हुआ तरल रूप सोम ! तू हरे रंग का गौ-दुग्धादि पर ढके वस्त्रों पर डाला जाता है ॥६। हे सोम ! हम ऐश्वर्ययुक्त हुओं के सामने गिरता हुआ सब वैरियों का नाशक हो और मित्र इन्द्रका साथी हो ॥ ७ ॥ हे सोम ! सर्वज्ञ इन्द्र के तुझ पेय का सेवन करते हुये हम पुत्रादि से युक्त अन्नादि सुखों का भोग करें ॥८॥ सोम ! आकाश से जल वर्षा कर, पृथ्वी पर अन्न को उपजा, युद्धों में हमारे बल को व्याप्त कर ॥९ (२)

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।

वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।
सुष्वाणं देववीतये ॥२
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥३
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४
अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
विवारमव्यमाशवः ॥५
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥६
वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभिः वत्सं न मातरः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥७
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥८
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमाना. स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥९।३ (९-२)

परिष्कृत, अनेक धार युक्त, शोधक सोम वायु इन्द्र के पान करने के लिये पात्र में स्थित होता है ॥ १ ॥ हे रक्षा कामना वालो ! तुम शोधक, तृप्तिकर, देव-पान योग्य सिद्ध किये गये

सोम के सामने झुक कर स्तुति गान करो ।।२।। अन्न प्राप्ति के लिये किये गये इस देव-यज्ञ की सफलता के लिये स्तुत्य और बलदायक सोम टपकते हैं ।। ३ ।। हे सोम ! तेजवान् उत्तम सामर्थ्यों की वर्षा करो और जीवन संघर्ष के लिये अन्नों की वर्षा करो ।।४।। युद्धों की प्रेरणा वाले सोम ऋत्विजों द्वारा छन्ने में डाल कर छाने जाते हैं ।।५।। वह दिव्य सोम हमको असंख्य ऐश्वर्य और उत्तम वीरता प्रदान करे ।।६।। गौ के बछड़े की ओर जाने के समान शब्द करते हुये सोम पात्र में जाते हुये, हाथों में रहते हैं ।।७।। सोम ही इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये पर्याप्त तृप्तिकारक है। वह अपने शब्द से हमारे बैरियों का नाश करे ।।८।। हे सोमो ! अदानशीलों का नाश करते हुये सबको देखने वाले तुम इस यज्ञ-स्थान में स्थित होओ ।।९ (३) ।।

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ।।१
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।
इंद्रं सोमस्य पातये ।।२
मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ।।३
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ।।४
यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।

तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥६
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।
हिन्वानो मानुषा युजा ॥७
आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इंदो स्वाभुवम् ॥८
अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः ।
सोमो हिन्वे परावति ॥९।४ (९-३)

यज्ञ के लिये शोधे गये मधुर रस युक्त सोम को इन्द्र के लिये उपयुक्त करते हैं ॥१॥ हे ऋत्विजो ! बछड़े की सन्तुष्टि के लिये शब्द करती हुई गौओं के समान इन्द्र की स्तुति करो ॥२॥ हर्षप्रदायक, रसवर्षक सोम यज्ञ-स्थान में प्रतिष्ठित होता है। नदी की तरगो के समान वाणी को तरगित करता है ॥ ३ ॥ उत्तम सोम अन्तरिक्ष की नाभि समान ऊन के छन्ने में सस्कृत होता है ॥४॥ कलशों मे स्थित सोम अंश भूत सोम में चन्द्रमा का सौम्य गुण प्रविष्ट होता है ॥ ५ ॥ मधुदायक कलश को पूर्ण करने वाला सोम अन्तरिक्ष के आश्रय स्थान में शब्दवान् होता है ॥६॥ नित्य प्रशसित, धनों का अधीश्वर सोम अमृत-मयी वाणी स्तुतियों को ग्रहण करे ॥ ७ ॥ हे शोधित सोम ! सुन्दर गृह और ऐश्वर्य को हमारे लिये स्थापित कर ॥ ८ ॥

निष्पन्न सोम अपनी तृप्तिकारक धारा से दिव्य स्थानों की प्रेरणा करता है ।।६ (४)।।

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।
वाणस्य चोदया पविम् ।।१
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
यदव्य एषि सानवि ।।२
अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
पवमानं मधुश्चुतम् ।।३
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ।।४
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
एन्द्रस्य जठरं विश ।।५।५ (६-४)

हे सोम ! तरङ्गित शब्दो के समान तू भी तरंगित होना है । तू वाण के शब्द को प्रेरणा दे ।। १ ।। तेरे प्रकाट्य पर यज्ञेच्छुकों के ऋक्-यजु-साम रूप वाक्य प्रकट होते है ।।२।। दिव्य, हरित, पाषाणों से पीसे गये मधुर रस देने वाले सोम को ऊन को छन्ने में डालते हैं ।।३।। हे आह्लादक सोम ! इन्द्र के उदर में पहुँचने के लिये छनता हुआ टपक ।।४।। हे आह्लादक सोम ! गोदुग्धादि के मिश्रण से प्रशसित तू बरसता हुआ इन्द्र के उदर में जा ।।५ (५)।।

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
आवाहन्नवतीर्नव ॥१

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२

परि नो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३।६

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२

न त्वा शत च न हुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥३।७

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचय ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥१

अयुक्त सूर एतशं हवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥२

उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥३।८ (६-५)

हे सोम ! इन्द्र के सेवनार्थ अपने रस की वर्षा कर। तू शत्रुओं का नाशक हो ॥१॥ इन्द्र के पिए हुये सोम द्वारा शत्रु का ध्वंस होता है ॥२॥ हे सोम ! हमको गौ, अश्व सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और अन्नों का प्रदाता हो ॥ ३ (६) ॥ हिंसकों का नाशक, अदानशीलों का हिंसक सोम इन्द्र स्थान को प्राप्त हुआ धार रूप में गिरता है ॥१॥ हे तरल सोम ! हमको बहुत-सा धन पुत्रादि और यश प्राप्त कराते हुये शत्रुओं का हनन करो ॥२॥ हे सोम ! तू धन देने की इच्छा करता है तो तुझे कोई नहीं रोक सकता ॥३ (७) ॥ हे सोम ! मनुष्यों के हितैषी जलों को प्रेरित करता हुआ सूर्य को प्रकाशित करने वाली धारा से वर्षा कर ॥१॥ अन्तरिक्ष मार्ग से जाने को प्रेरित सोम सूर्य के अश्व रूपी तेज का जोड़ने वाला है ॥२॥ सोम को पुकारते हुये इन्द्र हरे वर्ण वाले अश्वों को सूर्य के समान प्रकाशित रथ में युक्त करता है ॥३ (८) ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे
कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते
व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे
हि देवान् ॥३।९

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥१
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बलं हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२
गिरा वज्रो न सम्भृतः स बलो अनपच्युतः ।
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३।१० (६-६)

हे देवताओ ! यज्ञ में इस पूज्य अग्नि को अपना दूत बनाओ। वह देवता होकर भी मनुष्यों के साथी हैं। यरू से सम्बन्धित ताप युक्त तेज वाला, घृत-भक्षक एवं सर्व-शोधक है ॥१॥ घास में चरते हुये अश्व के तुल्य दावानल फले हुये वृक्षों में जाता है तब इसकी ज्वालायें वायु की अनुगत होती हैं, फिर तेरा पथ भी काले रंग का होता है ॥२॥ हे अग्ने ! तेरी अजर ज्वालायें प्रदीप्त होती हैं तब तू प्रकाशित हुआ धूम शिखा वाला आकाश मार्ग को जाता हुआ इन्द्रादि देवों को प्राप्त होता है ॥३(९) ॥ राक्षसों के नाश के लिये सोम और स्तुतियों से इन्द्र को बल देते हैं। वह धन-वर्षक इन्द्र हमको धन देने वाला है ॥१॥ प्रजापति ने इन्द्र को धन देने के लिये बनाया है। वह बलदाता इन्द्र सोमपान के लिये ब्रह्मा ने नियुक्त किया ॥२॥ स्तुतियों द्वारा बलवान किया गया, महान शत्रु से अपराजित इन्द्र स्तोताओं को धन देने की इच्छा करता है ॥३ (१०) ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।

पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१
तव त्य इन्दो अंधसो देवा मधोर्व्याशत ।
पवमानस्य मरुतः ॥२
दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥३।११
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा।
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममारयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषीभिः ॥१
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरे ष्वा विश ॥२
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वत. ॥३।१२
यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा यसे नृभिः ।
सिमा पूरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२।१३

उभयं श्रणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं

हि ते मनः ॥२।१४ (९-७)

हे अध्वर्यु ! पाषाणों से निष्पन्न इस सोम का इन्द्र के पीने के लिये शोधन कर ॥ १ ॥ हे सोम ! वह इन्द्रादि और मरुद्गण तेरे हर्षप्रदायक रस का सेवन करते हैं ॥ २ ॥ अत्यन्त मधुर, दिव्य, अमृत के समान उत्तम सोम को वज्र धारण करने वाले इन्द्र के लिये शोधो ॥ ३ (११) ॥ शोधन योग्य, रसयुक्त, सर्वधारक सोम छन्ने में गिरता है । उसे हम जीव ही उपयुक्त करते हैं ॥१॥ यह सोम यजमान की गौओं की कामना से इन्द्र में पुष्टि को प्रेरित करता है । यह ऋत्विजों द्वारा गोदुग्धादि से मिश्रित किया जाता है ॥२॥ हे संस्कार किये जाते सोम ! तू इन्द्र के पेट मे जा । विद्युत द्वारा मेघों के दुहे जाने के समान हमारे निमित्त दिव्य और पार्थिव गुणों का दोहन कर । कर्म करता हुआ तू अन्न की रचना कर ॥ ३ (१२) ॥ हे इन्द्र ! तुम दिशाओं में वर्तमान स्तोताओं द्वारा कार्यावसर पर बुलाये जाते हो ! हे शत्रु-तिरस्कारक ! तुम ऋत्विजों द्वारा प्रेरणा किये जाते हो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम मिलकर प्रसन्न किये जाते हो । ऋषि-गण तुम्हें विभिन्न स्तोत्रों से वशीभूत करते है । हे इन्द्र ! तुम

हमारा कार्य करो ॥२ (१३) ॥ हमारे स्तोत्र और शास्त्र समस्त वाणियों को इन्द्र हमारे सामने आकर श्रवण करें। प्रतिष्ठा वाली बुद्धि से युक्त इन्द्र पराक्रमी हुआ यहाँ आकर सोम पान करे ॥१॥ आकाश और पृथिवी के निवासी, जगत के उपकारक इन्द्र को अपने बल से पाते हैं। वह इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ हुआ वेदी में प्रतिष्ठित हुआ सोम की इच्छा करता है ॥२ (१४) ॥

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥१
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
इन्दो समुद्रमा विश ॥२
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥३।१५
अभी नो वाजसातम रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्न विभासहम् ॥१
वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥२
परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥३।१६
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥१

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥२

दिवो धर्त्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्
वाजी पवस्व ॥३॥१७ (६-८)

हे सोम ! दिव्य हुआ तू वर्षणशील हो। तेरा तरगयुक्त रस इन्द्र को प्राप्त हो। धारक रस वायु को मिले ॥१॥ हे तरल सोम ! शत्रु को पीड़ित करने वाला तू कलश का प्राप्त हो ॥२॥ हे क्रियाओं के प्रेरक सोम ! तू आह्लादक और पवित्र प्रवाह वाला है। पापियो को दूर कर ॥ ३ (१५) ॥ हे हर्षप्रदायक ! तू हमको प्राण शक्ति वाला, अभीष्टपालक, तेज और ऐश्वर्य का प्रदाता हो ॥१॥ हे उत्तम वास देने वाले सोम ! हम तेरे प्रेरणा स्वरूप धन के निकट पहुँचे तेरे द्वारा प्राप्त आनन्द मे स्थित हों ॥२॥ वह हर्षोत्पादक सोम प्रेरणा करता हुआ, आनन्द रस की वर्षा करता हुआ आवे और इस यज्ञ मे ज्ञान की प्रकाशक धाराओं को प्रेरित करे ॥३ (१६)॥ हे सोम ! दिव्य गुणों को देने वाला तू रस बहाने वाला, पालक और वर्षणशील है ॥१॥ हे सोम ! तू दिव्य गुणों के लिये प्रवाहित हो और प्रजाओं को सुखी कर ॥२॥ हे सोम ! तू चमकदार पेय और दिव्य गुणों का धारक है। हे बलवान् तू यज्ञ में सत्य रूप से बरस ॥ ३ (१७) ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१
कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता ।
नि मर्त्येष्वादधुः ॥२

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँ पाहि शृणुही गिर. ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥३।१८
एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथु पतिर्दिव· ॥१
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृध पतिर्दिव. ॥२
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्त्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोवृध पतिर्दिवः ॥३।१९
पुरा भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुत ॥१
त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम ।
त्वा देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषु ॥२
इन्द्रमीशानभोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥३।२०(९-९)

हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को धन के निमित्त अत्यन्त प्रिय एव अतिथि तुल्य पूज्य, हवि-वाहक, मित्र के समान सुखदायक तेरा हम स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ अग्नि को इन्द्रादि देवगण ने गार्हपत्य और आह्वानीय रूपों से स्थापित किया ॥ २ ॥ हे सतत युवा इन्द्र ! हविदाताओं की रक्षा करता हुआ उनकी स्तुतियो पर ध्यान दे और हमारे पुत्र का भी रक्षक बन ॥ ३

(१८) ॥ हे सबको जीतने वाले इन्द्र ! तू अदृश न रहने वाला हमारे निकट प्रकट हो। तू पर्वत के समान विशाल और प्रकाश का पालक है। हे सत्य रूप आनन्द रस के पीने वाले इन्द्र ! तुम आकाश और पृथ्वी के सब पदार्थों मे अत्यन्त श्रेष्ठ हो। हे इन्द्र ! तू मन का साधन की ओर प्रवृत्त करने वाला एवं प्रकाश का स्वामी है ॥ १-२॥ हे इन्द्र ! तू शाश्वत, दोषनाशक, अज्ञान मिटाने वाला, याज्ञिकों को बढ़ाने वाला और दिव्य लोक का स्वामी है ॥ ३ (१९) ॥ यह दुष्ट-पुरों का भेदक, सतत युवा, कर्मों का पोषक, यजमानों का रक्षक, स्तुत्य इन्द्र प्रकट हुआ ॥१॥ हे वज्रिन् ! तू बल के द्वार को खोलने वाला तथा इन्द्रियों का आश्रय स्थान है ॥२॥ ससार को वश में रखने वाले इन्द्र को, स्तुति करने वाले मनाते हैं। उस इन्द्र का दान सहस्रों से भी पूर्ण है ॥३ (२०) ॥

(द्वितीयोऽर्ध)

ऋषि —पारशर शुन शेप अमित काश्यपो देवलो वा राहूगण:, प्रियमेध., नृमेधः, पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा, वसिष्ठ, वत्स काण्वः, शतं वैखानसाः, सप्तर्षय: वसुर्भारद्वाज, भर्ग प्रागाथ., भरद्वाजः, मनुराप्सव अम्बरीष ऋजिश्वा चः, अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा., अमहीयुः, त्रिशोकः काण्व, गोतमो राहूगणा, मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-पवमानः सोमः, पवमानाध्येतृस्तुति, अग्निः, इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्, गायत्री, अनुष्टुप्, बार्हत प्रगाथ, पङ्क्तिः, जगती, उष्णिक् ।

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो
वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१

मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी
देव सोम ॥२

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः
॥३।१

एष देवो अमर्त्य पर्णवीरिव दीयते ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥१

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥३

एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥५

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥६

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥७

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः ।
पवमानः स्वध्वरः ॥८

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्य. सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥९

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।
धारया पवते सुतः ॥१०१२ (१०-१)

जल-वर्षक, सर्वरक्षक सोम विस्तृत जल-धारक अन्तरिक्ष में प्रजोत्पत्ति के कारण महान् है । अभीष्टपूरक संस्कारित सोम ऊन के छन्ने में वृहद् होता है ॥१॥ हे स्तुत्य सोम ! अन्न धन के लिये वायु को प्रसन्न कर । संस्कारित हुआ तू मित्र, वरुण, मरुत, इन्द्रादि एव आकाश पृथिवी को हर्षदायक हो ॥२॥ जलों के गर्भ रूप सोम देवताओं का सेवनकर्ता हुआ, उसी ने इन्द्र को बल दिया, वही सूर्य को तेज देने वाला है । सोम बहुकर्मा है ॥३ (१) ॥ प्रकाशित मरण धर्म रहित यह सोम वेग पूर्वक कलश की ओर गति करता है ॥ १ ॥ स्तुति करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त यह सोम हविदाता को धन देता हुआ जलों में वास करता है ॥ २ ॥ यह तरल सोम वरण करने योग्य ऐश्वर्य को शक्ति से वशीभूत करता हुआ देने की इच्छा करता है ॥३॥

यह दिव्य सोम यज्ञ में आने की इच्छा वाला अभीष्टदायक और शब्दवान् है ॥४॥ यह दिव्य सोम स्तोताओं द्वारा प्रशमा गीतों से सुसज्जित किया जाता है ॥५॥ अँगुलियों से निचोड़ा हुआ दिव्य सोम किसी के द्वारा न मारा जाकर शत्रुओं को नष्ट करता है ॥६॥ धार रूप बरसता हुआ शब्दवान् सोम यज्ञ स्थान से दिव्य लोक को ऊर्ध्व गमन करने वाला है ॥७॥ उत्तम यज्ञ वाला सोम किसी के द्वारा भी हिंसित न होता हुआ यज्ञ स्थान से दिव्य लोक को प्राप्त होता है ॥८॥ हरा, चमकता हुआ यह सोम दिव्य गुणों के लिये सुसिद्ध किया जाता है ॥९॥ वह सोम अन्नोत्पादक होता हुआ वर्षणशील और असख्यकर्मा है ॥१० (२) ॥

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिरांशुभिः ।

यच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१

एष पुरु धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशते॥२

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणष्वायवः । प्रचक्राण महीरिषः॥३

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।

यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥४

एष रुक्मिमिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।

पतिः सिन्धूना भवन् ॥५

एष शृंगाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा ।

नृम्णा दधान ओजसा ॥६

एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।

अव शादेषु गच्छति ॥७
एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८।३ (१०-२)

अँगुलियों से निष्पन्न सोम इन्द्र स्थान को जाता हुआ कर्मों द्वारा पहुँचता है ॥१॥ महान देव-यज्ञ में यह सोम अनेक कर्मों वाला होता है ॥२॥ विभिन्न रस रूप अन्नों के वर्षक, शुद्ध होने योग्य सोम को ऋत्विज कलशों में छानते हैं ॥३॥ हवियों से संगत यह सोम अग्नि के निकट ले जाकर मध्य में डाले जाते हैं। वे अध्वर्युओं द्वारा देवापण के निमित्त होते हैं ॥ ४ ॥ श्वेत रश्मियों वाले वेगवान् सोम प्रवाहित हुये अध्वर्युओं की सगति करते हैं ॥ ५ ॥ शक्ति से ऐश्वर्यों को धारण कराने वाला यह सोम वृषभ द्वारा सींगों को कंपाने के समान अपनी तरंगों को कम्पित करता है ॥६॥ अकर्मण्य दुष्टों को पीड़ित करता हुआ यह सोम लाँघने की शक्ति वाला हुआ हिसा-योग्य दुष्टों को मारने के लिये जाता है ॥७॥ परमायुध युक्त आह्लादक हरे रग वाले सोम को दसों अँगुलियाँ गतिवान् बनाती हैं ।८ (३) ॥

एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥१
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभि. ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२
एष स्य मानुषोष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।

गच्छञ्जारो न योषितम् ॥३

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।

य इंदुर्वारमाविशत् ॥४

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।

क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ॥५

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।

याभिर्मदाय शुम्भते ॥६।४ (१०-३)

अभीष्ट-वर्षक वेगवान सोम यजमान को सहस्रों अन्न देने के लिये छनता हुआ कलश में प्रवेश करता है ॥१॥ इन्द्र के पीने के लिये अगुलियाँ इस हरे रंग के सोम को प्रेरित करती हैं ॥२॥ यह सोम मनुष्यों में अनुग्रहपूर्वक आकर प्रेमी के समान गुप्त रूप से व्याप्त होता है ॥३॥ आकाश में उत्पन्न हुआ है इस कारण उसके पुत्र तुल्य यह सोम हर्षयुक्त रस के रूप में सबको दिखाई देता है ॥४॥ देवताओं के लिये सम्पन्न हरा सोम शब्द करता हुआ कलश में जाता है ॥५॥ इस सोम को दश अगुलियाँ इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये शुद्ध करती हैं ॥ ६ (४) ॥

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन् मनसस्पतिः ।

अव्यं वारं वि धावति ॥१

एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।

विश्वा धामान्याविशन् ॥२

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥३

एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥४

एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥५

एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥५ (१०-४)

वेग से पात्रों में जाता हुआ यह मनस्वी ऊन के छन्ने में से धार रूप गिरता है ।। १ ।। देवताओं के निमित्त निष्पन्न यह सोम छन कर शुद्ध होता और देवताओं की देहों में स्थापित होता है ।।२।। मरण-धर्म से पृथक यह शत्रुनाशक सोम दिव्य गुणों की इच्छा से कलशस्थ होता है ।।३।। अभीष्ट-वर्षक यह सोम शब्द करता हुआ कलश में प्रविष्ट होता है ।।४।। प्रसन्नताप्रद, संस्कारित सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य को प्रकाश देता है ।।५।। वगीश्वर, अहिंसित सोम सबको ढकता हुआ प्रकाशित सूर्य द्वारा छन्ने पर डाला जाता है ।।६ (५) ।।

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप द्विषः ।।१

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते ।

पवित्रे दक्षसाधनः ॥२

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।

सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३

एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः ।

इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४

एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।

पुनान इंदुरिन्द्रमा ॥५

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।

देवावीरघशंसहा ॥६।६ (१०-५)

स्तुत्य सोम शुद्ध होता शत्रु-रहित काले मृग की छाल पर कूटा जाता है ।१॥ बल साधक, विजेता सोम इन्द्र और वायु के लिये निचोडा जाता है ॥ २ ॥ दिव्य लोक के मूर्धा रूप, अभीष्ट वर्षक शुद्ध सोम काठ के पात्रों में धार से छोड़ा जाता है ॥ ३ ॥ गौ और सुवर्णादि धनों की हमारे लिये इच्छा करने वाला शत्रु-विजेता अहिंसित सोम शब्द करने वाला है ॥ ४ ॥ अभीष्टपूरक हरे रग का शुद्ध करने वाला उज्ज्वल सोम छन्ने में टपकता है । यह इन्द्र को सन्तुष्ट करने वाला है ।।५।। देवताओं की रक्षा करने वाला, पाप-कर्मियों को नाश करने वाला, नष्ट न करने योग्य, शुद्ध पराक्रमी सोम कलश में जाता है ॥६ (६) ॥

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥१
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२
स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३
स त्रितस्योधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्य सह ॥४
स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥५
स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६।७ (१०-६)

दिव्य कामना वाला वह सोम इन्द्रादि के लिये निकाला गया, अभीष्टवर्षक, दुष्टों का नाशक छन्ने में जाता है ॥ १ ॥ सर्व-द्रष्टा, पाप-नाशक, धारक सोम छनता हुआ शब्द करता और कलशस्थ होता है ॥ २ ॥ आकाश करने वाला वेगयुक्त दैत्य-नाशक शोधित सोम छन कर धारयुक्त होता है ॥ ३ ॥ वह सोम यज्ञ में संस्कारित हुये अत्यन्त तेज से सूर्य को प्रकाशित करता है ॥४॥ शत्रु नाशक, वर्षक, निष्पन्न, धनदायक, अहिंसनीय सोम अश्व-वेग से कलश को प्राप्त होता है ॥५॥ दिव्य तरल सोम अपने रस से इन्द्र की पूजा करता हुआ कलशों की ओर वेगवान होता है ॥६ (७)॥

यः पावमानोरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥२

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥३

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवी देवै समाहृताः ॥४
येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥५
पावमानीः स्वस्त्ययनी स्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति
॥६।८ (१०-७)

ऋषियों द्वारा सम्पादित वेद के सार रूप पवमान वाले मन्त्रों का पाठ करने वाला पुरुष पवित्र हुई भोजन सामग्री को स्वाद से सेवन करता है॥ १ ॥ ऋषि-सम्पादित वेद की सार ऋचाओं के पाठ करने वाले का सरस्वती यज्ञ साधक-दुग्ध-घृत एवं आनन्द युक्त पेय को स्वयं दुहती है। अर्थात् उसे वेद-ज्ञान स्वयं हो जाता है ॥२॥ पावमानी ऋचायें कल्याणी और उत्तम फलदात्री है। मन्त्रदृष्टाओं ने उनका सम्पादन कर अविनाशी बल की स्थापना की है ॥३॥ देवताओं द्वारा सम्पादित पावमानी

ऋचाऐं हमें इहलोक और परलोक में सुखी करें और हमारे अभीष्ट की पूरक हों ।।४।। देवगण जिन शुद्ध साधनों से अपने शरीर को पवित्र रखते हैं उन साधनों द्वारा पावमानी ऋचायें हमको भी पवित्र बनावें ।।५ ।। अग्नि और सूर्यमान सोम से सम्बन्धित पावमानी ऋचाऐं अमर फल प्रदान करती हैं । उन ऋचाओं के पाठक दिव्यलोक को जाते हैं। पुण्य भोग और अमरत्व प्राप्त करते हैं ।।६ (८) ।।

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे
दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः
प्रत्यञ्चम् ।।१
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्नि
ष्टवे दभ आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्
गृणत उत नो मघोनः ।।२
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वं वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात
स्वस्तिभिः सदा नः ।।३।६
महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।।१
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधा ।।२

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥३॥१०॥ (१०-८)

अपने आह्वानीय स्थानों में काष्ठों द्वारा प्रदीप्त, आकाश-भूमि के मध्य में अद्‌भुत दीप्त वाले, उत्तम आहुति युक्त का प्रमाण पूर्वक आश्रय प्राप्त करते हैं ।। १ ।। अपने तेज से पाप-नाशक, धन का घर वह अग्नि यज्ञ-स्थान में पूजित होता है। वह हम स्तोताओं की पाप-कर्म और निंदा से रक्षा करें ।।२।। हे अग्ने ! तुम पाप-नाशक वरुण और पुण्य कर्मों में मित्र रूप हो। श्रेष्ठ जितेन्द्रिय साधक तुम्हें स्तुतियों द्वारा वृद्धि को प्राप्त कराते हैं। तुम्हारे देय धन हमारे लिये सेवनीय हों और तुम सब देवों सहित हमारे रक्षक होओ ।।३ (९) ।। वर्षक मेघ के समान अपने तेज से महान् वह इन्द्र पुत्र तुल्य स्तोता की स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होता है ।। १ ।। स्तोताओं द्वारा इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा यज्ञ का साधक बनाते ही शस्त्र निरर्थक हो गये ।।२।। आकाश को पूर्ण कर यज्ञ के लिये साक्षात हुये इन्द्र को उसके अश्व ले जाते हैं, तब यज्ञ को सफल कराने वाले स्तोत्र से ऋत्विज इन्द्र का यश-गान करते हैं ।।३ (१०) ।।

पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ।।1

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ।।२

पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः ।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३।११

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वाऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ।२
परि स्वानश्चक्षसे देव मादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३।१२

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी
राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो बारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं
घृतवन्तमासदत् ॥१
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो
नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं
ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥२
कविर्वेधस्या पर्येषिमाहिनमत्यो न मृष्टो अभिवाजमर्षसि।
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः
परि यासि निर्णिजम् ॥३।१३ (१०-६)

अन्धकार के बारम्बार विनाशक, हरे रङ्ग वाले, सर्वत्र गमनशील, तेज वाले सोम की आनन्दवर्षक धार छन्ने में से गिरती है ॥१। अधिक दमकता हुआ हरे रग का सोम मरुद्गण की सहायता से पुष्ट सबको तरंगित करता है ॥ २ ॥ हे सोम !

अत्यन्त अन्न और बलदायक तू स्तोता को उत्तम पुत्र और धन प्रदान करता हुआ संसार को तरङ्गित कर ॥३ (११) ॥ देवताओं का उत्तम हवि सोम मनुष्य का हितैषी हुआ जलों में प्रविष्ट होता है। अध्वर्यु उसे पाषाणों से कूटते हैं। उस सोम का सिंचन करो ॥१॥ हे सोम! किसी के द्वारा भी नष्ट न किया जाता तू अत्यन्य सुगन्धित शुद्ध भात गोघृत से मिल कर हमारे द्वारा सम्पन्न हो ॥ २ ॥ दिव्य, तृप्ति कर, यज्ञ साधक, चमकता हुआ सोम सब के देखने के लिये कलश में टपकता है ॥ ३ (१२) ॥ प्रकाशित, वर्षक, हरा, सिद्ध सोम जलों की ओर शब्द करता हुआ छनता है। वह पक्षी के वेग से जल-पूर्ण पात्र में जाता है ॥१॥ बड़े पत्र वाले सोम पृथ्वी के नाभि रूप पर्वत पर स्थापित होते हैं। वे जलों और स्तुतियो को प्राप्त करते हुये यज्ञ-स्थान को जाते हैं ॥२। हे सोम! तू यज्ञ विधान की कामना वाला छन्ने को प्राप्त होता हुआ हमारे पापों को नाश करता है। हमे सुखी कर। जलों पर छाया हुआ तू दोष-रहित हो ॥३ (१३) ॥

आयन्त इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भाग न दोधिमः ॥१
अलर्षिराति वसुदामुप स्तुहि भद्रा इंद्रस्य रातयः।
यो अस्य कामं बिधतो न रोषति
मनो दानाय चोदयन् ॥२॥१४

यत इंद्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मधवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१
त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्त्ता।

तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥२।१५ (१०-१०)

हे पूर्व पुरुषो ! सूर्य को सेवन करने वाली रश्मियों के समान इन्द्र का सेवन करो। अपने बल से इन्द्र जिन धनों को प्रकट करता है उन्हें हम पितरों के भाग के समान प्राप्त करते हैं ॥१॥ हे स्तोताओ ! सत्यानुयायियों को देने वाले इन्द्र का स्तवन करो। वह कल्याण रूप दान की प्रेरणा वाला उपासक की कामना व्यर्थ नहीं होने देता ॥ २ (१४) ॥ हे इन्द्र ! हिंसा करने वालों के भय से हमें बचाओ। हमारी रक्षा के लिये सामर्थ्य प्राप्त कर बैरी और हिंसकों को मारो ॥ १ ॥ हे धनेश इन्द्र ! हमारे देने को तुम असंख्य धनों के धारक हो। हे स्तुत्य। सोम को सिद्ध कर हम तुम्हें बुलाते हैं ॥२ (१५) ॥

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥१
त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।
इंदुः सत्राजिदस्तृतः ॥२
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३।१६
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभि रोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ।
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥३।१७
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वा इत्परि मदेन सह गच्छति ॥१
द्विर्यं पच स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥२
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥३।१८

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१
प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२
शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य
इन्दुम् ॥३।१९
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥२
अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्र मुक्थ्य ॥३।२० (१०-११)

हे सोम ! परम सुख वाला तू हमारे अहिंसा वाले यज्ञ में अपनी धाराओं को धन देने वाली बना। साधकों को इच्छित तू कलश में सिद्ध हो ॥१॥ हे सोम ! तू अत्यन्त शक्ति से यज्ञ-धारक, दीप्त, विजेता और किसी से भी नष्ट न होने वाला है ॥२॥ हे सोम ! छना हुआ तू शब्द से कलश में जा और शुद्ध बल प्रदान कर ॥३(१६)॥ हे सोम ! देवताओं के सेवनार्थ धारा रूप कलशस्थ हो। शक्तियुक्त हुआ हमारे पात्र में आ ॥१॥ जलों में प्रविष्ट हुये तेरे रस को शक्ति को इन्द्र बढ़ाता है। फिर देवगण अमरत्व प्राप्ति के लिये तेरा पान करते हैं ।।२॥ आकाश से वर्षक, साधकों को दिव्यताप्रद, संस्कारित सोम ! तू हमको धन दिला ॥ ३ (१७) ॥ सबके इच्छित, पाप-नाशक सोम को शुद्ध करते हैं। वह सब देवों को हर्षयुक्त रस सहित प्राप्त हो। १॥ पाषाणों द्वारा कूटे हुये इन्द्र के प्रिय तथा सब को इच्छा किये हुये सोम को दशों अँगुलियाँ भले प्रकार स्वच्छ करता है ॥२॥ हे सोम ! दुष्ट नाशक इन्द्र के पान करने को, जिसके लिये किये जाने वाला यज्ञ दक्षिणा वाला होता है, उसके लिये तथा यज्ञ करने वालों के लिये पात्रों में तुम टपकते हो ॥३ (१८) ॥ हे सोम ! अश्व के समान जल से स्वच्छ किया हुआ तू ऐश्वर्य और शक्ति के लिये पात्र में आ ।।१॥ हे सोम ! हर्ष के लिये तुझे साधक गण शुद्ध करते हैं। अन्न और यश के लिये तुझे शोधा जाता है ॥ २ ॥ देवताओं के निमित्त उनके पुत्र के समान प्रिय और सत्कार वाले सोम को ऋत्विज शुद्ध करते हैं ॥३ (१९) ॥ प्रकट, प्रेरणा वाले, शत्रु-नाशक, गोघृत आदि से सिद्ध किये गये सोम को देवगण प्राप्त करते हैं ॥१॥ इन्द्र के हृदय का सेवन करने वाले सोम को हमारी स्तुतियाँ वृद्धि करें, उसी प्रकार, जैसे शिशु को माताये अपने दूध से बढ़ाती

हैं ॥२॥ हे सोम ! हमारी गौओं को सुख-वर्षक हो। अन्न-राशि से हमारे घर को पूर्ण कर। हे स्तुत्य ! कलशस्थ रस की वृद्धि कर ॥३ (२०) ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ।।१

बृहन्निदिध्म एषा भूरि शस्त्र पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३।२१

य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।
इशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग ॥१

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आ विवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अंग ॥२

कदा मर्त्तमराधस पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा न शुश्रवद् गिर इन्द्रो अंग ॥३।२२

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१

यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थ चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२

युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

अथा न इंद्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं

चर ॥३१२३॥ (१०-१२)

अग्नि को प्रज्वलित करने वाले साधको का इन्द्र सदा मित्र रहता है। वे साधक क्रमपूर्वक कुशायें बिछाया करते हैं ॥१॥ ऋषियों के पास समिधाये पर्याप्त हैं। स्तोत्र भी असख्य हैं। उनका इन्द्र सदा मित्र रहता है ॥२॥ इन्द्र जिनका मित्र है, उनमें जो योद्धा हुआ वह शत्रु को अपने बल के सामने झुकाता है ॥ ३ (२१) ॥ हविदाता को धन देने वाला इन्द्र, जिसके कोई प्रतिकूल नहीं रहता, वह ससार का स्वामी है ॥१॥ जो यजमान सोम का सस्कार करता हुआ तुम्हारी उपासना करता है, उसे हे इन्द्र! तुम शीघ्र हो बल देते हो ॥२॥ वह हमारी स्तुतियो को सुनता ही है और असाधक को क्षुद्र पौधे की भाँति नष्ट कर देता है ॥ ३ (२२) ॥ हे इन्द्र! स्तोता तुम्हारा यश-गान करते और मन्त्रोच्चार द्वारा पूजन करते हैं। ऋत्विज तुम्हे उच्चपद देते हैं ॥१॥ यजमान सोम-समिधादि के निमित्त पर्वत पर जावे हैं और यज्ञ कर्म करते हैं। तब उसकी इच्छा को जानने वाला इन्द्र अभीष्टवर्षक हुआ यज्ञ मे जाने को उद्यत होता है ॥२॥ हे सोम-पायी इन्द्र! पुष्ट अश्वों को रथ में जोड़ कर हमारी स्तुतियाँ सुनने के लिये यहाँ पधारो ॥३ (२३) ॥

॥ इति पञ्चमः प्रपाठकः समाप्तः ॥

षष्ठः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः, वसिष्ठः, प्रगाथः काण्वः, पराशरः, प्रगाथो घोरःकाण्वः मेध्यातिथिः, काण्वः, त्र्यरुणत्रसदस्यू, अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः, हिरण्यस्तूपः, सार्पराज्ञी । देवता-इद्‌मः समिद्धो वाग्निः, तनूनपात, नर शंसः इडः, आदित्यः, पवमान. सोमः, अग्निः, सूर्यः । छन्द.—गायत्री, त्रिष्टुप् बार्हतः प्रगाथः अनुष्टुप्ः पङ्क्तिः, जगती, ।

सुषमिद्धो न आवह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥१
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुह्यूतये ॥२
नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उपे ह्वये ।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आवह ।
असि होता मनुर्हितः ॥४॥१
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥१
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥२

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये ।
महो राजान ईशते ॥३।२
उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिव. ।
अव ब्रह्माद्विषो जहि ॥१
पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
न हि त्वा कश्च न प्रति ॥२
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥३।३ (११-१)

हे ज्ञान, संकल्प रूप अग्ने ! तू उत्तम प्रकार से प्रज्वलित हुआ समर्थक को दिव्य गुण प्रदान कर। उसके मन को ईश्वर की ओर प्रेरित कर ॥ १ ॥ हे मेधावी अग्ने ! तू हमारे यजन के लिये योग्य हवियों को देवताओं को प्राप्त करा ॥२॥ मैं इस यज्ञ में देवताओं के प्रिय अग्नि का आह्वान करता हूँ । वह मेरी हवियों को देवताओं को प्राप्त करावे ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमारी स्तुति से प्रभावित तू दिव्य गुणों का सम्पन्न कराने वाला हो। मन्त्र रूप से स्थापित हुआ तू यज्ञ-कार्य का प्रारम्भकर्त्ता है ॥ ४ (१) ॥ सूर्योदय के समय मित्र, अर्यमा, भग,सविता अभीष्ट धन के प्रेरक हैं ॥ १ ॥ वे मित्रादि देवगण हमारी रक्षा करें। यज्ञ स्थान वाला अग्नि हमारी रक्षा करे । हम पापों से मुक्त हों ॥२॥ मित्रादि देव अपनी माता अदिति सहित हमारे कर्मों के अधिष्ठाता हैं, वह अभीष्ट धन के अधिपति हमारा इच्छितपूर्ण करने में सशक्त हैं ॥३ (२) ॥ हे इन्द्र ! तुम्हें सोम हर्षित करे।

तुम हमें ऐश्वर्य देते हुये पापियों को नष्ट करो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो। तुम्हारे समान कोई नहीं। तुम अदानशीलों को पीड़ित करने वाले हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम प्रकट, अप्रकट पदार्थों के स्वामी हो। सभी प्राणियों के ईश्वर हो ॥३ (२)॥

आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु।
सपन्ति यं म्थिुनासो निकामा।
अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१

स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष
आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती।
सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो।
मीढ्वाॅ अभि नो ज्योतिषावित्।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो।
अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३।४

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इंद्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१
अवक्रक्षिण वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम्।
विद्वेषणं संवननमुभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२।५
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋषि.—गोतमो राहूगणः, वसिष्ठः, भरद्वाजो बार्हस्पत्य', प्रजापतिः, साभरिः काण्वः, मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ:, ऋजिश्वाः, उर्ध्वसद्माः, तिरश्चीः, सुतम्भर. आत्रेयः, नृमेधपुरुमेधौ, शुनःशेप आजीगर्ति', नाधा , मेध्यातिथिः काण्व , रेणुर्वैश्वामित्र', कुत्सः अगस्त्य' ॥ देवतो—अग्निः, पवमानः सोमः, इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्रीः, अनुष्टुप्ः, काकुभः प्रगाथः, बार्हतः प्रगाथः त्रिष्टुप्ः जगती ॥)

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
आर अस्मे च शृण्वते ॥१

य स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः ।
उतास्मान् पात्वंहस ॥३

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनञ्जयो रणेरणे ॥४॥१॥ (१२–१

यज्ञानुष्ठान के लिये अग्नि का आह्वान करते हुये स्तोताओं को सुनने वाले अग्नि का ही स्तवन करें ॥१॥ वह अग्नि सदा से कर्म करने वाली प्रजाओं के एकत्रित होने पर साधक के ऐश्वर्य का रक्षक होता है ॥२॥ वह कल्याणकारी अग्नि हमारे धन को बचाता हुआ पापी को दूर करे ॥३॥ शत्रुओं का नाशक अग्नि प्रकट होकर धन को जीत कर देता है, उसकी सब स्तुति करते हैं ॥४ (१) ॥

अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः

अरं वहन्त्याशवः ॥१

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।

आ देवान्त्सोमपीतये ॥२

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।

शोचा वि भाह्यजर ॥३।२

प्र सुन्वानानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तदवचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणा वरो न योनिमासदम् ॥२

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३।३

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥१

न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

यदा कृणोसि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥२।४

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥१

के तुम मित्र नहीं होते। मदिरा पीने वाले यज्ञादि कर्मों से रहित व्यक्ति तुम्हें प्रसन्न नहीं कर सकते। स्तोता पर जब अनुग्रह करते हो, तब उसे ऐश्वर्य प्रदान करते हो ॥२ (४) ॥ हे इन्द्र ! हमारी हवियों से युक्त अश्व तुम्हें स्वर्ण रथ में बैठा कर, हमारे यज्ञ में सोम-पान के लिये लावें ॥१॥ हे इन्द्र ! स्तुत्य, मधुर सोम का पान करने के लिये तुम्हारे अश्व तुम्हें यज्ञ-स्थान को प्राप्त करावें ॥२॥ हे देववाणी द्वारा स्तुत्य इन्द्र ! इस शोधित सोम का पान करो। यह आह्लादकारी गुणों वाला है ॥३ (५) ॥ हे ऋत्विजो ! अश्व के समान वेग वाले, स्तुत्य, जलों को प्रेरणा देते हुये, तैरने वाले सोम का शोधन करो ॥१॥ अभीष्ट पूरक अनेक धार युक्त दुग्ध तुल्य एवं तृप्तिदायक सोम को देवताओं के निमित्त सत्कार करो। वह दिव्य गुण वाला सोम जलों मे उत्पन्न हुआ वृद्धि प्राप्त करता है ॥२ (६) ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥७

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥१

भद्रा वस्त्रा समन्याऽऽवसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।

शत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्
॥२।६

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥२

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥३।७

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥२
इंद्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय ।
विश्वे च देवाः ॥३।८ (११-२)

चैतन्य, सत्य रूप वाणी का ज्ञाता सोम शुद्ध होकर पात्र में जाता है । एकत्रित हुये इच्छा करने वाले साधकों द्वारा यह सुरक्षित रखे जाते हैं ॥१॥ शुद्ध एवं यज्ञ साधक सोम इन्द्र को प्राप्त कर आकाश पृथ्वी को पूर्ण करता है । उसकी सुन्दर धारायें उन्नतिप्रद, रक्षक और ऐश्वर्य दात्री हैं ॥२॥ अपनी कला से देवों की वृद्धि करने वाला शुद्ध सोम अभीष्ट वर्षक एवं रक्षक है ।

उसकी प्रसन्नता से हमारे पूर्वज परमानन्द के लिये परम-पद पर पहुँचे थे ।। ३ (४) हे मित्रो ! इन्द्र को छोड़ किसी अन्य की स्तुति न करो । अन्य की स्तुति द्वारा क्षीण न होओ । सोम के शुद्ध होने पर सभी मिलकर इन्द्र के ही स्तोत्रों का पाठ करो ।।१।। वृषभ के समान शीघ्रगामी, शत्रु-नाशक, उपासकों के आराध्य, दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों के दाता इन्द्र का ही स्तवन करो ।। २ (५) ।। वे अत्यन्त मधुर वेद वाणी रूप स्तोत्र हमें प्रेरणा देते है जिससे सभी विघ्न शत्रु आदि को जीतकर धन प्रदाता सोम अटल रक्षा वाला रथों के समान धन लाने वाला होता है ।।१।। ऋषियों के समान स्तुति और ध्यान किये हुये इन्द्र को सोम व्याप्त करते हैं, जैसे सूर्य-रश्मियाँ ससार को व्याप्त करती हैं । यज्ञ कर्म वाले साधक इन्द्र का ही स्तवन करते हैं ।।२ (६)। हे सोम ! तू भले प्रकार से ऐश्वर्य देने वाला हो। इस मार्ग में बाधा देने वालों को नष्ट कर । हमको भी शत्रु-नाशक सामर्थ्य से युक्त कर ।। १ ।। हे सोम ! तूने जल धारक अन्तरिक्ष में तेज को उत्पन्न किया । उपासकों को गवादि पशु और ज्ञानेश्वर्य से युक्त करते हुये शक्ति का उत्पादक होता है ।।२। हे सोम ! तेरे निष्पन्न होने पर जितेन्द्रिय हुये हम सुख भोगते हैं । तू शुद्ध हुआ हमारी इन्द्रियों में व्याप्त होता है ।।३ (७) ।। हे आनन्द देने वाले सोम ! मित्र, पूषा, भग और इन्द्र के लिये प्रवाहित होता हुआ प्राप्त हो ।। १ ।। हे सोम ! दिव्य लोक में देवताओं के निमित्त प्रकट हुआ तू अमरत्व के लिये वर्षणशील हो ।।२।। उत्तम ज्ञान और बल के लिये निष्पन्न सोम-रस को इन्द्र सहित देवगण पान करें ।।३ (८) ।।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।

तन्तु ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥१
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२
उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३।९

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आसि नित्यः ॥२
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३।१०

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।

व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२
त्रिशद्धाम वि राजति वाक्पतंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥११॥ (११-३)

सूर्य रश्मियों के समान वाहक, आनन्दवर्द्धक सोम-धारायें शुद्ध हुई फैलती हैं। वे इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को प्राप्त नहीं होती ॥१॥ अपने मन को इन्द्र से मिलाते हैं। मधुर सोम इन्द्र के लिये सींचा जाता है। सोम धारायें उसके मुख की ओर प्रेरित होती हैं ॥ २ ॥ वृषभ के गर्जन का शब्द करती हुई गौरूप स्तुतियां सोम की अनुगत होती हैं, वे सोम के संस्कार करने वाले स्थानों को जाती हैं। सोम छनकर टपकता हुआ मिश्रण में जाता है ॥३ (९) ॥ हे ऋत्विजो! ज्ञान-धर्म द्वारा उत्पन्न अग्नि को प्राप्त करो। वह दूर दृष्टा अगम्य और स्थिर है ॥ १ ॥ जो अग्नि नित्य, प्रज्वलित, दर्शनीय एवं भय को निर्मल करने वाला है, उसे साधक यज्ञशाला में प्रतिष्ठित करते है ॥ २ ॥ हे प्रदीप्त होते हुये अग्नि देव! पूर्ण प्रकाशित हुये दृढ़ संकल्प वाले तुम निरन्तर ज्वाला से व्याप्त हो ॥ ३ (१०) ॥ गति वाली पृथिवी जैसे तेजस्वी सूर्य के चारों ओर घूमती हुई अपने मातृभूत सूर्य को देखती और स्पर्श करने का यत्न करती है, वैसे ही इन्द्रियां तेज रूप आत्मा की प्राप्ति के लिये गतिवान होती हैं ॥१॥ आकाश और पृथिवी के बीच इस सूर्य का तेज उदय से अस्त तक दमकता रहता है। वह महान् सूर्य अन्तरिक्ष को भी प्रकाशयुक्त बनाता है ॥२॥ वह सूर्य दिन की तीस घड़ियो में अपने तेज से अत्यन्त प्रकाशित रहता है। उस समय ऋक, यजु, साम की वाणी रूप स्तुतियां सूर्य को प्राप्त होती हैं ॥३ (११) ॥

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति ।
वसु भिर्न निक्तैः ॥३।१५

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्मां अवन्तु ते धियः ॥१

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नस्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा न सुम्नेषु यामय
॥२।१६

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे
व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे
यहतैरवर्धत ॥१
स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि
शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा
सदो विदुः ॥२
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना
अगृम्णत ॥३।१७ (१२-५)

हे अग्ने ! जिस पुरुष को संघर्ष के लिये प्रेरित कर उसकी तुम रक्षा करते हो, वह तुम्हारे बल से अन्नों को वश में रखने वाला होता है ॥१॥ हे शत्रु-पीड़क अग्ने ! तुम्हारे उपासक पर

आक्रमण कोई नहीं कर सकता, क्योंकि उसका बल प्रशंसनीय है ॥२॥ मनुष्यों में रहने वाला वह अग्नि संकट से तारने वाला अभीष्ट फलदायक हो ॥ ३ (१४) ॥ दशों अँगुलियाँ सोम की शोधक और प्रेरक होती हैं। सूर्य को उत्पन्न करने वाला हरे रङ्ग का सोम गतिवान् हुआ कलश को प्राप्त होता है ॥१॥ देवताओं का प्रिय, काम्य, वरणीय सोम माता द्वारा दूध से शिशु को धारण करने के समान जलों द्वारा धारण किया जाता है ॥२॥ गौओं के योग्य घासों में प्रविष्ट हुआ दुग्ध को पुष्ट करता है। उस उत्तम बुद्धि देने वाले धार-युक्त सोम को गौऐं अपने दूध से ढक देती हैं ॥३ (१५) ॥ हे इन्द्र! हमारे रस युक्त संस्कारित सोम को पीकर आनन्द प्राप्त करो। तुम्हारे साथ पिये जाने वाले सोम के द्वारा हमारी वृद्धि करते हुये सुमति द्वारा रक्षक बनो ॥१॥ हे इन्द्र! तुम्हारी कृपा से हमें अन्न मिले। शत्रु हमको नष्ट न कर सके। अपने अद्भुत रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करते हुये सुखी बनाओ ॥२(१६)॥ सोम से तृप्त हुई गौऐं दुग्धादि देने में समर्थ होती है। यज्ञों से वृद्धि को प्राप्त हुआ यह सोम शोधित हुआ मंगलकारी होता है ॥१॥ वह इन्द्र याचना करने पर आकाश पृथ्वी को जल से भर देता है। उस समय सोम को हवि युक्त करते हुये ऋत्विजगण यज्ञ कर्म को उद्यत होते हैं ॥२॥ अमरत्व प्राप्त सोम की तरगे जीवों की रक्षक हों। उन्हीं के द्वारा सोम अन्न, बल को प्रेरित करता है और शुद्ध होने पर उसका स्तवन किया जाता है ॥३ (१७) ॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।

अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव
सोम ॥२
अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्नि वन्नः ॥३।१८
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥१
तत्तो यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२
आमासु पक्वभैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्
॥३।१९
मत्स्वपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा
॥३।२० (१२-६)

हे सोम ! स्तुति युक्त तू वायु के पीने को हो । तुझे मित्र, वरुण प्राप्त करें । वेगवान् रथ में सवार अश्विनीकुमार और अभीष्टवर्षक इन्द्र के पीने को प्रस्तुत हो ॥ १ ॥ हे दिव्य सोम !

उत्तम वस्त्रों से युक्त ऐश्वर्यों का दाता बन। तू शोधा हुआ, हमारी नव प्रसूता दुधारू गौओं के लिये सुख देने वाला हो ॥२॥ हे सोम! तू शोधा जाता हुआ हमको दिव्य गुण प्रदान कर। सभी पार्थिव धनों को देने वाला हो। धन का उपभोग करने की शक्ति भी दे ॥३ (१८)॥ हे आदि पुरुष मघवन! तुमने शत्रु-नाश के निमित्त भूमि को पुष्ट किया और आकाश को ऊँचा उठाया ॥१॥ हे इन्द्र! तुम्हारे प्राकट्य काल में ही यज्ञादि कर्म और दिन का नियामक सूर्य उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् सब जगत की सृष्टि ॥ २ ॥ हे इन्द्र कच्ची अवस्था वाली गौओं के परिपक्व होने पर तूने दूध-स्थापन किया। अन्तरिक्ष में सूर्य को प्रकट किया। हे स्तोताओ! साम-गान द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करो ॥३ (१९)॥ हे पापों को हरण करने वाले इन्द्र। सोम जैसा पात्र के लिये, वैसा ही तुम्हारे लिये है। उसे तृप्त करने वाले वर्षक, आनन्द वाले, सोम का पान करते हुये हर्षित होओ ॥१॥ हे इन्द्र तुमको हमारा वरणीय और मन्त्रोच्चारण युक्त तथा शत्रुओं के पराभव की शक्ति देने वाला अविनाशी सोम प्राप्त हो। (२)॥ हे इन्द्र! तुम वीर और दाता हो। हमारे अभीष्ट को प्रेरित करो। अग्नि की ज्वाला अपने आश्रयस्थान पात्र को भी तपाती है वैसे ही तुम यज्ञ कर्म से विमुख याज्ञिक को जला डालो ॥३ (२०)॥

(तृतीयोऽर्धः)

ऋषि—कविर्भार्गवः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, असितः कश्यपो देवलो वाः, सुकक्षः, विभ्राट् सौयः, वसिष्ठः, भर्गः, प्रागाथः, शत वैखानसाः, यजत आत्रेयः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, उशनाः, विश्वामित्रः,

आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ।२
समु प्रियो मृज्यते सानौ अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो
अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः
सदा नः ॥३।८

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥१
इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारया शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाज सिषाससि
॥३।९ (१२-३)

उत्तम प्रकार से प्रज्वलित, श्वेत, हवियों से पुष्ट किया हुआ अग्नि, धनदाता, शत्रु और अज्ञान का नाशक है ॥१॥ सत्य के आश्रयभूत अग्नि साधक के अन्तःकरण में प्रकाशित होता है ॥२॥ हे अग्ने ! प्राणी मात्र को जानने वाला और सबको देखने वाला तू सन्तान और अन्नयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करे ॥ ३ (७) ॥ उज्ज्वल सोम अपने रस को देवताओं में मिलाता है। आराधक ऋत्विज के अश्वादि युक्त घरों में जाने के समान कूटा हुआ सोम छन कर पात्रों में पहुँचता है ॥१॥ हे संघर्षों में तेजवान्, साधकों द्वारा स्तुत्य, चैतन्य सोम ! तू यज्ञशाला में रखे पात्रों में अवस्थित हो ॥२॥ भूमि पर प्रकट, तृप्तिदायक यशस्वी सोम शोधा जाता है। हे सोम ! तू शब्द करता हुआ हमें रक्षा-साधनों से युक्त

कर ॥३ (८)॥ आओ, मुझ इन्द्र को पवित्रप्रद सोम से शुद्ध करो। गोघृतादि से युक्त सोम की भेंट देकर सुखी बनाओ ॥१॥ हे इन्द्र! सोम आदि के द्वारा पवित्र हुआ तू मरुद्गणों के साथ आकर ऐश्वर्य स्थापित कर। तू शुद्ध हुआ इस सोम से आनन्दित हो ॥२॥ हे इन्द्र! तू पवित्र हुआ हमें ऐश्वर्यशाली बना। उत्तम कर्मों में आने वाले विघ्नों को दूर कर। शत्रु को मारने के दोष को निवारण करने के लिये हमारे मन्त्रों से शुद्ध हुआ तू हमको ऐश्वर्य देने का इच्छुक है ॥३ (९)॥

अग्ने स्तोमं मनोमहे सिध्रमद्यदिविस्पृशः ।
देवस्य द्रविणस्यव ॥१

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥२

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३।१०

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गोषिणमवावशंत वाणी. ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धूर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥१

शूरग्राम सर्ववीर सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्
पृतनासु शत्रून् ॥२

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वाऽर्गाः स चिक्रदो महो ।

अस्मभ्यं वाजान् ॥३।११

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजोषो शवसस्पतिः ।

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥१

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो

अश्नुवन् ॥२।१२

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देव देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१

अपां नपात सुभग सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं

यक्षते दिवि ॥२।१३ (२२-४)

सूर्यरूप आकाश व्यापी अग्नि के लिये हम धनेच्छुक उपासक सिद्ध स्तोत्रों का पाठ करते हैं ॥१॥ यज्ञ-साधक, मनुष्यों का साथी अग्नि हमारी स्तुतियो को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम सदा प्रसन्न, वरणीय, यज्ञ-साधक और महान् हो। तुम्हारे द्वारा ही यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं ॥३ (१०)॥ अभीष्टवर्षक अन्नदाता सोम की ओर स्तोताओं की स्तुतियाँ प्रेरित होती हैं। जलो को आच्छादित करने वाला सोम धन देने वाला है ॥१॥ अनेक वीरों को प्रेरित करने वाला, शीघ्र कार्य करने वाला, विजेता सोम कलश में टपके ॥ २ ॥ हे सोम ! स्तोताओं को निर्भय बनाने वाला तू आकाश पृथ्वी से मेल करता हुआ वर्षण-

शील हो। हमको ऐश्वर्यदायक बन ॥३ (११) ॥ हे इन्द्र! तू अन्न-बल-रक्षक सोम का अधीश्वर साधक का रक्षक और दुष्टों का नाश करने वाला है ॥ १ ॥ हे बली इन्द्र! अपने पिता से धन माँगने के समान हम तुमसे याचना करते हैं। तुम दिव्य लोकवासी हमको सुखी करो ॥ २ (१२) ॥ हे अग्ने! तुम दानी, देवदूत, अविनाशी, यज्ञ के कर्त्ता और यजन योग्य का हम स्तवन करते है। १॥ हवि जल का उत्पत्ति कर्त्ता है, जल वनस्पति को और वनस्पति अग्नि को प्रकट करने वाला है। इस प्रकार जलों के पौत्र रूप अग्नि की हम उपासना करते हैं। वह मित्र, वरुण और जगत के लिये यजन करने वाला हो ॥२ (१३) ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु य जुना ।
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१
न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३।१४
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः
मर्यो न योषामभि, निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२
उत प्र पिप्य ऊधरघ्नयाया इदुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

हर्यंतः प्रागाथः, बृहद्दिव आथर्वणः, गृत्समदः । देवता—पवमानः सोमः, इन्द्रः, सूर्यः, सरस्वान्ः, सरस्वतीः, अग्निः, मित्रावरुणौ, अग्निर्हवींषि वा । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् बृहती, जगती, बार्हतः प्रगाथ, त्रिष्टुप् अष्टिः, शक्वरी ।)

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥२

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३

स न ऊर्जे व्याऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवास. श्रृणवन् हि कम् ॥४

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ् घनत् ।
प्रत्नयद्रोचयन्रुचः॥५।१०

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्र सुतेभिरिन्दुभिः ॥२

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

वेदा विश्वस्य मेधिरो धृसत्त तमिदेषते ॥३

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत्

॥४।२॥ (१३-१)

हे सोम ! तू वर्षणशील हो, जलों को तरङ्गित कर स्वास्थ्यप्रद अन्न की वर्षा कर ।।१।। हे सोम ! तू शत्रुओं की गौओं को हमारे घर पहुँचाने वाली धार से वर्षा कर (अर्थात् शत्रु-देश में सूखा पड़े तो वहां की गौऐं हमारे देश में आकर सुखी हों) ।।२।। हे सोम ! यज्ञों में देवताओं द्वारा इच्छा किया हुआ तू हमारे निमित्त परमानन्द के सार रूप जल की वर्षा कर ।। ३ ।। हे सोम ! तू हमारे लिये अन्न प्रेरक हुआ छन्ने में जा। उस समय के तेरे शब्द को सुनकर हमारा उत्साह बढ़े ।।४।। द्वेषों का नाशक, दीप्तियों से प्रकाशित सोम स्रवित होता है ।।५ (१) ।। हे पुरुष तू यज्ञ संचालक, सर्वज्ञाता गतिवान् इन्द्र की सोम-पान की इच्छा को पूरी कर ।। १ ।। हे पुरुषो ! संस्कारित सोमों को पीने वाले इन्द्र के सामने जाकर उसका स्तवन करो ।।२।। हे मनुष्यो ! दीप्ति युक्त सोमों को लेकर इन्द्र की शरण में उपस्थित होने पर वह सब अभीष्टों को देखता हुआ, शत्रु को भयभीत करता हुआ सभी इच्छाऐं पूर्ण करता है ।।३।। हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के लिये सोम अर्पण करो। शत्रु द्वारा हिंसा कर्मों से इन्द्र हमारा रक्षक है ।।४ (२)।।

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।

सोमाय गाथमर्चत ॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।
मधावा धावता मधु ॥२
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतनइंदुमिन्द्रे दधातन ॥३
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः ।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६।३
उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् अस्तारमेषि सूर्य॥१
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥३।४ (१३-२)

हे स्तुति करने वालो ! बली, आकाश को छूने वाले सोम के लिये स्तुतियाँ करो ॥१॥ हे मनुष्यो ! पाषाणों से निष्पन्न सोम को शुद्ध कर उसमें गो दुग्ध मिलाओ ॥२॥ हे ऋत्विजो ! सोम को नमस्कार कर उसे दही से मिश्रित कर इन्द्र के लिये रक्खो ॥ ३ ॥ हे सोम ! शत्रु-नाश और देवेच्छा में रत तू हमारी गौओं को पुष्ट कर ॥४॥ हे सोम ! तू मन में रमने वाला और मन का स्वामी हुआ इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये संस्कारित

होता है ॥५॥ हे सोम ! हमको इन्द्र के द्वारा पुष्ट भोगों का दिलाने वाला हो ॥६ (३) ॥ हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे इन्द्र ! तुम याचकों को धन-वर्षक और मनुष्यों के हितैषी हुये उपासक को अनुग्रह पूर्वक देखते हुये प्रकट होते हो ॥१॥ अपने बाहु बल से राक्षसों के नगरों को ध्वंस करने वाला एव वृत्र नामक दैत्य का नाशक इन्द्र हमको धन प्रदान करे ॥२॥ हमारे लिये कल्याण रूप मित्र इन्द्र गौओं की असंख्य दुग्ध-धारों के समान बहुसंख्यक धन प्रदान करे ॥३ (४)॥

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता वविह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति-बहुधा वि राजति ॥१

विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्म दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह—ओजो अच्युतम् ॥३।५

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्योमाऽशिवासोऽवक्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२।६
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पत अहा दिवा नक्तं च
रक्षिषः ॥१
प्रभंगी शूरो मघवा तुवामघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते वाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं—
मिमिक्षतुः ॥२।७ (१३-३)

तेजस्वी सूर्य यजमान को आयुष्मान् बनाता हुआ सोम रूप मधु का पान करे। वह सूर्य सब संसार का द्रष्टा, पालक, वर्षा द्वारा पोषक, प्रतिष्ठित है ॥१॥ प्रतिष्ठित, पुष्ट, अन्न बल देने वाली अविनाशी ज्योति सूय मण्डल में स्थापित हुई ॥२॥ सूर्य रूप यह ज्योति ग्रह नक्षत्र आदि को भी प्रकाशित करने वाली विश्व-विजयिनी हुई। यह जगत को प्रकाशित करने वाली विस्तृत अन्धकार को मिटाने में समर्थ है ॥ ३ (५) ॥ हे इन्द्र ! हमारे उत्तम कर्मों का फल प्रदान करो। पिता के समान धन दो। यज्ञ में हमको सूर्य के नित्य दर्शन हों ॥१॥ हे इन्द्र ! पाप-कर्म करने वाले व्यक्ति हमारा अपमान न करें, हम स्तुति करने वाले तुम्हारी रक्षा में नदियों का पार करने वाले हों ॥२ (६)॥ हे इन्द्र ! वर्तमान और भविष्य में हमारे रक्षक हो। हे सत्य-पालक इन्द्र ! हमारी दिन रात सर्वत्र रक्षा करने वाले होओ ॥१॥ यह पराक्रमी, शत्रुओं का मान भङ्ग करने वाला इन्द्र ! ऐश्वर्यवान् है। तेरे बाहुओं में अभीष्टवर्षक सामर्थ्य है, उनमें तुम वज्र को धारण करते हो ॥२ (७)॥

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्त सुदानवः ।
सरस्वन्तं हवामहे ॥१।८

उत नः प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१।९

तत्सवितर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१

सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥२

अग्न आयूंषि पवसे आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३।१०

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वा क्षत्रं देवेषु ॥१

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥२

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥३।११

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥१

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।[1]
समुषद्भिरजायथः ॥३॥ १२ (१३-४)

जननी पत्नी और पुत्रों की कामना वाले उत्तम दानी हम आज सरस्वती की शरण मे पहुँच कर उसकी आराधना करते हैं ॥१ (८) ॥ परम प्रिय गायत्री आदि सातों छन्द तथा गङ्गा आदि सरितायें जिस सरस्वती की बहिनें हैं, वह सरस्वती हमारे लिये सत्य है ॥ १ (६) ॥ बुद्धियों को प्रेरित करने वाले जो सविता देव ज्योतिर्मान् परमेश्वर सत्य स्वरूप होने से उपासना योग्य हैं, उनका हम ध्यान करते है ॥ १ ॥ हे देव ! मुझ सोम निष्पन्न करने वाले को देवताओं मे मुख्य के समान दिव्यगुणों से युक्त बनाओ ॥२॥ हे अग्ने ! तू हमारे आयु को निष्कटक बनाता है, हमको बल और अन्न दे । दुष्टों को हमारे पास से हटा ॥३ (१०) ॥ वे देवगण हमको दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों को देने वाले हों । उन प्रशसित शक्तिवानो का स्तवन करते हैं ॥१॥ यज्ञ में जलों को सम्पन्न करने वाले, अभीष्ट वाले, यजमान को पुष्ट करने वाले मित्र और वरुणदेव स्वयं भी बढ़ते हैं ॥२॥ वृष्टि के लिये स्तुत्य, अभीष्टपूरक, अन्नों के पालक मित्र, वरुण परम रथ पर चढ़ते है ॥ ३ (११) ॥ ऐश्वर्यवान् होने से ही वह इन्द्र है । आदित्य, अग्नि और वायु रूप से गतिमान् इन्द्र को सब प्राणी ईश्वर मानते हैं और उस इन्द्र की कलायें ही नक्षत्र लोक में प्रकाशित होती है ॥१॥ आदित्यादि ज्योतियों मे व्याप्त इन्द्र को इच्छित स्थानों में ले जाने के निमित्त दोनों कर्म-ज्ञान रूप अश्वों को मन रूप सारथि जोड़ता है ॥ २ ॥ यह सूर्य रूप अद्भुत इन्द्र निद्रित जीवों को ज्ञान और अन्धकार-नाश के निमित्त प्रकाश देने के लिये नित्य उषाकाल में प्रकट होता है ॥३ (१२)॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१
स ई रथा न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदी विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा
नवन्त ॥२
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट्।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्सा पृतनाषाण ।
न यज्ञः ॥३।१३
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥१
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥२
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवांजसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३।१४
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।
विदथानि प्रचोदयन् ॥१
वाजो वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते ।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥२
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।

दक्षस्य पितरं तना ॥३।१५ (१३-५)

हे इन्द्र ! इस सोम को तुम्हारे लिये सिद्ध किया है, तुम इस पवित्र हुये साम का पान करो। जिस सोम के तुम्हो उत्पादक हो उसे आनन्द के लिये तुम्हीं ग्रहण करते हो ॥१॥ अधिक भार वाहक रथ के समान हमको अधिक ऐश्वर्य से यह इन्द्र पूर्ण करता है। तब हमारे बैरी भो संघर्षों को प्राप्त हुये स्वर्ग-लाभ करने वाले होते हैं ॥२॥ हे सोम ! तू मरुद्गणों के तुल्य पवित्र हो। जलों के समान शुद्ध हुआ तू इन्द्र के समान ही हमारे लिये पूज्य है ॥३ (१३) ॥ हे अग्ने ! तुम सब यज्ञों को सफल करते हो। यजमान तुम्हे होता रूप से हो प्रतिष्ठित करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! हमारे यज्ञ मे अपनी स्तुति रूप ज्वालाओं द्वारा यजन करते हुये देवताओं को बुलाओ और उनकी तृप्त करने वाली हवि दो ॥२॥ हे नियंता, उत्तम कर्म वाले अग्ने ! तुम यज्ञ के सभो मार्गों के ज्ञाता हो और भूले हुओ को उनके लक्ष्य पर पहुँचाते हो ॥३(१४)॥ यज्ञ सिद्ध करने वाला, अविनाशी, प्रकाशित और प्रेरक अग्नि कर्म-ज्ञान के साथ शीघ्र ही हमको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ संघर्ष-काल मे पराक्रम वाले अग्नि को शत्रु नाश के लिये स्थापित करते है। यज्ञ-कर्मा के आह्वानीय स्थान में अग्नि को प्रतिष्ठित करते हैं। इसोलिये वह यज्ञादि कर्मों को सिद्ध करने वाला होता है ॥२॥ जो अग्नि आह्वानीय रूप से प्रकट है या जो अग्नि सब प्राणियों मे स्वयं को स्थापित करता है, उस संसार के पोषक अग्नि को वेदी स्वरूपिणी प्रजापति की पुत्री यज्ञादि के निमित्त धारण करती है ॥३ (१५) ॥

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्।

रसा दधीत वृषभम् ॥१

ते जानते स्वमोक्यां संवत्सासो न मातृभिः ।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥२

उप स्रक्वेषु वप्सतः कृण्वते धरुण दिवि ।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥३।१६

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननू य विश्वे
मदन्त्यूमाः ॥१

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु
मधुनाभि योधीः ॥३।१७

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिर तुविशुष्मस्तृम्पत्सोमम–
पिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरु सेनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इदुः सत्यमिन्द्रम् ॥१

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो

वीर्यैः सासहि मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।२
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी
अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इंदुः सत्यमिन्द्रम् ।।३।।१८।। १३।६)

हे अध्वर्युओ ! आकाश पृथिवी में, अग्नि के संयोग से वृद्धि को प्राप्त दुग्ध को सींचो। फिर उस दूध में अग्नि को व्याप्त करो ।। १ ।। गो वत्सों के अपनी-अपनी माताओं से मिलने के समान-साधक भी अपने उत्पत्तिकर्ता से मिलने को तत्पर होता है। वह अपने बन्धु वर्ग (अन्य साधकों) को भी जानता हुआ उनसे मेल करता है ।।२।। ज्वालाओं द्वारा भक्ष्य गोदुग्ध को और अग्नि धारक बकरी के दूध को इन्द्र सींचता है, तब वे अन्न को अर्पण करने वाले होते हैं ।।३ (१६)।। संसार का कारण भूत ब्रह्म सब लोकों से स्वयं प्रकाशित हुआ। उसी से सूर्य रूप इन्द्र प्रकट हुआ जो नित्य ही उदय होकर अन्धकार रूप शत्रु को मिटाता है। उसे अभीष्ट फलदायक जानकर सभी प्राणी हर्ष को प्राप्त होते हैं ।१।। महाबली, शत्रु-नाशक इन्द्र अकर्मण्यों को भयभीत कर जंगल और स्थावर प्राणियों को शुद्ध करता है। हे इन्द्र ! हवियों से प्रसन्न करते हुये सब प्राणी तुम्हारी स्तुति करते हैं ।।२।। हे इन्द्र ! सब यजमान तुम्हारे लिये अनुष्ठान करते हैं। सब यज्ञ तुम में ही समाप्त होते हैं। हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य युक्त निवास

हमारी सन्तान को तथा पौत्रादि को खेलने के निमित्त दो ॥ ३ (१७) ॥ पूज्य, बली और सन्तुष्ट इन्द्र जौ के सत्तू से मिश्रित सोम का विष्णु के साथ पान करता है। वह सोम उस महान तेजस्वी इन्द्र को दैत्यनाशक कर्मों में प्रयुक्त करता हुआ हर्षित करता है। वह दीप्तियुक्त सोम को इन्द्र व्याप्त करे ॥१॥ हे इन्द्र ! तू कर्म और बुद्धियुक्त उत्पन्न हुआ अपने पराक्रम से इन्द्र का भार वहन करना चाहता है। इन्द्र ! तू पाप-पुण्य का द्रष्टा यजमान को ऐश्वर्य देता है। सत्य रूप सोम टपकता हुआ उस इन्द्र को आनन्दित करता है ॥२॥ सोम-पान से उत्साहित इन्द्र असुर को जीतता है। आकाश-पृथिवी उसके तेज से पूर्ण होते हैं। सोम-पान से वृद्धि को प्राप्त इन्द्र सोम के एक भाग को अपने उदर में रखता और दूसरे भाग का बचाता है। हे इन्द्र ! सोम-पान के लिये देवताओं को जगा। वह सत्य रूप सोम इन्द्र को प्रसन्न करने वाला हो ॥३ (१८) ॥

॥ षष्ठः प्रपाठकः समाप्तः ॥

सप्तम प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

(ऋषि —प्रियमेधः, नृमेधपुरुमेधौः त्र्यरुणत्रसदस्यू, शुनःशेप आजीगर्तिः, वत्सः काण्व, अग्निस्तापसः, विश्वमना वैयश्व, वसिष्ठ, सौभरिः काण्वः, शतं वैखानसाः, वसूयव आत्रेयाः, गोतमो राहूगण, केतुराग्नेयः, विरूप आङ्गिरस। देवता—इन्द्रः, पवमान. सोम, अग्नि, विश्वेदेवाः, अग्निः पवमानः। छन्द-गायत्रीः, बार्हत प्रगाथः, बृहतीः, अनुष्टुप् उष्णिक्ः।)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सू नुं सत्यस्य सत्पतिम् ।।१

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि सं नवामहे ।।२

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत्सीमुपह्वरे विदत् ।।३।१

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ।।१

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ।।२।२

प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधु-
क्षत । इंद्रमभि जायमानं समस्वरन् ।।१

आदी के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या
अभ्यनूषत ।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ।।२

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि
मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ।।३।३

इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ।।१

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धो रूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥३॥४

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥१

अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥२

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्दुतः ॥३॥५ (१४१)

हे स्तुति करने वाले ! यज्ञ के पुत्र रूप सत्य, गौर और वाणियों के स्वामी इन्द्र को यज्ञ में आने की प्रेरणा देने के लिये उत्तम प्रकार पूजन करो ।।१।। पापो को मिटाने वाले इन्द्र के घोड़े उन कुशाओं पर पहुँचे जिन पर स्थित इन्द्र की हम पूजा करते हैं ।।२।। इन्द्र के लिये गायें मधुर दुग्धादि को अधिकता से देती हैं, वह इन्द्र उनके निकट ही सोम-पान करता है ।। ३ (१) ।। हे ऋत्विजो ! रक्षा के लिये पुकारे जाने वाले इन्द्र को लक्ष्य कर देवगण हमारे यज्ञ में हवि रूप अन्न को पुष्ट करें । पाप और दुष्टों का नाश करने वाला इन्द्र हमारे लिये अभीष्ट फलदायक हो ।।१।। हे इन्द्र ! तुम सर्व श्रेष्ठ सिद्धियों को देने वाले हो । साधकों को ऐश्वर्य युक्त बनाने वाले तुम सत्य कर्मों में उन्हें प्रेरित

करते हो। अतः तुम परम ऐश्वर्ययुक्त से हम याचना करते हैं ॥२ (२)॥ देवताओं को अमृत रूप, सनातन, सोम रूप अन्न प्रशंसा सहित प्राप्त हैं। उस आकाश से दुह जाने वाले इन्द्र के लिये प्रकट हुये सोम का हम स्तवन करते हैं ॥१॥ इसे देखते हुये आकाश वासियो ने सूर्य उदय होने से पूर्व ही सोम का पूजन किया ॥२॥ हे सोम ! इस आकाश पृथिवी में, इन सब चीजों में, गौओं में बैल के समान तुम रहते हो॥ ३ (३) हे अग्ने ! हमारे सामने प्रकट हुये हविदान युक्त स्तुतियों को देवगणों के निमित्त पहुँचाओ ॥ १ ॥ हे अद्भुताग्ने ! तुम ऐश्वर्य देने वाले हो। तुम यजमान को तुरन्त ही उसके कर्मों का फल देते हो ॥२॥ हे अग्ने ! हमको दिव्य भोगों का उपभोग कराओ। अन्तरिक्ष के भोगों के साथ ही पार्थिव ऐश्वर्य भी प्रदान करो ॥३(४)॥ पालनकर्ता इन्द्र से उनकी कृपा रूप बुद्धि को मैं प्राप्त कर सका हूँ। इसीलिये मैं सूर्य के समान तेजवान हूँ ॥१॥ मैं जन्म से भी पुरातन इन्द्र विषयक स्त्रोतों को कहता हूँ जिनके द्वारा इन्द्र शत्रु-नाशक बल को प्राप्त होता है ॥२॥ हे इन्द्र ! स्तुति न करने या स्तुति करने वालों में भी मेरे उत्तम स्त्रोतों से तू बढ़ ॥३ (५)॥

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।

ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१

प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।

तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः ॥२

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३।६

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम्
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२

अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥३।७

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधासि चोदयते महित्वना ॥१

उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्वस्य ॥२

न ह्यांऽग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
न की राया नैवथा न भन्दना ॥३।८

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनुनामिषुध्यसि ॥१।६ (१४।२)

हे बलोत्पन्न अग्ने! हमारे हवि का भक्षण कराओ। देवताओं में तथा मनुष्यों में स्थित अग्नियों सहित हमारी स्तुतियों को पुष्ट करो ॥१॥ अनेकों याज्ञिक जिस अग्नि में हवि देते हैं, वह सभी अग्नियों सहित हमको हमारे पुत्र-पौत्रों को

प्राप्त हो ।।२।। हे अग्ने ! तू अपनी सब अग्नियों सहित हमारे यज्ञ की वृद्धि कर और उसके लिये धन देने वाले देवताओं को बुला ।।३ (६) ।। श्रेष्ठ अन्न, बल और बुद्धि स्थापक वीर सोम हमको सामर्थ्य से युक्त करने वाला हो ।।१।। कुण्ड को पानी से पूर्ण रखने के लिये जलाशय से मार्ग तोड़ते हुये जल को उस तक लाते हैं, वैसे ही सोम छन्ने का भेदन कर निकलता है ।।२।। हे अविनाशी सोम ! जलधारक अन्तरिक्ष में मरणधर्मा प्राणियों के लिये सूर्य को उत्पन्न किया । तू देवताओं का सेवनीय हुआ वीर कर्मों को प्रेरित करता है ।। ३ (७) ।। इन्द्र के लिये सोम रस को सींचो । वह उस मधुर रस का यहां आकर पीता हुआ साधकों को ऐश्वर्ययुक्त बनावे ।। १।। पाप-नाशक और महान् ऐश्वर्य वाले इन्द्र का स्तवन करता हूं । हे इन्द्र ! उस ऋषि प्रणीत स्तुति को आकर सुनो ।२।। हे इन्द्र! न तुमसे पूर्व कोई प्रकट हुआ न कोई तुम से बली है और न कोई तुमसे अधिक ऐश्वर्यशाली ही है । तुमसे अधिक किसी की स्तुति भी नहीं की जाती ।।३ (८) हे मनुष्यो ! सूर्य रूप से उषा को प्रकट करने वाला इन्द्र ही आराध्य है । चन्द्रमा के प्रकट करने वाले और गौओं के स्वामी इन्द्र को मैं बुलाता हूँ । तू गोदुग्ध रूपी अन्न की कामना वाला हो ।।१।। (९) ।।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ।।१

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ।।२।।१०

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥१
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥२
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इंद्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि

॥३॥११
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥२
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥३॥१२
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥१
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवां आ वीतये वह ॥२
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥१३॥ (१४।३)

धनदाता अग्नि हवि की कामना करता है, उसे सोम से सींच कर हवि-पात्र को पूर्ण करो। वह अग्नि ही तुम्हारा पोषक है ॥१॥ जिम श्रेष्ठ प्रज्ञावान् अग्नि को यज्ञ-वाहक और होता बनाते हैं, वह अग्नि हवि देने वाले के लिये श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ २ (१०) ॥ कर्मों का आश्रयस्थान, मार्ग ज्ञाता अग्नि उत्तम प्रदीप्त हो, उसे हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥ १ ॥ कर्त्तव्यों में तत्पर व्यक्ति को अकर्मण्य जिस लिये विचलित करते हैं उस कारण को दूर करने के लिये ऐश्वर्यदाता अग्नि का उत्तम कर्मों द्वारा स्तवन करो ॥२ ॥ दिव्य ऐश्वर्यवान् साधकों द्वारा पूजित अग्नि, सब लोकों की धारक मातृ रूप भूमि को देवगणों के लिये हवि प्राप्त कराने की प्रेरणा देता है ॥३ (११) ॥ हे अग्ने ! हमारे अन्न, आयुधों की तुम वृद्धि करते हो। अन्न से उत्पन्न बल को हमें प्राप्त कराओ। दुष्टों का उत्पीड़न करो ॥ १ ॥ पाँच उत्तम प्रकार के देहधारियों को इच्छित प्रदान करने वाला अग्नि ऋत्विजों ने कर्म के लिये प्रतिष्ठित किया है। उस अग्नि से हम अभीष्ट मांगते हैं ॥ २ ॥ हे उत्तमकर्मा अग्ने ! हमको तेजस्वी बनाओ। हमारे निमित्त ऐश्वर्य और गवादि पशुओं को सम्पन्न करो ॥३ (१२)॥ हे पावक ! अपनी ज्योति से देवताओं को प्रसन्न करने वाली जिह्वा द्वारा, यजन करते हुये, देवताओं को बुलाओ ॥१॥ हे घृत मे अद्भुत ज्योति वाले ! तुम सर्वद्रष्टा से प्रार्थना करते है कि देवताओं को हवि ग्रहण करने के निमित्त बुलाओ॥२॥ हे अग्ने ! तुझ यज्ञानुरागी और तेजस्वी को यज्ञ मे प्रदीप्त करते हैं ॥३ (१३)॥

अवा नो अग्ने ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।
विश्वासु प्रत्सु दुष्टरम् ॥२
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३।१४

अग्नि हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
तेन जेष्म धनंधनम् ॥१
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ॥२
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्धि खं वर्त्तया पविम् ॥३
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५।१५
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥१
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥२

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते।

तव ज्योतींष्यर्चयः ॥३॥१६॥ (१४१४)

हे अग्ने! सब कर्मों में तुम स्तुत्य हो। गायत्री छन्द से स्तुति करने पर प्रसन्न हुये तुम अपने रक्षण-साधनों से रक्षा करो ॥१॥ हे अग्ने! दरिद्रता को नाश करने वाले, वरण करने योग्य शत्रुओं को अप्राप्य धनों को हम प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने! हमको ज्ञान से धन प्राप्त कराओ। वह हमारे जीवन में पोषण सामर्थ्य वाला तथा आनन्दप्रद हो ॥ ३ (१४) ॥ हमारे कर्म द्वारा अग्नि यज्ञ के लिये तत्पर हो। यज्ञाग्नि से हम सभी ऐश्वर्यों के विजेता हों ॥ १ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी जिस रक्षा से गवादि पशु पोषित होते हैं उसी रक्षा को प्रेरित कर हमको धन प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ हे अग्ने! गवादि युक्त विस्तृत धन हमको प्रदान करो। आकाश तुम्हारे तेज से प्रकाशित है। अपने अस्त्रों को हमारे शत्रुओं पर घुमाओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने सब चीजों को प्रकाश देते हुये तुम गतिवान् सूर्य को आकाश में स्थापित करते हो ॥४॥ हे अग्ने! तुम ज्ञान देने वाले, प्रिय और सर्वश्रेष्ठ हो, यज्ञ में स्थित तुम हमारे स्तोत्र को स्वीकार करते हुये अन्न प्रदान करो ॥५ (१५) ॥ देवताओं में मूर्धा रूप, आकाश से भी उन्नत, पृथिवी पति यह अग्नि सब जीवों को प्रेरित करता है ॥१॥ हे अग्ने! तुम स्वर्ग लोक के अधिपति वरण करने योग्य और धन के ईश्वर हो। सुख प्राप्ति के लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं ॥२॥ हे अग्ने! स्वच्छ उज्ज्वल और दमकती हुई ज्योतियाँ तुम्हारे तेजों को प्रेरित करती हैं ॥३ (१६) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋषि--गोतमो राहु गणः। विश्वामित्रः, विरूप आङ्गिरसः, भर्गः, प्रागाथः, त्रित आप्त्यः, उशना काव्यः, सुदीदिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतरः सोभरिः काण्वः, गोपवन आत्रेयः भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो बाः, प्रयोगो भार्गवः। देवता—अग्निः। छन्दः—गायत्री, बार्हतः प्रगाथः, त्रिस्टुप् काकुभः, प्रगाथः, उष्णिक जगती ।)

कस्ते जाभिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः।
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥१

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥२

यजा नो मित्रावरुणौ यजा देवा ऋतं बृहत्
अग्ने यक्षि स्व दमम् ॥३॥१

ईडेन्यो गमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषा ॥१

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईडते ॥२

वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥३॥२

उत्ते बृहन्तो अर्च्चयः समिधानस्य दीदिवः

अग्ने शुक्रास ईरते ॥१

उप त्वा जुह्वोऽमम घृताचीर्यन्तु हर्यंत ।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥२

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥३॥३

पाहि नो अग्न एकवया पाह्यू ऽत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१

पाहि विश्वस्मा द्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं ।
नक्षामहे वृधे ॥२॥४ (१५।१)

हे अग्ने ! मनुष्यों मे तुम्हारे बन्धु कौन हैं? सत्यदान से कौन तुम्हारा यजन कर्त्ता हैं ? तुम्हारे रूप को कौन जानता है ? तुम्हारे आश्रय स्थान कहां है ? (अर्थात्--गुणो में सबसे अधिक होने के कारण कोई बन्धु नही, तुम सबसे अधिक देने वाले हो, इसलिये कोई दानी तुम्हारा यजन करने में समर्थ नहीं, तुम विभिन्न रूप वाले हो अतः उसे ठीक प्रकार कौन जान सकता है ? सबके आश्रय भूत हो इसलिये तुम्हारा कोई आश्रय स्थान नहीं। ॥१॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों से बन्धु भाव रखने वाले और यजमानों की रक्षा करने वाले हो। स्तोताओं के प्रिय मित्र के समान हो ॥२॥ हे अग्ने ! हमारे निमित्त मित्र वरुण तथा अन्य देवताओं और यज्ञ की पूजा करो तथा अपने यज्ञ-स्थान को प्राप्त होओ ॥३ (१) ॥ स्तुत्य, नमस्कृत, अज्ञान-अन्धकार नाशक

दर्शनीय और मनोरथ पूर्ण करने वाली अग्नि हवियों से प्रदीप्त होता है ।।१।। अभीष्टवर्षक, अश्व के समान हवि वाहक अग्नि आहुतियों से उत्तम प्रकार प्रदीप्त हुआ यजमान की हवि सहित स्तुतियों को प्राप्त होता है ।।२।। हे अभीष्टवर्षक अग्ने ! घृतादि की हवि देने वाले हम, हवियों से जल-वर्षक तुम अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ।। ३ (२) ।। हे देदीप्यमान अग्ने ! उत्तम प्रकार से प्रदीप्त तेरी महान् लपटें वृद्धि को प्राप्ति होती हैं ।।१।। हे इच्छा किये हुये, मेरा घृत-पात्र तुम्हारे निमित्त हो । हे अग्ने ! हमारी आहुतियों को ग्रहण करो ।। २ ।। आनन्दप्रद, देवों का आह्वान करने वाले, हर समय पूजनीय, विभिन्न लपटों से युक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ । वह मेरे स्तोत्रों को सुने ।।३ (३)।। हे अग्ने ! एक, दो, तीन और चार वाणियों से हमारी रक्षा करो । अर्थात् चारो वेदों की वाणी रूप स्तुतियों से प्रसन्न होओ ।।१।। हे अग्ने ! अदानशीलों से हमको बचा और संघर्षों में हमारा रक्षक हो । हम यज्ञ-सिद्धि के लिये तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते है ।।२ (४)।।

इनो राजन्नरति समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।

चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतोमपाजन् ।१

कृष्णां यदेनीमभि वपसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।

ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ।।२

भद्रो भद्रया सचमान आगात्

हे अग्ने ! तू सब का स्वामी दिव्य गुण वाला, देदीप्यमान, सर्व ज्ञाता, अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाता हुआ सांध्यहवन के निमित्त निशा-काल में प्राप्त होता है ॥१॥ वह अग्नि पिता के समान सूर्य से उत्पन्न उषा को प्रकट कर अंधेरी रात को हटाता है, उस समय वह अपने तेज से सूर्य की दीप्ति को स्तम्भित करता हुआ स्वयं प्रकाशित होता है ।।२।। उषा द्वारा सेवित वह अग्नि आह्वानीय अग्नि से सङ्गत कर उषा को प्राप्त होता है। फिर जागरणशील वह अग्नि अपने तेज से सांध्य-हवन के समय रात्रि के अन्धेरे को नष्ट करता है ।।३ (५) ॥ हे दिव्याग्ने ! वरणीय और बैरियों को पीड़ित करने वाले तुम्हारी प्रार्थना किस वाणी से करूं ? ।।१।। हे बल के पुत्र ! किस यजमान के देव यजन कर्म द्वारा तुमको हवि दूँ तुम्हारी स्तुति कब करूँ ? ।।२।। हे अग्ने ! तुम हो इसके लिय समर्थ हो कि हमको उत्तम स्तुति रूप वाणी प्रदान करो। उत्तम सन्तान, निवास और ऐश्वर्य से सम्पन्न बनाओ ।।३ (६) ।। हे देवाह्वानकर्त्ता अग्ने ! हमारी प्रार्थना सुनकर अपनी विभूति रूप अग्नियों सहित यहां पधारो तुम घृतयुक्त हवियों को कुशाओ पर प्राप्त करो। वह हवियाँ तुम्हारा सिचन करें ।।१।। हे बलोत्पन्न सवत्र गमनशील ! यह हवि-पात्र तुम्हें यज्ञों मे प्राप्त कराने का यत्नशील है। अन्न, बल के रक्षक अभीष्टदाता अग्नि का मैं इस यज्ञ में स्तवन करता हूँ ।। २(७) ।। हमारी स्तुतियां अग्नि को प्राप्त हों। घृतयुक्त हवियों से सम्पन्न हमारे यज्ञ हमारे रक्षक रूप में अग्नि के लिये हों ॥१॥ जो अग्नि अमृतत्व प्राप्त देवताओं मे हैं, वह मनुष्यों मे भी रहता है। वह दो प्रकार का है। मनुष्यों में यज्ञ का सुफल कर आनन्द देने वाला है। मै उस अग्नि को दान के निमित्त बुलाता हूं ॥२ (८) ॥

अदाभ्य· पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथ. सदा नवः ॥१

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्य· ।
क्षयं पावकशोचिष· ॥२

साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३।९

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१

भद्रं मन. कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धता वनेमा
ते अभिष्टये ॥२।१०

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥१

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥२

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३।११ (१५:३)

मनुष्य मार्ग दर्शक होने से अग्रणी है। निरालस्य कर्मानुष्ठान मे लगे मनुष्यों का हवि-वाहक होने से मथन द्वारा तत्काल प्रकट होने वाले अग्नि को तिरस्कृत नहीं करना चाहिये ।। १ ।। हवि वाहक अग्नि के द्वारा हवि देने वाला प्रिय अन्नों को प्राप्त करता हुआ उत्तम स्थान प्राप्त करता है ।।२।। आक्रामक सेनाओ का भगाने वाला, दिव्य गुणों का पोषक अग्नि असख्य अन्नों का कर्ता है। वह हमको भी अन्न प्रदान करे ।। ३ (६) ।। हवियो से तृप्त अग्नि हमारा मगल करे। उसका दिया हुआ हमको मिले। हमारा यज्ञ और स्तुतियाँ मङ्गलमय हो ।। १ ।। हे अग्ने ! हमारे मन को उदार बनाओ। शत्रुओ की रक्षा-साधन सम्पन्न सेनाओं को हटाओ। इच्छित फल के लिये हम हवियों और स्तोत्रों को अर्पण करते हैं ।।२ (१०) ।। हे बलोत्पन्न अग्ने ! गौ और अन्न के स्वामी तुम हमको असख्य ऐश्वर्य प्रदान करो ।। १ ।। सबको बसाने वाला देदीप्यमान् वह अग्नि वेद मन्त्रों से स्तवन के योग्य है। हे अग्ने ! हमको धन प्राप्त कराने के लिये प्रदीप्त होओ ।।२।। हे अग्ने ! सब दिन रातों मे दुष्टों को पीड़ित करो और अपने अनुगतों मे उन्हे पीड़ित करने की सामर्थ्य दो ।।३(११)।।

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्त. पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ।।१

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभि. ।।२

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।
हव्यान्यैरयद् दिवि ।।३।१२

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचि पावकं पुरो
अध्वरेध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कवि सुम्नैरीमहं
जातवेदसम् ॥१
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृवि विभुं विश्पतिं नमसा
नि षेदिरे ॥२
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवाना रजसी समी-
यसे । यत्ते धीतिं सुमति मावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः ।
शिवो भव ॥३।१३
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥१
यस्य त्रिधात्ववृत बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् ।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥२
पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥३।१४ (१५-४)

हे मनुष्यो ! तुम सबके पूज्य अग्नि की स्तुति करो । बल प्राप्त कराने वाले साधनों के लिये वेदी में स्थित अग्नि का स्त्रोतों से स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ हवि-धारक मित्र के समान घृतादि से हवन हुये यजमान उस अग्नि का स्तवन करते हैं ॥२॥ ऋत्विज यजमान के उत्तम यज्ञ कम की प्रशंसा करते हुये उस

अग्नि का स्तवन करते हैं जो हवियों को देवताओं को प्राप्त कराने वाला है ॥ ॥ (१२) समिधाओं से प्रकट अग्नि का स्तवन करता हूँ। स्वय पवित्र और ग्रन्थों को पवित्र करने वाले अग्नि को यज्ञ में स्थापित करता हूँ। देवताओं को बुलाने वाले, वरणीय अग्नि से ऐश्वर्य माँगता हूँ ॥१॥ हे अग्ने! देवता और मनुष्य, तुम अमर, हवि-वाहक को अपना दूत नियुक्त करते हुए नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम देव, मनुष्य दोनों को शोभावान् करते हुए दैत्य कर्म को प्राप्त, इस लोक से दिव्यलोक को हवि पहुँचाने के लिये विचरण करते हो। तुम हमारे उत्तम कर्म युक्त स्तुतियों को ग्रहण करते हुए सुख देने वाले होओ ॥ ३ (१३) ॥ हे अग्ने ! हवि देने वाले की स्तुतियां बहिनों के समान तुम्हारा गुणगान करती हुई वायु की संगति में तुम्हारी स्थापना करती हैं ॥ १ ॥ जिस अग्नि का त्रिधाता रूप निरावृत, बंधन-रहित कुशासन बिछा है उस पर जल भी पाँव टेकना चाहता है ॥२॥ इच्छित प्रदान करने वाले अग्नि का स्थान बाधा-रहित रक्षाओं से युक्त रहता है। इसका दर्शन सूर्य के उपदर्शन के समान कल्याणमय है ॥३ (१४) ॥

(तृतीयोऽर्धः)

(ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः विश्वामित्रः, भर्गः प्रगाथः, सोभरि. काण्व, शुन.शेप आजीगर्तिः, सुकक्षः, विश्वकर्मा भौवनः, अनानतः पारुच्छेपिः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, गोतमो राहूगणः, ऋजिश्वाः, वामदेवः हर्यतः प्रागाथः, देवातिथिः काण्वः श्रुष्टिगुः काण्वः, पर्वतनारदौः अत्रि : देवता—इन्द्र., इन्द्राग्नि अग्निः, वरुणः, विश्वकर्मा, पवमानः सोमः, पूषा, मरुतः, विश्वेदेवः, द्यावापृथिव्यौ, अग्निर्हवींषि वा। छन्दः—बार्हतः प्रगाथः गायत्री, त्रिष्टुप्, अत्यष्टिः उष्णिक् जगती।

अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२।१

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥१

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥२

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्रयन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्याऽऽअनु ॥३

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥४।२

शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि
तदा भर ॥२।३

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टये उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥१

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चक्रम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥२१४

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधो र्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि
राधो मघोनाम् ॥२१५ (१६।१)

हे अग्ने ! सर्व प्रथम सोम-पान के लिये तुम्हारी स्तुति की जाती है । एकत्रित ऋभुओं ने एवं रुद्र पुत्रों ने पुरातन काल में तुम्हारा ही स्तवन किया ॥ १ ॥ सिद्ध सोम मे देह-व्यापी आह्लाद प्रकट होने पर इन्द्र यजमान के वीर्य, बल को पुष्ट करता है । स्तुति करने वाले इन्द्र की पुरातन महिमा का गान करते हैं ॥२ (१) ॥ हे इन्द्र ! हे अग्ने ! ज्ञानी जन स्तुतियों से तुम्हें प्रसन्न करते हैं । साम-गायक अभीष्ट के लिये पूजते हैं । मैं भी अन्न के निमित्त तुम्हारा स्तवन करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्राग्ने ! शत्रुओ के नगरों को कम्पित करने वाले तुमको मैं बुलाता हूँ ॥२॥ हे इन्द्राग्ने ! कर्म फल की ओर अग्रसर हुये होता हमारे अनुष्ठान में सर्वत्र उपस्थित हैं ॥३॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारे बल और अन्न साथ रहते हैं । बलों को प्रेरित करने में तुम समर्थ हो ॥४ (२) ॥ हे इन्द्र ! हमारा इच्छित पूर्ण करो । तुम यशस्वी का सब रक्षाओं सहित हम स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम पशुधन को बढ़ाने वाले हो । तुम्हारे देव धन को नष्ट करने की

सामर्थ्य किसी में नहीं है। अतः मेरे मांगे हुये को मुझे प्रदान करो ॥ २(३)॥ हे इन्द्र ! धन के लिये पधारो। मुझ पवित्राचरण वाले को ऐश्वर्य, गौऐं और अश्वादि प्रदान करो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम हविदाता को बहुसंख्यक ऐश्वर्य के दाता हो। तुम शत्रु-नाशक को रक्षा के निमित्त उत्तम वाणी से पूजते हैं॥ २ (४)॥ देवों को बुलाने वाले, आनन्ददाता अग्ने ! तुम साधकों को सर्व धन देने वाले हो। तुम्हारे लिये मधुर सोम के समान हमारे स्तोत्र प्राप्त हों॥ १ ॥ हे प्रजापति अग्ने ! देवताओं को अपना मानने वाले दानियों को एवं उन यजमानों की संतानों को धन-वान बनाओ ॥२ (५)॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।

त्वामवस्युरा चके ॥१।६

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।

कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१।७

इन्द्रमिद्देवतातय इंद्रं प्रयत्यध्वरे ॥

इद्र समीक वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥१

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे

स्वानास इन्दवः ॥२।८

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वां स्वा

हि ते।

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं

मघवा सूरिरस्तु ।।१।६

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ।।१

प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्स रश्मिभिर्यतते
दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ।।२

त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि
स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे
रोचमानो वयो दधे ।।३।१० (१६–२)

हे वरुण ! मेरे आमन्त्रण पर ध्यान दो, मुझे सुखी बनाओ । रक्षा के लिये मैं तुम्हारा स्तवन करता हूँ ।। १(६) ।। हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र ! तुम किस साधन से हमारी रक्षा करते और किस प्रकार साधकों का पालन करते हो ? ।।२ (७)।। यज्ञ के निमित्त देवताओं मे इन्द्र को ही बुलाते हैं । यज्ञ के विस्तृत होने पर, यज्ञ

की समाप्ति पर ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये इन्द्र को बुलाते हैं ॥१॥ इस इन्द्र ने अपने बल से आकाश-पृथ्वी को पूर्ण किया, राहु द्वारा ग्रसित सूर्य को प्रकट किया। यही सब लोकों का आश्रय स्थान है। सिद्ध सोम इन्द्र को ही प्राप्त होते हैं॥ २(८) ॥ हे संसार के कर्म-साधक ईश्वर! मेरी हवियों से बढ़ो अपनी ही आहुतियों से अग्नि में हवि दो। यज्ञ-कर्म से रहित व्यक्ति प्रमादी हों। हमारी हवियों को प्राप्त वह ईश्वर दिव्य लोक का दाता हो॥१ (९)॥ सोम अपनी हरित धार से वैरियों का नाशक है। सोम रस-पायी मुख नक्षत्रों में व्याप्त तेज के समान तेजस्वी होते हैं ॥१॥ गतिशील सोम पूर्व को जाता है और रथ रूप किरणों से सङ्गति करता है। पुरुषार्थ-वर्द्धक स्तोत्र इन्द्र को प्राप्त हुये। उस विजयशील की प्रसन्नता के कारण बनते हैं। हे सोम! हे इन्द्र! तुम दोनों मिलकर पराजित नहीं होते ॥२॥ हे सोम! तू गवादि को प्राप्त हुआ यज्ञ में पवित्र होता है। साम-ध्वनि के समान तुम्हारी ध्वनि भी सुनने योग्य है। उस ध्वनि से याज्ञिक आनन्दित होते हैं। दैदीप्यमान सोम अन्न देने वाला है ॥३ (१०) ॥

उत नो गोषणि धियमश्वसां वाजसामुत।

नृवत्कृणुह्यूतये ॥१॥११

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः।

विदा कामस्य वेनतः ॥१॥१२

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।

सुमृडीका भवन्तु नः ॥१॥१३

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥१
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥२
मही मित्रस्य साधयस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥३।१४
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥२
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥३।१५
गाव उप वदावट मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥१
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
अवटस्य विसर्जने ॥२
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनबारमक्षितम् ॥३।१६ (१६-३)

हे पूषा ! पशु, अन्नादि धन देने वाली बुद्धि और कर्मों को हमारे रक्षण-कार्य में प्रेरित करो ॥ १ (११) ॥ हे महान् पराक्रमी मरुद्गणों ! तुम्हारे सेवक, मन्त्रोच्चार द्वारा प्रशंसा करने वाले, श्रम से स्वेद युक्त हुये याचक को इच्छित फल प्रदान करो ॥१ (१२) ॥ प्रजापति से उत्पन्न अमरत्व प्राप्त देवता हमारी प्रार्थनाओं को सुन कर परमानन्द प्रदान करें ॥ १ (१३) ॥ हे पवित्र आकाश भूमण्डलो ! तुम दोनों की प्रशंसा के लिये उपयुक्त स्त्रोतों को गाते हैं ॥१॥ देवियो ! तुम अपनी शक्ति से यजमान को शुद्ध करती हुई यज्ञ-स्वामिनी हुई, यज्ञ का निर्वाह करने वाली हो ॥२॥ हे आकाश और भू देवियो ! तुम यजमान की इच्छापूर्ण करने वाली, यज्ञ की आश्रयस्थान हो ॥३ (१४) ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने लिये सम्पादित इस सोम को प्राप्त होओ। कपोत के कपोती को प्राप्त होने के समान तुम हमारी वाणी को प्राप्त होओ ॥ १॥ ऋद्धियो के स्वामी, स्तुतियों से उन्नत इन्द्र ! तुम्हारा स्तोत्र लक्ष्मी को प्रिय और सत्य से युक्त है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! संघर्षों में हमारी रक्षा को उद्यत रहो। रक्षा-प्रणाली पर हम तुम परस्पर विचार करें ॥ ३ (१५) ॥ हे गौओ ! तुम पुष्टता को प्राप्त हो। मन्त्र से दोहन योग्य गौ और बकरी के दूध आवश्यक हैं इनके कान सोने और चांदी के हैं ॥१॥ सम्मानित अध्वर्यु शेष मधु को बड़े पात्र में रखते हैं। यज्ञ के पूर्ण होने पर महावीर को आसन्दी मे प्रतिष्ठित करते हैं ॥२॥ उच्च भाग में चक्रांकित, नीचे द्वार वाले, अक्षय महावीर को नमस्कार करते हुये सींचते हैं॥३(१६)॥

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

महत्तो वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम ॥१

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि
द्रवा पिब ॥२।१७

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु
विप्रराज्ये ॥२।१८

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुषमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥१
तुरण्यवो मधुमन्त घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचु ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मै
स्वान।स इन्दवः ॥२।१९

गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुत. सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमपि गोषु धारय ॥१
स नो हरीणा पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥२
सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम ॥३।२०
अञ्जते व्यंजते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः।
पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १
विपश्चिते पवमानाय गायत महीं न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो।
न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः।
पवते राय ओक्यः ॥३॥२१ (१६।४)

हे इन्द्र! तुम्हारे मित्र हुए हम शत्रु से न डरें। कोई हमें संतप्त न करे। तुम अभीष्ट पूरक हमारे स्तवन के योग्य हो ॥१॥ इच्छित फल देने वाला इन्द्र सब जीवों के छत्र रूप है। हविदाता यजमान इन्द्र को क्रोधित नहीं होने देता। हे सुखदाता सोम! हमारे निकट आकर उत्तर वेदी को शीघ्रता से प्राप्त हो॥ २ (१७) हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तुम स्तुतियों से बढ़ो। अग्नि के समान तेजस्वी साधक तुम्हारा स्तवन करते हैं॥ १॥ यह इन्द्र! ऋषियों से बल पाकर विस्तृत हुआ है। इसका सत्य महिमा का साधक स्तुति रूप से बखान करते हैं॥ २ (१८) ॥ जिस यज्ञ निधि का लोक स्वामी रक्षक है, वह ईश्वर और रचयिता सरस्वती का पिता रूप होता हुआ भी हे इन्द्र! तुझे हवि रूप धन प्राप्त कराता है॥ १॥ अपने हवि धन की प्रसिद्धि सोम-वर्षक बल की प्रसिद्धि और सिद्ध सोम की प्रसिद्धि के लिये यज्ञों में स्फूर्ती से कर्म करने वाले चतुर ऋत्विज मधु, खीर घृत की आहुतियों से इन्द्र का पूजन करते हैं॥ २ (१९) ॥ हे उत्तम बल

युक्त सोम ! निचुड़ा हुआ तू हमें यज्ञ साधक गौ और अश्वादि से पूर्ण ऐश्वर्य दे । फिर तू गौ दुग्धादि से मिश्रित हो ।।१।। हे दिव्य सोम ! तू ऋत्विजों का शुभ करने वाला, मित्र के समान पुष्ट करने वाली हो ।।२ हे सोम ! हमारे सम्बन्ध में पुरानी मित्रता का ध्यान रक्खो । हमारी वृद्धि के रोकने वालो को मार्ग से हटाओ । तुम शत्रु को सतप्त करने वाले बाधकों को मिटा डालो ।।३ (२०)।। ऋत्विज उस सोम का दूध से मिश्रण करते हैं । देवगण उसका आस्वादन करते हैं । उसको ही उच्च स्थान में खींचने वाले स्वर्ण पात्र में शोधते हुये रस रूप प्राप्त करते हैं ।। १ ।। हे ऋत्विजो ! इस पवमान सोम का गुणगान करो । वह वर्षणशील हुआ रस रूप अन्न का दाता है । सर्प तुल्य हुआ कुट कर पुरानी त्वचा को छोड़ देता है । वह हरित सोम रस कलश में स्थित होता है ।। २ ।। जलों से शोधित सोम की स्तुति की जाती है । वह हरे रङ्ग का जलों पर छाया हुआ सोम ऐश्वर्य प्राप्ति का साधन भूत है ।। ३(२१) ।।

।। सप्तमः प्रपाठकः समाप्तः ।।

अष्टमः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषिः—शुन शेप अजीगर्तिः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, शयुर्बार्हस्पत्य वसिष्टः, वामदेव, रेभसूनू काश्यपौ, नृमेधः, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ, श्रुतकक्षः सुकक्षो वा, विरूप, वत्सः काण्वः, । देवता—अग्निः, इन्द्र, विष्णुः, वायु, इन्द्रावायूः, पवमान. सोम । छन्द—गायत्रीः बार्हतः प्रगाथः, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप, उष्णिक् पङ्क्तिः ।)

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥१
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इद्धूयते हविः ॥२
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३।१
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥१
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥२
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥३।२
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोदेवानि ह्वरांसि च ॥२।३
किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र
यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मां वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः

शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्

क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि ।

तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं ।

पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥४ (१७-१)

हे बल के पुत्र अग्ने ! हमारे यज्ञ और स्तुतियों को प्राप्त हुए हमको अन्न दो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! इन्द्र, वरुण आदि अन्य देवताओं को हवि देने पर भी सभी हव्य तुमको ही प्राप्त होता है ॥ २ ॥ प्रजा पालक, होम-साधक वरण करने योग्य अग्नि हमारा प्रिय हो और हम भी उस अग्नि को प्रिय हों ॥ ३१ ॥ हे मनुष्यो ! सर्व लोकों से ऊपर वास करने वाले इन्द्र को तुम्हारे लिये बुलाते हैं । वह इन्द्र हम पर अत्यन्त कृपा करे ॥ १ ॥ हमारे सभी इच्छितो के दाता, हे वर्षक इन्द्र ! तू इस मेघ का हमारे लिये उद्घाटन कर । हमारी याचना को अस्वीकार न कर ॥२॥ मांगे हुये पदार्थ को देने वाला, अभीष्ट-वर्षक इन्द्र मनुष्यों पर कृपा करने के लिये अपने बल से पहुँचता है ॥ ३ (२) । हे अद्भुत अग्ने ! तु पोषणयुक्त अन्न हमको प्रदान कर। तू इस धन को पहुँचाने वाला, हमारी सन्तान को यशस्वी बना ॥१॥ हे अग्ने ! तू महान रक्षा-साधनों से हमारी सन्तान

का पालन कर। देवताओं के क्रोध को मिटा और बैरियों के हिंसक-कर्मों से रक्षा कर ॥२ (३) ॥ हे विष्णो ! तुम्हारा रश्मियों से युक्त रूप स्वयं प्रसिद्ध है। उसे गुप्त मत रक्खो। उसी तेजस्वी रूप से दर्शन दो ॥ १ ॥ हे रश्मिवन्त ! तुम्हारे विष्णु नाम को जानता हुआ उसकी स्तुति करता हूँ। हे दूर देशवासी, तुम्हारे वृद्धि को प्राप्त रूप का मैं प्रशंसक हूँ ॥ २ ॥ हे विष्णो ! तुम्हारे निमित्त हव्य देता हूँ, उसे ग्रहण करो। मेरी स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ। तुम सब देवताओं सहित सदा हमारे रक्षक रहो ॥३ (४) ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३।५
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥१
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥२
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३।६

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।

सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।

मीढ्वां अस्माकं बभूयात् ॥२

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।

पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३।७

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशु न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त ।

यन्यवे वृत्र यदिन्द्र तूर्वसि ॥२।८ (१७-२)

हे वायो ! व्रतादि मे शुद्ध हुआ मैं दिव्य सुखों की इच्छा से इधर मधुर सोम–रस को सबसे पहिले भेंट करता हूँ। तुम सोम पान के लिये यहाँ पधारो ।।१।। हे वायो ! हे इन्द्र ! इन प्राप्त सोमों का पान करने वाले, नीची भूमि में जल के शीघ्र पहुँचने के समान सोम तुमको पहुँचते हैं ।।२।। हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम दोनों बल रक्षक हमारी रक्षा के लिये सोम पीने के लिये यहाँ आओ ।। ३ (५) ।। रात्रि बीतने पर उषः वेला में तू हे सोम ! पुष्टि को प्राप्त करता है। साधक की अँगुलियाँ तुझ हरे वर्ण वाले को पात्रों की ओर प्रेरित करती हैं ।। १ ।। शोधा हुआ सोम रस हर्ष प्रदायक हुआ इन्द्र के लिये पेय होता है।

इसे साधक धारण करते थे, और अब भी धारण करते हैं। घासों में स्थित सोम को गौयें घास समझ कर ही खा जाती हैं ॥२॥ स्तोता सोम की प्रचलित स्तोत्रा की स्तुति करते हैं। कर्म के लिये झुकी हुईं अँगुलियां सोम को हवि देने वाली होती हैं ॥३ (६)॥ यज्ञेश अग्नि की हवियों द्वारा स्तुति करते हैं। अश्व जैसे मक्खी मच्छरों को पूँछ से हटाता है, वैसे ही तुम अपनी लपटों से शत्रुओं को दूर करो ॥१॥ वह अग्नि मङ्गलमय मुख वाला हो। बलोत्पन्न गतिमान् वह अग्नि हमारे अभीष्टों को पूर्ण करें ॥२॥ हे विश्व में व्याप्त अग्ने! दूर या निकट से भी हमारा अनिष्ट चिंतन करने वालों से हमको बचाते रहो ॥ ३ (७)॥ हे इन्द्र! तुम युद्ध में शत्रु-सेना को भगाते हो। हे। हे शत्रु-पीड़क! तु विपत्ति नाशक और विघ्न करने वालों का सन्तप्तकर्ता है॥१॥ हे इन्द्र! माता-पिता का शिशु की रक्षा में तत्पर रहने के समान यह आकाश पृथिवी तेरे शत्रु-नाशक बल को पुष्ट करते हैं। तेरे क्रोध से शत्रु की युद्ध में तत्पर सेनायें उत्पीड़न को प्राप्त होती हैं ॥२ (८)॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।

चक्राण ओपशं दिवि ॥१

व्यान्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिनद् बलम् ॥२

उद्गा आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।

अवाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३।९

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये ॥१

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
नरमवार्यक्रतुम् ॥२

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥३।१०

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१

तव द्यौरिन्द्र पौस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३।११ (१७-३)

यजमानों के यज्ञ से इन्द्र वृद्धि को प्राप्त होता है। वह अन्तरिक्ष से मेघों को प्रेरित कर भूमि का पोषण करने में समर्थ होता है ॥१॥ सोम-पान से हर्षित हुआ इन्द्र दीप्तियुक्त अन्तरिक्ष को सम्पन्न कर मेघों को चीरता है ॥ २ ॥ दस्युओं द्वारा गुफाओं में छुपाई हुई गायों को प्रकट करता और उन राक्षसों को दूर करता ॥३ (९) ॥ हे उपासको ! हमारी रक्षा के निमित्त अपने स्तोत्रों से प्रसन्न करके इन्द्र के ही साक्षात् दर्शन कराओ ॥ १ ॥ शत्रु को मारने में तत्पर, सोमपायी, सोम की शक्ति से अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को हमारे यज्ञ में बुलाओ ॥ २ ॥ हे दर्शन

योग्य-इन्द्र ! तुम अत्यन्त ज्ञानी, शत्रु का धन छीनकर हमें देते हुये हमारे रक्षक बनों ॥ ३ (१०) ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम, शत्रु-शोषक बल, कर्म और वज्र को स्तुतियां तेजस्वी बनाती है ॥१॥ हे इन्द्र ! आकाश से तेरा बल और भू-मण्डल से तेरा यश वृद्धि को प्राप्त होता है। जल और मेघ तुम्हें अपना अधिपति मानकर प्रस्तुत होते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम दिव्य धाम वाले का विष्णु, मित्र और वरुण स्तवन करते हैं। मरुद्गण के बल से तुम प्रसन्नता को प्राप्त होते हो ॥३ (११) ॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥१
कुवित्सु नो गविष्ठयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्।
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२
मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा।
संवर्ग सं रयिं जय ॥३।१२
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥१
वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना।
वज्रेण शतपर्वणा ॥२
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३।१३
सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१

सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्याविभि ।

ताविमा उप सर्पतः ॥२

नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।

शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३।१४ (१७-४)

हे अग्नि ! बल के निमित्त साधक तुमको नमस्कार करते हैं । अतः मैं भी तुमको नमस्कार करता हूँ । तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को नष्ट करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! गौओं का अभीष्टपूर्ण करने को बहुसख्यक धन दो । तुम महान् से मैं महानता की याचना करता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! युद्ध काल में मुझसे विपरीत न हो । शत्रुओं के एकत्रित ऐश्वर्य को हमारे लिये जीतो ॥३ (१२) सब प्रजाऐं इस इन्द्र की शांति के लिये झुकती हैं । जैसे समुद्र की ओर नदियाँ स्वयं ही झुकती चली जाती हैं ॥ १ ॥ ससार का कम्पित करने वाले वृत्रासुर के शीश को उस इन्द्र ने अपने प्रशंसित वज्र से काट डाला ॥२॥ जिस बल से यह इन्द्र आकाश-पृथिवी को अपने वश में रखता है, उसका वह बल अत्यन्त प्रकाशित है ॥३(१३)॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे मन रूप अश्व उत्तम ज्ञानी, ऐश्वर्यवान रमणीय और सर्वद्रष्टा हैं ॥ १ ॥ हे समान रूप वाले इन्द्र ! हमारे यज्ञ को शीघ्र प्राप्त होओ ॥२॥ हे मनुष्यो ! दसों अंगुलियों से अभीष्ट फल देने वाले इन्द्र यज्ञस्थ सोम-रस से पूर्ण हैं । उनके आने से प्राप्त होने वाले इन्द्र को हम ग्रहण करें ॥३ (१४ ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, श्रुतकक्षः सुकक्षो वाः शुनःशेप आजीगर्तिः, शयुर्बार्हस्पत्यः, मेधातिथिः काण्वः, वसिष्ठः, आयुः काण्वः, अम्बरीष ऋजिश्वा च, विश्वमना वैयश्वः, सोभरिःकाण्वः, सप्तर्षयः, कलिः प्रगाथः, विश्वामित्रः, मेध्यातिथिः काण्वः, निध्रुविः काश्यपः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः, अग्निः, विष्णुः, पवमानः सोमः, इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—गायत्री. बार्हतः, प्रगाथः अनुष्टुप्, उष्णिक्, काकुभः प्रगाथः, द्विती ॥

पन्यंपन्यमित् स्तोतार आ धावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥१

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।
नि यमते शतमूतिः ॥३।१

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥१

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥२

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥३।२

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥२

स रेवां इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥३।३

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥१

न घा वसुर्नियमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद्गिरः ॥२

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमतं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥३।४ (१८-१)

हे सोम को सींचने वाले साधको ! मनन करने योग्य, वीर इन्द्र के सामने प्रशंसित सोम की भेंट करो ॥ १ ॥ स्तोत्रों और हवियों से प्रेरणा प्राप्त इन्द्र का शक्तिवान मन रूप अश्व हमारे सखा समान इन्द्र को यज्ञ में पहुँचावे ॥२॥ वृत्रासुर का हननकर्ता सोमपायी इन्द्र हमसे विमुख न हो। वह रक्षा साधनों से सम्पन्न हमारे शत्रुओं को भगावे और हमको ऐश्वर्य प्रदान करे ॥३(१॥ हे इन्द्र ! प्रवाहित नदियों के सिंधु को प्राप्त होने के समान इन सोम-रसों को प्राप्त करो। अन्य कोई देव धन-बल मे तुमसे बढ़कर नहीं है ॥ १ ॥ हे इच्छित फलदायक इन्द्र ! तुम सोम पीने के लिये सब स्थानों में व्यापक होते हो। इसे

तुम उदरस्थ कर लेते हो ।। २ ।। हे पाप से छुड़ाने वाले इन्द्र ! हमारा यह सोम तुम्हारे लिये कम न पड़े। तुम्हारी प्रेरणा से अन्य सब देवों के लिये भी यह कम न पड़ने पावे ।।३ (२) ।। हे स्तुतियों से प्रदीप्त अग्ने ! मनुष्यों पर कृपा करने के लिये यज्ञ-स्थान में प्रकट हो। यजमान तुमको प्रणाम करता है ।।१।। महान्, धूम्रयुक्त, सुखदायक अग्नि ज्ञान और अन्न को हमारी ओर प्रेरित करे ।।२।। जगत-पालक देवदूत, असंख्य किरणों वाला अग्नि हमारी स्तोत्र रूप वाणियों को ग्रहण करे ।।३ (३)।। हे मनुष्यो ! तुम एकत्रित हुये, सोम के सिद्ध होने पर इन्द्र की स्तुतियों का गान करो। भुस से सुखी होने वाली गाय के समान इन्द्र स्तुतियों से सुखी होता है ।।१।। हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न हुआ इन्द्र बहुसंख्यक गौ युक्त अन्न को देने से अपना हाथ नहीं रोकता ।।२।। दुष्ट-नाशक इन्द्र, गौओं को चुराने वाले हिंसक दैत्य से चुराई हुई गायों को छीन कर अपने अधिकार में लेता है ।। ३ (४) ।।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

समूढमस्य पांसुले ।।१

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ।।२

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ।।३

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥४
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥६।५
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२।६
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१
समिन्द्रा राया बृहतीरधूनुत स क्षोणीः समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः
सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२।७
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥१
तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
अश्याम्र वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥२
परि त्यं हर्यतं हरिम् बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥३।८

कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं
सिषासति ॥१

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा
तरेम दुरिता ॥२॥६ (१८-२)

वामन रूप से प्रकट हुये विष्णु ने अपने चरण को तीन रूपों में स्थित किया, तब उनकी चरण-धूलि में यह विश्व अन्तर्हित हो गया-॥१॥ जिसे कोई भी न मार सके ऐसे विश्व रक्षक विष्णु ने तीनों लोकों में यज्ञादि कर्मानुष्ठानों को पुष्ट करते हुये तीनों चरणों से उन्हें दबाया ।। २ ।। हे मनुष्यो ! जिन विष्णु की प्रेरणा से यज्ञादि कर्म होते हैं, उन्हें देखो । हे विष्णु इन्द्र के मित्र हैं ।। ३ ।। आकाश की ओर देखने वाला चक्षु जैसे सब ओर विशालता को देखता है, वैसे ही विष्णु के उत्तम स्थानों को ज्ञानीजन सदा देखते हैं ।। ४ ।। आलस्य रहित स्तोता विष्णु के परम पद को उत्तम कर्मों द्वारा प्राप्त करते हैं । ५।। उस विष्णु रूप ईश्वर ने पृथिवी से ऊपरके लोकों में अपने पद को स्थापित किया । इस पृथिवी पर सभी देवगण हमारे रक्षक हों ॥६ (५)॥ हे इन्द्र ! यह ऋत्विज भी तुम्हें हम से दूर न रक्खें । यदि तुम दूर हो, तो भी हमारे यज्ञ में आकर हमारी स्तुतियों को ध्यान से सुनो ॥१॥ हे इन्द्र ! सोम सिद्ध होने पर ऋत्विजगण एकत्र हुये तुम्हारी स्तुति करते हुये अपने अभीष्टों का वर्णन करते हैं ॥ २ (६) ॥ इन्द्र की स्तुति की जाती है । उस इन्द्र के लिये हे

मनुष्यो ! सनातन स्तोत्रों का पाठ करो। परमेश्वर मुझे ऐसी ही सुमति प्रदान करे ॥१॥ वह इन्द्र बहु-संख्यक धन, भूमि, सूर्य का सा तेज मुझे प्रदान करे । गो दुग्ध से मिले हुये सोम-रस इन्द्र को आह्लादक होते हैं ॥ २ (७) ॥ हे सोम ! तुझे इन्द्र के सेवनार्थ पात्रों में भरते हैं। यह सोम इन्द्र को हवि देने और फल प्राप्ति के लिये शोधा जाता है ॥१॥ हे स्तोताओ ! हम यजमानों के साथ उस पुष्टिप्रद सुगन्धित सोम-रस का पान करो ॥ २ । सबके इच्छित सोम के लिये धनुष को प्रत्यंचायुक्त करते हैं। (अर्थात् सोम सिद्धि के लिये उपदानो का प्रयोग करते हैं) विद्वानों में आदर प्राप्त करने के इच्छुक अध्वर्यु सोम सिद्ध लिए दूध को ऊपर से डालते हैं ॥३ (८) हे इन्द्र ! तुम्हें कोई नहीं डरा सकता । तुम्हारे प्रति श्रद्धा रखने वाला हवि दाता सोम-सम्पादन काल में अन्न देता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो तुमको हवि देते हैं, तुम उन्हें सघर्षों में मार्ग बताओ। तुमसे प्रेरणा मिलने पर स्तुति करने वाले अपने पुत्रादि सहित सङ्कटों से बच जावें ॥२ (९) ॥

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥१

इंद्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।

उदानंश शवसा न भन्दना ॥२

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।

अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३।१०॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥१
विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२।११
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥१
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः।
अनुमाद्यः पवमानो मनोषिभिः
सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२।१२
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र
प्र चित्रया धिया ॥२।१३
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या अनु ॥२
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।

युवारप्तूर्यं हितम् ।।३।।१९

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अय यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ।।१
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ।।२
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा श्रृणवद्धवं नेन्द्रो
योषत्या गतम् ।।३।।१५ (१८--३)

हे अध्वर्यो ! सुखदायक सोम की इन्द्र के आगे वर्षा करो। सामर्थ्यवान्,बल-वर्धक इन्द्र ही स्तुत्य है ।।१।। हे कष्टनाशक इन्द्र ! ऋषि प्रणीत स्तुतियों को अपने बल से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता, तुम्हारे तेज का सामना भी कोई नही कर सकता । (अर्थात् वे स्तुतियां तुम्हीं तेजस्वी को प्राप्त होती हैं) ।। २ ।। अन्नेच्छुक हम, अन्न स्वामी और यज्ञ की वृद्धि करने वाले इन्द्र को ही बुलाते हैं ।। ३ (१०) ।। हे स्तुति करने वालो ! हवि-वाहक अग्नि की पूजा करो । उन्हीं से सब ऐश्वर्य मिलते हैं । हे अग्ने ! तुम हव्यादि पदार्थों को देवताओं को प्राप्त कराते हो ।। १ ।। हे हवि से देवों को सन्तुष्ट करने वालो । जिसे प्राप्त करने का साधन सोम है, उस यज्ञ को पूर्ण करने वाले अग्नि का स्तवन करो ।। २ (११) ।। हे सोम ! छन्ने मे छनता हुआ तू पुरुषों के नगर-प्रवेश के समान कलश में जाता है ।। १ ।। बल, हर्ष आदि का दाता सोम छनता हुआ ऋत्विजों की स्तुतियों के पुट से शुद्ध होता

है ।। २ (१२) ।। इस इन्द्र को हम सोम से तृप्त करते हैं। इस यज्ञ में सिद्ध सोम, इन्द्र को भेंट करो ।।१।। पथिकों का हिंसक दस्यु भी इन्द्र मार्ग पर चलने वालों के अनुकूल होता है। ऐसे प्रेरक इन्द्र हमारे स्तोत्र को ग्रहण करते हुये अभीष्ट फल देने की इच्छा से यहां आवें ।।२ (१३) ।। हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्य गुणों के प्रकाशक संघर्षो मे शत्रु को भगाने वाले हो। तुम्हारे पराक्रम से विजय प्राप्त होती है ।।१।। हे इन्द्राग्ने ! कर्म के फलों की ओर अग्रसर हुये होता उत्तम अनुष्ठानों में लगे रहते हैं।। २ ।। हे इन्द्राग्ने ! बल और अन्न दोनों का माथ है, उनमें रस-वर्ण के तुम प्रेरक हो ।। ३ (१४) सिद्ध सोम को ऋत्विजों के साथ पान करते हुये इन्द्र को कौन जानता है ? यह कितने अन्न वाला है ? यह सोम से परमानन्द को प्राप्त हुआ शत्रु-पुरों को ध्वंस करता है ।।१।। हाथी के समान मग्न रहने वाले, दुष्कर्मियों का शिकार करने वाले इन्द्र सोम के सिद्ध होने पर यहां आवें ।। २ ।। जिसके बल को शत्रु नहीं जानते, युद्ध के लिये सुसज्जित इन्द्र ! स्तुतियों को सुनकर अन्यत्र नहीं जाता है ।।३ (१५) ।।

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इंदवः ।

अभि विश्वानि काव्या ।।१

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।

पृथिव्या अधि सानवि ।।२

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्र मिन्दवः ।

घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ।।३।।१६

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥१
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इंद्राग्नो इष आ वृणे ॥२
इन्द्राग्नो नवति पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥३।१७
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥१
उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥२
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृंगो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३।१८
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥१
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ।
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥२
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥३।१९ (१८-४)

उज्ज्वल, दैदीप्यमान सोम को स्तोत्रों द्वारा सस्कारित करते हैं ॥१॥ दिव्य सोम पृथ्वी के उच्च स्थान यज्ञ वेदी में

सिद्ध किये जाते हैं ।।२।। उज्ज्वल सोम संस्कारित हुये सब बैरियों को नष्ट करने वाले होते हैं ।।३ (१६)।। शत्रुओं को रोकने वाले, पाप-नाशक, विजयी, अन्न दाता इन्द्राग्ने को यज्ञ स्थान में सोम पीने के लिये बुलाता हूँ ।।१।। हे इन्द्राग्ने ! वेदपाठी और साम-गायक गण अभीष्ट फल के लिये तुम्हे पूजते हैं। मैं भी अन्न के लिये तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।।२।। हे इन्द्राग्ने ! शत्रुओं की नब्बे पुरियों को अपने सङ्केत से कंपाने वाले, तुमको मैं बुलाता हूँ ।।३ (१७) ।। हे बलोत्पन्न अग्ने ! हम हवि रूप अन्न को उपस्थित करते हुये तुम्हारे स्तोत्रों को पढ़ते हैं ।। १ ।। हे अग्ने ! स्वर्ण-समान दैदीप्यमान तुम्हारे शरण में हम उपस्थित हुये हैं ।।२।। उस महा पराक्रमी, उत्तम गति वाले अग्नि ने दैत्यों के नगरों को भस्म कर दिया ।।३ (१८) हे अग्ने ! सत्य को अपनाने वाले,मनुष्यो के हितकारी, प्रकाश के प्रतिपालक आपके नित्यपवित्र रुप की आराधना करते हैं।।१।।जो अग्नि उत्तम कर्मों में उपस्थित विघ्नों को हटाता हुआ प्रशंसित है; वह ससार को वशीभूत करने वाला अग्नि ऋतुओं का पोषक है ।।२।। भूतकाल और भविष्य में होने वाले प्राणियों का इष्ट अग्नि पृथिवी आदि लोकों में प्रतिष्ठित रहता है ।।३ (१९)।

(तृतीयोऽर्धः)

(ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः, अवत्सारः विश्वामित्रः, देवातिथिः काण्व. गोतमो राहूगणः वामदेवः प्रस्कण्वः, काण्वः वसुश्रुत आत्रेयः, सत्यश्रवाः अवस्युरात्रेयः, बुधगविष्ठिरावात्रेयौ, कुत्स आङ्गिरसः, अत्रिः, दीर्घतमा औचथ्यः । देवता—अग्निः, पवमानः सोमः, इन्द्र, अश्विनौ । छन्दः—गायत्री, बृहती, बार्हतः प्रगाथः, उष्णिक्, पङक्तिः, त्रिष्टुप् जगती ।

अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वाँ स्वाम् ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥१
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥२
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३।१
उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१
अया निजघ्निरोजसा रथसंगे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४।२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥१
वृत्रखादो बलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥२
गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

प्र सुगोपा यवस धनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३।३
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वत ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुत ज्येष्ठं तद्दधिषे सह.॥२।४
त्वमंग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना
दभन् । विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि
चर्षणिभ्य आ ॥२।५ (१६।१)

अग्नि अपने तेज से सुशोभित हुआ, ऋत्विजों के स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥ अन्न के पुत्र पावक (अग्नि) को इस अहिंसित यज्ञ मे बुला ा हू ॥ २ ॥ हे पूज्य अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं और तेज से पूण हुये यज्ञ मे व्याप्त होओ ॥३ (१)॥ हे संस्कारित हुये सोम ! तेरी उठ-ी हुई तरंगों से दैत्यों का हृदय फट जाता है । हमको हानि पहुँचाने वाली शत्रु सेनाओं को पीड़ित करो ॥ १ ॥ हे सोम ! अपने उत्पन्न पराक्रम से शत्रु-नाशक है । मैं तुम्हें अपने भय रहित मन से धन प्राप्ति के लिये मानता हूँ ॥२॥ दैत्यगण इस सिद्ध सोम को तिरस्कृत करने में असमर्थ हैं । हे सोम ! युद्धाकांक्षी शत्रु को उत्पीड़ित कर ॥३॥ आनन्दवर्षक, पापनाशक, पाप दूर करने वाले सोम को इन्द्र के निमित्त शुद्ध करते हैं ॥४ (२) ॥ हे इन्द्र । आनन्द-

दायक, तुम इस यज्ञ में पधारो। तुम्हारे मार्ग में कोई बाधक न हो! तुम सभी विघ्नों का उल्लंघन कर शीघ्र हमको प्राप्त होओ ॥१॥ वृत्रासुर का हननकर्त्ता, मेघ को विदीर्ण करने वाला, अति बलवान वह इन्द्र रथ पर विराजमान हुआ शत्रुओं को नष्ट करता है ॥२॥ हे इन्द्र! तू समुद्रों को जल से पुष्ट करने के समान याज्ञिक को अभीष्ट फल देकर पुष्ट करता है। गौओं को घासादि मिलने के समान तुम प्राप्त करते हो ॥३ (३) ॥ प्यासा मृग जलाशय की ओर जाता है, उसी प्रकार हे इन्द्र! तुम मित्र के समान शीघ्र हमको प्राप्त होओ और सुरक्षित रक्खे इस सोम का पान करो ॥१॥ हे ऐश्वर्यशालिन्! सोम सिद्ध करने वाले को धन प्राप्त कराने के लिये वे सोम तुम्हें तृप्त करें। मित्र वरुण के जलों से संस्कारित सोम को तुम अपने बल से पीते हो। अतः तुम अत्यन्त पराक्रमी हो ॥२ (४) ॥ हे महाबले! तुम दीप्ति-युक्त हुये, स्तोता के प्रशंसक हो तुम्हारे सिवाय कोई सुख देने वाला नहीं है! अतः तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों का पाठ करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र! तुम्हारे गण और कँपाने वाले वायु हमारा नाश न करें। हे मानव-हितैषी इन्द्र! हमें मन्त्र द्रष्टाओं के निमित्त सब ऐश्वर्य प्राप्त कराओ ॥२ (५) ॥

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः।

दिवो अदर्शि दुहिता ॥१

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी।

सखा भूदश्विनोरुषाः ॥२

प्राणियों की प्रेरक, फलदायक, रात्रि के अन्त में अन्धकार का नाश करने में समर्थ इस सूर्य पुत्री उषा को सब देखते हैं ।।१।। अश्व के समान अद्भुत, दैदीप्यमान रश्मियों की रचयित्री, यज्ञ को आरम्भ कराने वाली अश्विनीकुमारों के सख्य भाव को प्राप्त हुई उषा स्तुति के योग्य है ।। २ (६) ।। यह सर्व प्रिय उषा दिव्य लोक से प्राप्त हुई अन्धकार दूर करती है । हे अश्विनी-कुमारो ! तुम्हारा महान् स्तोत्रों द्वारा सत्कार करता हूँ ।। १ ।। समुद्रोत्पन्न अश्विनीकुमार अपनी इच्छा तथा कर्म द्वारा धनों के प्रदायक हैं ।।२।। हे अश्विनीकुमारो ! शास्त्रों में विख्यात स्वर्ग में जब तुम्हारा घोड़ों से जुता रथ पहुँचता है. तब तुम्हारी स्तुतियों का पाठ किया जाता है ।।३(७)।। हे हव्यान्न वाली उषे ! हमको अद्भुत ऐश्वर्य दो जिसे प्राप्त कर हम अपने सन्तानादि का पालन करने में समर्थ हो सकें ।।१।। हे गोअश्व वाली उषे ! जैसे प्रातः बेला में धन प्राप्त करने के लिये तू कर्म की प्रेरणा करती है । वैसे ही रात्रि के अन्धेरे को भी मिटा ।। ।। हे हव्यान्न-युक्त उषे ! अरुण अश्वों को रथ में सयुक्त कर हमको सौभाग्य-शाली बनाओ ।। ३ (८) ।। हे अश्विनीकुमारो ! शत्रु नाशक तुम बहु-संख्यक गौऐं और स्वर्ण रथ को हमारे घर की ओर प्रेरित करो ।।१।। इस यज्ञ में सोम-पान के निमित्त उषाकाल में जागे हुये अश्व स्वर्ण रथ पर विराजमान अश्विनीकुमारों को आरोग्य-सुख के निमित्त यहाँ लावें ।।२।। हे अश्विनीकुमारो ! तुमने दिव्य लोक से उस प्रशंसा योग्य तेज को प्राप्त किया । तुम हमको पुष्ट बनाने के लिये अन्न प्रदान करो ।।३ (६) ।।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं
स्तोतृभ्य आ भर ॥१
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य
आ भर ॥२
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः समु जातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य
आ भर ॥३।१०

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ॥१
या सुनीथे शोचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ॥२
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ॥३।११

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामाश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी
मम श्रुतं हवम् ॥१

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी
मम श्रुतं हवम् ॥२
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनोवसू माध्वी ।
मम श्रुतं हवम् ॥३॥१२ (१६-३)

मैं उस सर्वव्यापक अग्नि का स्तवन करता हूँ, वह गौऐं प्राप्त कराने वाला है। उस अग्नि के घोड़े द्रुतगामी है। उस अग्नि को हविदान यजमान प्राप्त होते हैं। हे अग्ने! हम साधकों को अन्न प्रदान करो ॥१॥ यजमान को अन्न देने वाला यह अग्नि पूज्य एवं सर्वद्रष्टा है। वह प्रसन्न होकर सबको ऐश्वर्य प्रदान करने को गति करता है। हे अग्ने! इन स्तोताओं को अन्न देने वाले होओ ॥२॥ यह व्यापक अग्नि स्तुत्य है, यह विद्वानों द्वारा उत्तम प्रकार से प्रकट हुआ हम स्तुति करने वालों को अन्न प्रदान करें ॥३ (१०) ॥ हे उषे! तू आज यज्ञ में बहुसंख्यक धन देने वाली हो। हे सुन्दरता प्रकट सत्य रूपिणी उषे! मुझ पर दया करो ॥१॥ हे आदित्य पुत्री उषे! तुम अन्धकार को दूर करो। सत्य वाणी वाली तू मुझ पर दयावान हो ॥ २ ॥ हे दिव्यलोक वाली उषे! हमारी दिवांधता को दूर कर। तू अन्धकार को हटा। मुझ पर दया कर ॥३(११)॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम्हारे अभीष्ट वर्षक, धनदायक प्रिय रथ को स्तोता स्तुतियों से शोभावान् बनाते हैं, अतः हे मधुर व्यवहार वालो! मेरी स्तुतियों का श्रवण करो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो! यजमानों के निकट पधारो। मैं अपने वैरियों के तिरस्कार में सफलता प्राप्त करूँ। हे शत्रुओं

के नाशक मधुर व्यवहारों के ज्ञाता मेरे
॥२॥ हे अश्विनीकुमारा !
पधारो और मेरे आह्लान को सुनो ॥३ (१२)॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषा—
सम् । यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते
नाकमच्छ ॥१

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः
प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशदर्दशिपाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि॥२
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते
शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो
अधयज्जुहूभिः ॥३।१३

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः
प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्ण चरत आभिनाने ॥२
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्मन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतु. सुमेके नक्तोषासा समनसा
विरूपे ॥३।१४

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ।१
न संस्कृतं प्र मिमी तो गविष्ठान्ति नूनमश्विनोषस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्ति दाशुषे शम्भविष्ठा ।२
उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्य्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना
ततान ॥३।१५॥ (१६–४)

अध्वर्युओं की समिधाओं से चैतन्य हुआ अग्नि उषा काल में प्रज्वलित ज्वालाओं सहित विशाल वृक्षों के समान आकाश-व्यापी होता है ॥१॥ यह यज्ञ-माधक अग्नि देव यजन के लिये प्रदीप्त होता है। वह उषा काल में यजमानों पर कृपा करने वाला उठता है। इसका प्रकाशित रूप प्रत्यक्ष होता है और यह संसार को अन्धकार से निकालता है ॥२॥ जब यह अग्नि प्रज्वलित होती है तब प्रकाशित किरणों से संसार को प्रकाशित करती है। जब घृत धारा हवि देने के लिये यज्ञ-पात्रों को प्राप्त होती है, तब वह अग्नि ऊँची उठकर उस घृत का पान करती है ॥ ३ (११) ॥ सभी ग्रह नक्षत्रादि ज्योतियों में उषा सबसे उत्तम है। इसका प्रकाश पूर्व मे फैलकर सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला होता है। सूर्य द्वारा उत्पन्न रात्रि अपने अन्तिम प्रहर रूप उषा को जानती है ॥१॥ उज्ज्वल उषा सूर्य रूप वत्स को अङ्क में लिए प्रकट हुई। रात्रि ने अपने अन्तिम प्रहर की कल्पना की रात्रि और उषा दोनों का सूर्य बन्धु है। यह दोनों अमर हैं-प्रथम रात्रि फिर उषा इस प्रकार सूर्य की गत्यानुसार चलती हैं। रात्रि का अन्धकार उषा मिटाती है और उषा को रात्रि मिटा देती

है ।।२।। उषा और रात्रि दोनों का एक ही मार्ग है। सब जीवों को जन्म देने वाली इन विपरीत रूप वालियों की मति में विभिन्नता नहीं है इसीलिये प्रतिस्पर्द्धा से दोनो मुक्त हैं ।।३ (१४)।। उषा का मुख रूप अग्नि प्रज्वलित होता है तब स्तोताओं की दिव्य स्तुतियाँ बढ़ती हैं। हे अश्विनीकुमारो! हमको दर्शन देते हुये इस यज्ञ में पधारो ।।१।। हे अश्विनीकुमारो! संस्कृत धर्म को मत मिटा दो। धर्म यज्ञ को प्राप्त होने वाले तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम उषा काल में रक्षक अन्न युक्त आकर हविदाता को आनन्दित करते हो ।।२।। हे अश्विनीकुमारो! रात्रि के अन्त में जब गौऐं घास खाकर दोहनस्थान पर पहुँचती है वह समय सन्धिकाल कहा जाता है। तुम उस समय थे हर समय अपने रक्षा-साधनों सहित पधारो और सोम को पियो ।।३ (१५) ।।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो

भानुमञ्जते ।

निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः

प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ।।१

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा

अयुक्षत । अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा

रुशन्तं भानुमरुषारशिश्रयुः ।।२

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना

परावतः ।

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यूषाश्चन्द्रा मह्यावो
अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथ प्रासावीद्देवः
सविता जगत् पृथक ॥१
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना
क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं
वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो
जोराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः
शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३।१७
प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२
स मर्मृजान आयुभिरभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वसु षीदति ॥३
स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥४।१८ (१६-५)

उषाकाल के तेजस्वी देवता ने पूर्व के अर्द्धभाग में प्रकाश को उत्पन्न किया। योद्धाओं द्वारा शस्त्र-संस्कार करने के समान संसार का प्रकाश द्वारा संस्कार करने वाले वे हमारे रक्षक हों ॥ ।। प्रकाशयुक्त अरुण वर्ण की उषा उदय होती है, तब उसके देवता किरण रूप रथ पर चढ़े हुये सब जीवों को ज्ञानवान बनाते है। यह उषःकालीन देवता सूर्य सेवी होते हैं ।।२।। उत्तम ... और श्रेष्ठ दान वाले यजमान के लिये अन्न देते हुये ... उषःकालीन देवता अपने तेजों से व्याप्त होते हैं।। ३ (१६) ।। वेदी मे प्रज्वलित हुआ यह अग्नि रूप सूर्य प्रकट होता है। उषा अन्धेरे को मिटाती है। अश्विनीकुमारो ! सब कर्मों का प्रेरक देव सब जीवों को कर्मों में प्रेरित करें ।।१।। हे अश्विनीकुमारो ! तुम अभीष्ट दाता हमारे बल के पोषक हो। हमारी प्रजाओं को अन्न दो। हम शत्रुओं के ऐश्वर्य को जीतें ।। २ ।। अश्विनीकुमार रथ पर चढ़े यहां आवें। हमारे दुपाये और चौपाये आदि को सुख देने वाले हों ।। ३ (१७) ।। हे सोम। तेरी धारें प्रचुर धन देने वाली हैं जैसे आकाश से बरसने वाली बूदें अन्न देने वाली होती हैं ।।१।। पाप नाशक हरे रंग का सोम कर्मों को देखने वाला है। वह अपने बलों को दैत्यों पर प्रहार करता हुआ यज्ञ को प्राप्त होता है ।।२।। वह उत्तम कर्मा सोम ऋत्विजों द्वारा शुद्ध हुआ राजा के समान उच्च और बाज के समान वेग से जलों को प्राप्त होता है ।।३।। हे सोम ! तू दिव्य और पार्थिव गुणों वाला हमको सब धनों का प्रदाता हो ।।४ (१८) ।।

॥ अष्टमः प्रपाठकः समाप्तः ॥

नवमः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि–नृमेधः, वामदेवः, प्रियमेधः, दीर्घतमा औचथ्यः वामदेवः, प्रकस्कण्वः काण्वः, बृहदुक्थो वामदेव्यः, बिन्दुः पूतदक्षो वाः जमग्नि-भार्गवः, सुकक्ष, वसिष्ठः, सुदाः पैजवनः, मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधा-श्चाङ्गिरसः, नीपातिथिः काण्वः परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता–पवमानः सोमः इन्द्रः, अग्निः, अग्निरश्विनावुषाश्च, मरुतः सूर्यः । छन्दः—गायत्री, अनुष्टुप्, पङ्क्तिः बार्हतः प्रगाथ, त्रिष्टुप् शक्वरी अष्टिः ।

प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् । २

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३।१

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥१
त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥२
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ॥३।२

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥१

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
आ पप्राथ महित्वना ॥२

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३।३

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो नार्वा
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥१

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि
शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥२

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥३।४

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥१

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वार्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३।५ (२०-१)

अभीष्टवर्षक, संस्कारित देवों में महान् सोम की धारों को परिश्रम से सिद्ध किया गया है ॥१॥ यज्ञ कर्म विधायक अध्वर्यु आदि स्तुतियों द्वारा वृद्धि-प्राप्त सोम को शुद्ध करते हैं ॥२। हे

स्तुत्य सोम। तेरा उत्तम तेज रक्षक है, उसे रस से पूर्ण कर ॥३ (१ ॥ जो इन्द्र नाम से प्रसिद्ध-यज्ञादि कर्मों से बढ़ा हुआ है, उसका मैं स्तवन करता हूँ ॥१॥ हे महाबली इन्द्र ! तुम्हारे लिए वेद मन्त्रों वाली स्तुतियाँ की जाती हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! राज मार्ग से अन्य मार्गों को निकलने के समान अनेक प्रकार के दान साधकों को तुमसे प्राप्त होते हैं ।३ (२) ॥ हे इन्द्र ! अपनी रक्षा के लिये उत्तम कर्मों वाले तुम रक्षक की हम परिक्रमा करते हैं ॥१॥ हे महाबली अद्भुत कर्मा इन्द्र ! तुम्हारी महिमा संसार भर में व्यापक है ॥२॥ हे महापुरुष ! तुम्हारे हाथ स्वर्णयुक्त वज्र को धारण करने वाले हैं ॥३ (३) ॥ अग्नि ही वेदी को प्रकाशित करता है। वह गतिवान् क्रांतदर्शी है, वही यज्ञशालाओं में विभिन्न रूपों से बसता है और वही सूर्य रूप से प्रकाशित होता है ॥१॥ दो अरणियों के मन्थन से यह अग्नि प्रकट हुआ सब लोकों को प्रकाशित करता है। वह परम पूजनीय यज्ञशाला में वास करता है ॥२॥ देवताओं के आह्वान वाला अग्नि उत्तम कर्मों का यश के लिए धारक है। इसको हवि देने वाला उत्तम पुत्र प्राप्त करता है ॥३ (४)॥ हे अग्ने ! इन्द्रादि को बुलाने वाले तुम्हारे स्तोत्र से स्तोतागण तुम हविवाहक की वृद्धि करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम सेवनीय और वृद्धि को प्राप्य अभीष्ट फलों को सिद्ध करने वाले हमारे यज्ञ का नेतृत्व करते हो ॥२॥ हे अग्ने ! सूर्य के समान तेज वाला तू हमारे पूज्य इन्द्रादि देवों सहित पधारो ॥३ (५) ॥

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवां उषर्बुधः ॥१

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धहि श्रवो बृहत् ।।२।६
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ।।१
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः
सनादनीडः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत
दाता ।।२
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मण. क्रियमाणस्य:मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवा.।३।७
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुत ।
उत स्वराजो अश्विना ।।१
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।
त्रिषधस्थस्य जावतः ।।२
उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।
प्रातर्होतेव मत्सति ।।३।८
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ।।१
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु
ज्योतिरदाभ्यम् ।।२।९ (२०-२)

हे अमर, प्राणियों के ज्ञाता अग्ने ! तुम उषःकालीन देवता से यजमान को धन प्राप्त कराओ एवं इस यज्ञ में देवताओं को बुलाओ ।।१।। हे अग्ने ! तुम सन्देश और हविवाहक यज्ञों के रथ रुप अश्विनीकुमारो और उषा के साथ अन्न प्राप्त कराओ ।।२ (६) ।। सब कार्यों को करने वाले, शत्रुओं को चीरने वाले युवक को भी इन्द्र की प्रेरणा से वृद्धावस्था खा जाती है। हे पुरुषो ! काजात्मा इन्द्र के पुरुषार्थ को देखो—वृद्धावस्था प्राप्त जो पुरुष आज मृत्यु का प्राप्त होता है, वह पुनर्जन्म द्वारा कल फिर उत्पन्न हो जाता है ।।१।। अपने पराक्रम से सशक्त अरुण पक्षी के समान, पराक्रम और पुरातन अस्थिर इन्द्र जिसे कर्त्तव्य मानता है, वही कर्म करता है। वह शत्रुओं से जीता हुआ ऐश्वर्य स्तोताओं को प्रदान करता है ।।२।।मरुद्गणों का साथी इन्द्र वर्षक बलों का धारक हुआ वर्षणशील है। वे मरुद्गण वर्षा-कम मे उसके सहायक होते हैं ।। ३(७) ।। मरुद्गणों के लिये निचोड़ा हुआ सोम-रस रखा है, इसे वे तेजस्वी, अश्विनीकुमारो सहित पान करते हैं ।।१।। सबको कर्मों मे प्रेरित करने वाला मित्र, अर्यमा और दुःख नाशक वरुण यह तीनों शोधित और स्तुति द्वारा अर्पित सोम का पान करते हैं ।।२।। इन्द्र इस निचोड़े हुए तथा गोघृत मिश्रित सोम को पीने की, होता द्वारा स्तुति की इच्छा करने के समान, प्रातःकाल की इच्छा करता है ।।३ (८)।। हे सूर्य। तेरी महानता में सन्देह नहीं, तुम्हारा महाबली होना असत्य नहीं। हे अत्यन्त स्तुति वाले तुम सबके द्वारा पूजन करने योग्य हो। १।। हे सूर्य ! तुम अन्न-दान वाले सबसे बड़े दाता हो।

अत्यन्त तेजस्वी होने से महान् हो। अत्यन्त प्रकाशित होने से सबसे श्रेष्ठ हो ।।२ (९) ।।

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥१
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥२
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥३।१०
प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥१
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥२
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥३।११
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद् विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति
पिता च न ॥२।१२
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥१

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य

विद्वान्। सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥२

भूरि हि ते सवना मानषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्

मारे अस्मन्मघवं ज्मोक्कः ॥३॥१३॥ (२०-३)

हे सोमेश्वर इन्द्र! हमारे यहां असंख्य विभूतियों सहित आकर सोम पियो ॥१॥ पापनाशक पराक्रमी इन्द्र, राक्षस नाश के समय उग्र और विश्व रक्षा के लिये शांत, इस प्रकार दो रूपों वाला है। वह हमारे शुद्ध सोम का पान करने को यहां आवे ॥२॥ हे पापों को दूर करने वाले इन्द्र! तुम सोम के पीने की इच्छा वाले हो अतः इस यज्ञ में आकर सोम पान करो ॥३ (१०) हे मनुष्यो! असख्य धन के लिए इन्द्र को सोम अर्पित करो। उत्तम स्तोत्रों का पाठ करो। हे मनोरथों को पूर्ण करने वाले इन्द्र! तुम इन हवि देने वालों का सामीप्य प्राप्त करो ॥१॥ अत्यन्त व्यापक इन्द्र के लिये ऋत्विज उत्तम स्तुतियां और हव्यान्न देते हैं। उस इन्द्र के अद्भुत पराक्रम में देवता भी बाधक नहीं हो सकते ॥२॥ सबके राजा रूप, अबाधित इन्द्र के प्रति की गयीं स्तुतियां शत्रुओं को भगाती हैं, अतः हे स्तोताओं! अपने मनुष्यों को इन्द्र का स्तवन करने की प्रेरणा दो ॥३ (११)॥ हे इन्द्र! तुम्हारे समान ही मैं भी धनेश बनूँ। मै स्तुति करने वाले को जो धन दूँ उससे वह धनिक बन जाय ॥१॥ मैं तुम्हारे पूजन को धन देता हूँ। इन्द्र! तुम्हारे समान हमारा और कौन है? तुम्हारे सिवाय अन्य कोई प्रशंसित रक्षक हमारा नहीं है ॥२ (१२)॥ हे इन्द्र! तुम सोम पीने की इच्छा वाले मेरे आह्वान

पर ध्यान दो। स्तोता की प्रार्थना सुनो। हमारी सेवाओं को ग्रहण करो ॥१॥ हे शत्रु-नाशक इन्द्र! तेरी स्तुतियों का मैं त्याग नहीं करता। तेरे यशस्वी स्तोत्रों को नित्य कहता हूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र! हमारे यहाँ बहुत से सोम निचोड़े गये हैं। स्तोता तुम्हें बुलाते हैं। अतः हमसे कभी भी दूर न रहो ॥३ (१३)॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां
ज्याका अधि धन्वसु ॥१

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ॥२

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं योन इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ॥३।१४

रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः ।
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥१

उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीयमानम् ॥२

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३।१५
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१
अत्रा वि नेभिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३।१६
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२
असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा
इव ॥३।१७ (२०-४

हे स्तोताओ ! इन्द्र के रथ के सम्मुख हुये शक्ति की पूजा करो लोक-पालक, शत्रु-नाशक इन्द्र हम स्तुति करने वालों को धन दे । दुष्टों के प्रत्यञ्चायुक्त धनुष टूट जांय ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेघों की वर्षा करो । तुम शत्रु-विहीन हुये ग्रहण करने योग्य पदार्थों के पोषक हो । हम तुम्हारे लिये हवियां और स्तुतियां भेंट करते हैं ॥२॥ हमारे अन्नादि की वृद्धि न होने देने वाले दुष्ट नाश को प्राप्त हों । हे इन्द्र ! जो हमारी हिंसा-कामना करता है, उसे तुम मारना चाहते हो । तुम हमको धन प्रदान करो ॥ ३ (१४) ॥ हे पाप हरने वाले इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति करने वाला धन से पूर्ण हो, वह दरिद्री न रहे । तुम्हारा आराधक ऐश्वर्य प्राप्त करे ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति न करने वाले के सामर्थ्य और स्तोताओ के स्तोत्रों के जानने वाले हो ।

तुम गायत्रो नामक साम को भी जानते हो, हम उसी से तुम्हारा स्तवन कर रहे हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम हिंसकों और तिरस्कार करने वालों की दया पर हमको न रहने दो। अपने बल द्वारा इच्छित ऐश्वर्य हमको प्रदान करो ॥३ (१५) ॥ हे इन्द्र ! यजमान की स्तुतियों को प्राप्त होओ। हम तुम्हारे दिव्य शासन में अत्यन्त सुखी रहते हैं ॥१॥ भेड़िये के डर से कांपती हुई भेड़ के समान पाषाणों की धार कूटे जाते हुये सोम का कँपाती हैं। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे दिव्य शासन में अत्यन्त सुखी रहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! इस यज्ञ में कूटता हुआ पाषाण तुझे सोम प्राप्त करावे। इस इन्द्र के दिव्य शासन में हम अत्यन्त सुखी रहते हैं। वह इन्द्र अपने लोक को पधारें ॥ ३ (१६) ॥ हे सोम ! तू अत्यन्त मधुर रस से परमानन्द का देने वाला हुआ इन्द्र को प्राप्त हो ॥१॥ वह बुद्धिवर्धक सोम स्वच्छ और निष्पन्न हुये वायु को प्रकट करते हैं ॥२॥ यजमानों के लिये अन्न की इच्छा से यह सोम देवताओं के लिये ऋत्विजों द्वारा अर्पण किये जाते हैं ॥३ (१७) ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः
सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिषा आजुह्वानस्य सर्पिषः ।१

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम जयेष्ठ-
मंगिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं बृषणं यमिमा विशःप्रावन्तु जूतये विशः ॥२
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता

दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ।।३।१८

परम दाता, निवास-कारक, बलोत्पन्न, सर्व ज्ञाता, पूज्य यज्ञ का निर्वाहक, प्रदीप्त, उस अग्रगण्य अग्नि को यज्ञ सिद्ध करने वाला जानता हूँ ।।१।। मेधावी अग्ने ! हम यज्ञेच्छुक ऋत्विजों और मन्त्रों से युक्त हुये तुम्हारा आह्वान करते हैं। फिर यह प्रजाऐं अभीष्ट फल के लिये तुम्हें पूजें ।।२।। स्तुत्य अग्नि अत्यन्त दीप्ति को प्राप्त हुआ हमारे द्रोहियों को मारता है । जिसके योग से अचल पाषाण के भी खण्ड हो जाते हैं वह अग्नि शत्रुओं को समाप्त करता हुआ खेलता है, शत्रुओं के सामने से पलायन नहीं करता ।।३ (१८) ।।

(द्वितीयोऽर्धः)

ऋषिः—अग्निः पावकः, सोभरिः काण्वः, अरुणो वैतहव्यः, अवत्सारः, काश्यपः, गोषूक्तश्वसूक्तिनो काण्वायनो, त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिंधुद्वीपो वाम्बरीषः, उलो वातायनः, वेनः । देवता—अग्निः, विश्वेदेवा. इन्द्रः, आपः वायुः, वेनः । छन्दः—पंक्तिः, त्रिष्टुप्ः, काकुभः प्रगाथ जगती, गायत्री ।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां दधासि दाशुषे कवे ।।१

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ।।२

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३
इरज्यन्नग्ने प्रथमस्य जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४
इष्ककर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महामिषं दधासि सानसिं
रयिम ॥५
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे
पुरो जनाः ।
श्रुतकर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्या
मानुषा युगा ॥६।१ (२०-५)

हे अग्ने ! तुम्हारी हवियां प्रशसित हैं । तुम्हारी दीप्ति सुशोभित है । तुम हविदाता को धन देने वाले हो ॥१॥ हे अग्ने निर्मल तेज वाला तू माता के समान अरणियों द्वारा प्राप्त होता है । यजमानों का रक्षक तू आकाश पृथ्वी को सुसंगत करता है ॥२॥ हे अग्ने ! हमारे स्तुत्यादि कर्मों को ग्रहण करो, यज्ञादि कर्मों से सन्तुष्टि प्राप्त करो । यजमान तुम्हारे लिये उत्तम अन्न रूप हवियां देते हैं ॥३॥ हे अविनाशी अग्ने ! तू अपने तेज से ईश्वर हुआ हमारे धनों की वृद्धि कर । तू तेज से अत्यन्त दीप्त होने के कारण कर्म और फलों को सुसगत करता है ॥ ४ ॥ हे यज्ञ सस्कारक उत्तम ज्ञान, धन के स्वामिन् ! हम तुम्हारी आराधना करते हैं तुम हमको भोगने वाला धन दो ॥ ५ ॥ यज्ञाग्नि

प्रथम पूर्व दिशा में स्थापित की जाती है। हे अग्ने ! यजमान दम्पति तुम्हारा देववाणी द्वारा स्तवन करते हैं ॥६ (१) ॥

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यभाविथ ॥१

तव द्रप्सो नोलवान् वाश ऋत्विय इंधानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२।२

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्नि जनयन्त
मातरः ।
तमित् समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च
सुवते च विश्वहा ॥१।३

अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति ।
महिषीव वि जायते ॥१।४

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि
यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये
न्योकाः ॥१।५

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु
सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये
न्योकः ॥१।६

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥१
युञ्जे वाचं शतपदी गाये सहस्रवर्तनि ।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥२
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥३।७
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१
पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।
पुनर्नः पाह्यंहसः ॥२
सह रय्या नि वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥३।८ (२०-६)

हे अग्ने ! तुम्हारे मित्र भाव को प्राप्त यजमान तुम्हारी रक्षाओं से बढ़ता है ॥१॥ हे सोम-सिंचित अग्ने ! अध्वर्युओं द्वारा सोम तुम्हारे निमित्त प्राप्त किया जाता है। तू उषाकालों का मित्र है, उसी समय यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है। अन्धेरे में तू अधिक प्रकाशित होता है ॥ २ (२) ॥ ऋतुओं द्वारा प्राप्त औषधियां उस अग्नि को धारण करती हैं, जो जलों से प्रकट होती हैं। वनस्पति और औषधियां उस दाहक अग्नि को प्रकट करने वाली हैं ॥१ (३) ॥ अग्रगण्य अग्नि इन्द्र को दी गई हवि

से अधिक प्रदीप्त होता और अन्तरिक्ष में प्रकाशित होता है। तृणादि से गौ दुग्धादि देती है, वैसे ही अग्नि का उत्पत्तिकर्ता है ॥१ (४)॥ सदा चैतन्य, ऋचाओं द्वारा इच्छित उस अग्नि को सोम के स्त्रोत प्राप्त होते हैं। उमो चैतन्य को सोम आत्म समर्पण करता है। तुम्हारे सख्य भाव से मैं सुन्दर स्थान प्राप्त करूँ ॥ १ (५) ॥ अग्नि जागरणशील है। ऋचाओ द्वारा इच्छित वह अग्नि जागृत हुआ स्त्रोत रूप साम को प्राप्त करता है। वही सोम को ग्रहण करता है। मै तुम्हारे सख्य भाव से उत्तम स्थान को प्राप्त करूँ ॥१ (६) ॥ यज्ञारम्भ से भी पूर्व आने वाले देवों को मेरा प्रणाम, यज्ञारम्भ से यज्ञ में स्थित देवों को भी प्रणाम। मेरी अभीष्ट फलदायनी ऋचाऐं स्तुति रूप से प्रस्तुत हैं॥ १॥ असंख्य यशों वाले स्तोत्र का देवार्थ प्रयुक्त करता हूँ। गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती नामक छन्द अनेक फलों के लिये गाता हूँ॥ २॥ गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्द वाले ऋचासमूह गायको द्वारा नियुक्त अग्नि आदि देवों द्वारा अनेक स्वरूप वाले होते हैं॥ ३ (७) ॥ अग्नि ज्योति है, ज्योति अग्नि है। इन्द्र ज्योति और ज्योति इन्द्र है, सूर्य में और ज्योति में भी कोई विभिन्नता नहीं है॥ १॥ हे अग्ने! हमको बलयुक्त मिलो। अन्न और आयु वाले होकर पुनः मिलो और पापों से बचाओ ॥२॥ हे अग्ने! ऐश्वर्यों से युक्त हुये मिलो। संसार के ऐश्वर्यों का उपभोग कराने वाली आनन्द धार से हमारा सिंचन करो ॥३ (८) ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।

यदहं गोपतिः स्याम ॥२

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।

गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३।९

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥१

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥२

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥३।१०

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।

प्र न आयुंषि तारिषत् ॥१

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।

स नो जीवातवे कृधि ॥२

यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा ।

तस्य नो धेहि जीवसे ॥३।११

अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।

सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१

अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥२
अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३।१२
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्-
प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वार्ण नाम जनतप्रियाणि॥२
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चका नस्तृतीये चक्रे रजसि-प्रियाणि ॥३।१३ (२०-७)

हे इन्द्र ! धन के तुम एकमात्र ईश्वर हो। मैं भी यदि तुम्हारे समान ऐश्वर्य वाला होऊँ तो मेरा प्रशंसक गौओं वाला हो। आपकी स्तुति करने वाला भी गौओं से युक्त हो॥ १ ॥ हे इन्द्र! मैं यदि गौ का स्वामी होऊँ तो अपने स्तोता को गवादि धन से पूर्ण कर दूँ ॥२॥ हे इन्द्र ! तेरी स्तुतियाँ गौ-रूप होकर यजमान को बढ़ाने की इच्छा से इच्छित पदार्थों का उसके निमित्त दोहन करती हैं ॥३ (६) ॥ तुम जल रूप सुख के उत्पत्ति

कर्ता हो अतः अन्न प्राप्ति के लिये हमको बल दो और ज्ञान प्राप्त कराओ ॥१॥ हे जलो ! तुम अपने रस रूप का हमको सेवन कराओ, जैसे मातायें पुत्रों को पय रूप रस पिलाती है ॥२॥ हे जलो ! तुम पाप का नाश करने को प्रेरणा देते हो। पवित्रता के लिये तुम्हे सिर पर डालते हैं। तुम हमको सन्तति-कर्म के लिये प्रेरित करो ॥३ (१०) ॥ वायु हमारे रोगों को मिटाने और सुख देने वाला होकर प्रवाहित हो और हमको आयु देने वाले अन्नों की वृद्धि करे ॥१॥ हे वायो ! पिता के समान उत्पत्तिकर्त्ता और रक्षक तुम हमारे हितैषी मित्र हो और बन्धु के समान प्रिय हो। तुम हमको जीवन-यज्ञ में समर्थ बनाओ ॥२॥ हे वायो ! तुम्हारे स्थान में जो ऐश्वर्य स्थित है वह ऐश्वर्य हमको प्रदान करो ॥३ (११) ॥ गरुड़ के तुल्य वेग वाला, बल, प्रकाश से युक्त अग्नि स्वर्ण के समान दीप्ति युक्त यज्ञ के लिये स्वयं प्रकाशित होता है ॥१॥ सार भूत अन्न रूप तेज जलों का आश्रित है। वह अन्तरिक्ष में किरणों के समूह को विस्तृत कर सोम की हवि से आह्वान करता शब्दवान् होता है ॥२॥ दिव्यलोक तथा सभी लोकों के सुखों का धारक, प्रजा-पालक याचकों को धन देने वाला अग्नि असख्य किरणों को विस्तृत कर सूर्य के प्रकाश का धारक है ॥३ (१२) ॥ हे इन्द्र ! अन्तरिक्ष में उड़ाते हुये, स्वर्ण पंख वाले वरुण-दूत, विद्युत रूप अग्नि के स्थान मे प्रतिष्ठित, हृदय से तुम्हारी इच्छा करते हुये स्तोता जब अन्तरिक्ष का मुख करते हैं तभी तुम्हें देखते हैं ॥१॥ जलों का धारक इन्द्र अन्तरिक्ष में रहता है। वह अपने अद्भुत आयुधों को धारण करता है। सूर्य अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है, उसके समान वह अपने जलों को सब ओर वर्षाता है ॥२॥ अन्तरिक्ष मे जल की बूँदों से युक्त, सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्र जब मेघ की ओर बढ़ता है

तब सूर्य अपने तेज से तृतीय लोक में प्रतिष्ठित हुआ जल वर्षाता है ।।३ (१३) ।।

(तृतीयोऽर्धः)

ऋषिः—अप्रतिरथ ऐन्द्रः, पायुर्भारद्वाजः शासो भारद्वाजः जय एन्द्रः, गोतमो राहूगणः । देवता -इन्द्रः, बृहस्पतिः, अप्वा, इन्द्रो मरुतो वा, सग्रामशिष, विश्वेदेवा । छन्द.—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पङ्क्ति, जगती ।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्
साकमिन्द्रः ॥१

सङ्क्रन्दनेनानिभिषेण जिष्णुना युत्कारेणदुश्च्पवनेन
धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२
स इषुहस्तैः स निषगिभिर्वशी सं सृष्टा स युध इन्द्रो
गणेन ।
सं सृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यूंग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता
॥३।१

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणा युधा जयन्नस्माकमेध्यविता
रथानाम ॥१

वलविज्ञायः स्थविर प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान
उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ
गोवित् ॥२
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो
अनु सं रभध्वम् ॥ ३।२
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वोरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषा डयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभंजतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध
उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्
॥३।३
उद्धर्षय मघवन्नायु धान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः
॥१
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उदेवा अवता हवेषु ।।२
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना
ता गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात्
।।३।४
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सच-
न्ताम् ।।१
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा व सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।।२
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ।। ३।५
कंकाः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ।।१
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
उभौ तमिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ।।२
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म
यच्छतु ।।३।६

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥३।७

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेतानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१

अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषा वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥२

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३।८

मृगो नः भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो

नुदस्व ।।१

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।२

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः :

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो

बृहस्पतिर्दधातु स्वस्ति नो बृहस्पति र्दधातु।।३।९ (२५-५)

द्रुतकर्मा; व्यापक शत्रु को भयदाता, दुष्टों का नाशक, प्रमोद रहित इन्द्र असख्य सेनाओं का विजेता है ।। १ ।। वीरो ! देवताओं के बैरियों को रुलाने वाले, विजयी, अविचल, वर्षक उस इन्द्र की कृपा से विजय प्राप्त कर शत्रुओं को भगाओ ।।२।। वह इन्द्र सब वीरों को वशीभूत करता है और युद्ध में शत्रुओं को जीतता तथा सोम पीता है। उसके बाण विध्वंस में समर्थ है ।।३ (१) ।। हे रक्षक इन्द्र ! राक्षसों को मारता हुआ शत्रु सेना का नाश कर, विजय प्राप्त कर ।। १ ।। हे इन्द्र ! सबके बलों का ज्ञाता–अन्नवान, शत्रु तिरस्कारक, बलोत्पन्न, स्तुत्य तू विजय रथ पर आरोहण कर ।। २ ।। हे साथियो ! पहाड़ों को भी तोड़ देने मे समर्थ, स्तुत्य, संग्राम विजेता इस इन्द्र के नेतृत्व में युद्ध करो। हे वीरो ! जब यह इन्द्र शत्रुओं पर क्रोध करे तभी तुम भी उन पर क्रोध करो ।। ३ (२) ।। मेघों में बल से प्रविष्ट होने वाला, पराक्रमी, अत्यन्त क्रोधी, अविचालित, अहिंसित इन्द्र काल में हमारी सेनाओं का रक्षक हो ।। १ ।। हमारी सहायक सेनाओं का इन्द्र नेतृत्व करे। बृहस्पति, दक्षिण यज्ञ और सोम यह रक्षक

रूप से सबसे आगे रहें, मरुद्गण विजयिनी देव-सेनाओं से पूर्व प्रस्थान करें ॥२॥ मनोरथों को पूर्ण करने वाले इन्द्र, वरुण, आदित्य और मरुद्गणों की महती शक्ति हमारी अनुगत हो। उदार और विजयी देवगण का जय घोष गूँज उठे ॥३ (१) ॥ हे इन्द्र ! हमारे अस्त्रों को प्रेरित करो। हमारे सैनिकों को हर्ष दो। अश्वों को वेग दो, रथों से उत्साह बर्धक शब्द निकलें ॥१॥ शत्रु-सेना से सामना होने पर इन्द्र रक्षा करे। बाणों से शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो। हमारे बीर जीतें। हे इन्द्र ! युद्धों में हमारे रक्षक होओ ॥२॥ हे मरुद्गणों ! हमारे ऊपर आक्रमण करने वाली शत्रु सेना को अन्धकार से ढक दो। यह परस्पर एक-दूसरे को भी न देख या पहिचान सके ॥१ (४)॥ हे पाप से अभिमानिनी हुई वृत्ति ! हमारे पास न आ। तू शत्रुओं के शरीरों से लिपट जा। उनके हृदय में शोक और ईर्ष्या उत्पन्न कर। हमारे शत्रुओं को अन्धकार में डाल ॥१॥ हे वीरो ! आक्रमण करो और विजयी होओ। इन्द्र तुमको आनन्दित करे। तुम्हारे बाहुओं में प्रचण्डता बढ़े। तुम किसी से तिरस्कृत न होओ ॥ २ ॥ वेद मन्त्रों द्वारा तीक्ष्ण बाण ! तू दूरस्थ शत्रु को प्राप्त हुआ सबको निःशेष कर डाल ॥३ (५) ॥ मांस भक्षी पक्षी शत्रुओं का पीछा करें। गृध शत्रु सेना का भक्षण करें। शत्रुओं में से कोई भी शेष न रहे। हे इन्द्र ! अधिक पापी न हो, ऐसा शत्रु भी न बचे ॥ १ ॥ हे धनेश, हे शत्रु-नाशक इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों हमारे शत्रुओं को भस्म करो ॥२॥ जहां बड़ी शिखा वाले बाणों की वर्षा हो, वहां देव गण हमारे रक्षक हो ॥ ३ (६) ॥ हे इन्द्र ! राक्षसों को नष्ट करो। शत्रुओं को युद्ध में नष्ट करो। बाधकों का सिर तोड़ो। हमार हानि करने वाले शत्रु को मार डालो ॥१॥ हे इन्द्र ! हमसे लड़ने वालों को मारो। अपनी सेनाओं के द्वारा हराये हुये शत्रुओं को मुँह लटकाये भागने दो। हमको क्षीण

करने वाले को गर्त में डालो ॥२॥ राक्षसों के बल को जीतने वाले इन्द्र किसी से भी वश में न होने वाले हाथी की सूँड के समान अपने अपने बाहुओं को युद्ध काल में प्रेरित करे ॥ ३ (७) ॥ हे राजन ! तेरे मर्म स्थानों को कवच से ढकता हूँ । सोम तुझे अमृत से ढके। वरुण तुझे सुखी करें और सब देवता तुझे विजयानन्द दिलावे ॥१॥ हे शत्रुओ ! तुम सिर कटे साँपों के समान अन्धे होओ । सभी श्रेष्ठ शत्रुओं को इन्द्र मार डाले ॥२॥ जो हमारा बान्धव हुआ हमसे द्वेष करता और गुप्त रूप से हमारी हिंसा-कामना करता है, सब देवगण उसका नाश करें । मन्त्र ही कवच रूप है, वह मेरी रक्षा करे ! ३ (८) ॥ हे इन्द्र ! तू सिंह के समान भयावह है । तू दूर से भी आकर वज्र को तीक्ष्ण कर उससे शत्रुओं का नाश कर युद्ध की इच्छा वाले शत्रु को भी तिरस्कृत कर ॥१॥ हे देवताओ ! आपकी कृपा से हम मंगलमय वचनों को सुनें, कभी बधिर न हों ! हमारे नेत्र कल्याण दर्शन के लिये समर्थ हों। हाथ-पांव आदि सभी अंग पुष्ट हों और प्रजापति द्वारा निश्चित आयु को हम प्राप्त करें ॥२॥ जिसका स्तोत्र महान् है ऐसा वह अविनाशी इन्द्र हमारा मंगल करे। सकल विश्व के ज्ञान का ज्ञाता पूषा हमारा स्थिर शुभ करने वाला हो । अहिंसित आयुध-युक्त गरुत्मान हमारा सदा रक्षा करे । श्रेष्ठ देवों के देव महादेव हमारे लिये स्थायी कल्याण करने वाले हों ॥३ (९) ॥

❀ सामवेद समाप्तम् ❀